# भूखा बंगाल

सम्पादक एवं संग्रहकर्ता

**ब्रह्मदत्त विद्यार्थी**

कल्याण साहित्य मन्दिर
प्रयाग

रामनवमी, २००३

# कलाकार

*प्रकाशचन्द्र गुप्त*

- श्रीमती उषा मित्रा
    - निराला
        - यशपाल
            - रांगेय राघव
                - अमृतलाल नागर
                    - श्रीकृष्णदास
                        - भैरवप्रसाद गुप्त
                            - नरोत्तम प्रसाद नागर
                                - प्रबोध कुमार सान्याल
                                    - श्रीमती कमला त्रिवेणी शंकर
                                        - कुमारी विपुला
                                            - लक्ष्मीचन्द वाजपेयी
                                                - धर्मवीर भारतिय
                                                    - गंगाप्रसाद पाण्डेय
                                                        - अनन्तप्रसाद विद्यार्थी
                                                            - विष्णु

| कथा | बिन्दु |
|---|---|
| बंगाल का अकाल | १४ |
| मन का दीप | तीन |
| दो-दाने | पन्द्रह |
| महादान | उन्तीस |
| अदम्य जीवन | पैंतीस |
| मोनाई देवता | इक्यावन |
| अन्त्येष्ठि | इक्यासी |
| अन्नपूर्णा | सत्तानबे |
| दया तेरी | एक सौ सैंतालीस |
| अंगार | एक सौ उन्सठ |
| अपराध | एक सौ सत्तासी |
| अमावस्या | एक सौ सत्तानबे |
| कलंक का टीका | दो सौ उन्तीस |
| भूखा ईश्वर | दो सौ सैंतीस |
| प्रतिक्रिया | दो सौ उन्चास |
| पत्थर का कोयला | दो सौ उन्सठ |
| कुलीन | दो सौ चौरासी |

# प्रकाशकीय

'भूखा बंगाल' कहानी-संग्रह, का प्रकाशन दूसरे कथा-संग्रहों की भाँति केवल पाठको के मनोरंजन के लिये नही हुआ है। जहाँ भूख है, वहाँ मनोरंजन की बात करना, हास्यास्पद ही नहीं, महापाप है। जिस भयंकर अकाल ने बंगाल के तीस लाख इन्सानो को निगल लिया, वही आज फिर दानवी जबड़ा खोले पूरे हिन्दुस्तान को अपनी ख़ूनी आँखो से गुरेर रहा है। अगर समय रहते हम न सँभले तो क्या ताज्जुब कि करोड़ो इन्सान फिर हमारी धरती के चप्पे-चप्पे पर तड़पते-बिलखते और '-भूख-भूख' चीख़ते चिल्लाते नज़र आयेंगे। क्या अकाल को फिर हम इस धरती पर अपने बदनुमा दाग़ छोड़ने का अवसर देंगे? यदि नही, तो कैसे? इसी कैसे का उत्तर आपको 'भूखा बंगाल' देगा। 'भूखा बंगाल' अकाल के हर पहलू के अध्ययन की बोलती कहानियो का संकलन है।

इसके लेखक पाठको के जाने-पहचाने हैं। सब ने अपने-अपने दृष्टिकोण से भूखे बंगाल को देखा है।

आशा है आप लोग इसे अपनाकर हमारे उत्साह को प्रोत्साहित करेंगे।

*—सोमेश्वर प्रसाद गुप्त*

# नई तस्वीर

अधूरे चित्र पर चित्रकार की तूलिका चल रही थी असीम को ससीम करना ही जैसे मानवता का चरम-लक्ष्य हो और उसी ज्योति के प्रकाश मे चित्रकार अपनी आत्मा की रचना करता है। मानव ही तो ठहरा न ? वह अंतरिक्ष का, अनन्त का विस्तार तूलिका मे उतार काग़ज़ पर रखता है और तभी जैसे आकाश की यह नीलिमा विद्रोह कर उठती है, ख़ून के फ़व्वारे छूट उठते हैं। शायद कलाकार इस रक्त-रंजना से अपरिचित नहीं पर असीम के उस चित्र में रक्त का अभाव देख मुझे कुछ कमी सी मालूम हो रही थी सो कहा—"चित्रकार तुम सम्भवतः सान्ध्य-किरणों की रक्तिमा को भूल रहे हो।"

हँस बोला चित्रकार—"महा-विनाश के पूर्व की ज्वाला-जनित लालिमा को नहीं भूलता सृष्टि का वह 'फिनिशिंगटच' है जो कलाकार की अन्तिम तूलिका में लाल हो उठता है उसे कैसे भूल सकता हूँ।"

मैने आँखो में जिज्ञासा भरकर कलाकार की ओर निहारा जैसे वह मेरे भावों को समझ गया हो, कहा—'क्षितिज पर लटके हुये इन बादलों को देखते हो, बर्फ के यह सफ़ेद टुकड़े पत्थर हैं, जो जब टकराते हैं तो अपनी बिजली से धरती के गहन-गम्भीर वक्षस्थल को भी चीर कर झिंझोड़ देते हैं, यही टुकड़े अभी लाल हो जायँगे जैसे दिल का जमा हुआ ख़ून तस्वीर की यह लक्ष्य-परिधि है।"

कला के अस्तित्व का यह मैं सत्य मानता हूँ मानव के अंतर को टटोल मुझे लगता है यह श्वेत, सात्विक अंतर का मानव भले ही दूर से देखने में बर्फ के पत्थर का कलेजा रखता हो और उसमें क्रान्ति का

रक्त पलता हो लाल हो वह क्षितिज की नीलिमा को अपने में समेट लेता हो उसका लक्ष्य जैसे क्रान्ति एक मात्र लक्ष्य क्रान्ति है वह शक्ति चाहता है और शक्ति रक्त। विध्वंस की यह ज्वाला मानव अपने में समेट कर रखता है, कलाकार इससे अपरिचित नहीं उसे सृष्टि के प्रत्येक कार्य मे एक असंतोष दिखाई देता है, यही असंतोष सृष्टि के चक्र का तैल है जो घर्षण को समरसता प्रदान करता है अन्यथा सृष्टि दो-बिन्दुओ मे सीमित हो जाय जो दो-नक्षत्रो की भाँति शून्य में लटकते रहेगे एक दूसरे की गति की प्रतीक्षा में।

आज का मनुष्य।बिल्ली की प्रवृत्ति का है चूहे को पकड़ वह मारना चाहती है उसकी मृत्यु पर ही उसका जीवन है क्षुधा की ज्वाला उसे इसके लिये बाध्य करती है. परन्तु जैसे यही उसका लक्ष्य न हो चूहे की अशक्तता, विवशता को जान वह उसके जीवन से खेल करती रहती है, तड़पा-तड़पाकर मारने मे उसे सुख मिलता है, परन्तु मै इसे बिल्ली की निर्दयता स्वीकार नहीं कर पाता मुझे लगता है कि उसे विद्रोह करने के लिये उकसाती है यही एक सतत प्रयत्न है। गुलाम अपने शोषक के विरुद्ध विद्रोह न कर सके चूहो की भाँति भाग कर कोशिश करता हुआ वह मर जाय तो यह मानवता का अपमान होगा लेकिन चिनगारी इससे खुल जाती है उसके ऊपर की राख धीरे-धीरे उतर जाती है और फिर वह कब भभक कर धधकती हुई सृष्टि को भस्मीभूत कर दे यह कहा नही जा सकता।

साहित्य के कलाकार को मै एक ज्वाला मानता हूँ जो बराबर जलती रहती है, इस ज्वाला के प्रकाश मे ससार अपना पथ देखता है, टेढ़ी-मेढ़ी उसकी पगडंडियाँ ऊपर को उठ आती हैं पर शायद ही कोई अनुभव कर सके कि जीवन की नग्नता को इस प्रकार पेश करने वाला कलाकार अपने अंतर की ज्वाला को कहाँ सँजोये रहता

है, इतना असीम का विस्तार वह कहाँ पा जाता है जिसमें यह ज्वाला उद्भूत होकर जलती रहती है। कला का यह सत्य है, वास्तिविकता का चित्राकन कला है और यह चित्रांकन समाज की खामियों को, घुलती हुई मानवता की चीख़ को ऊपर उठा देता है। परदे की ओट से देखने वाले इस नग्नता की ओर से मुँह फेर लेते हैं कह उठते हैं यहाँ अपने-अपने जीवन की व्यथा ही बहुत है तो क्या साहित्य को कुछ 'सुन्दरम्' की सृष्टि करना नही है। यह स्वीकार नही कर सका, तन के कोढ़ को पहले देखने का ही कलाकार अभ्यस्त होता है, वह उस कोढ़ को मिटा अपनी सृष्टि को सुन्दर बनाना चाहता है। मेरे विचार से केवल सौदर्य देख ही अपने को संतुष्ट मानने वाले कलाकार से वह कलाकार अधिक महान है जो 'असुन्दर' का वहिष्कार कर सुन्दरम् की सृष्टि करता है। वह निर्माता है पत्थर की तरह कठोर शीशा नही और यदि उसकी रचना शीशा भी है तो सजीव शीशा है जिसमे 'असुन्दर' की छाप बस जाती है सुन्दर होने के लिये।

एक बात और है जो कलाकार को नभ से अपनी सृष्टि को निहारने वाला पंछी बनाती है। वह यह कि वह अपने समाज की जिस नग्नता को देखता है उसके सौंदर्य को पूर्ण करने के लिये उसका हृदय असंतोष से भर जाता है वह पलायनवादी नही, संघर्षवादी होता है। भाग्यवादी और संतोषवादी नही वरन् असंतोषवादी और क्रान्तिवादी होता है। असंतोष को सँजो अपने हृदय के रक्त से वह निरंतर उसे सीचता रहता है और इस प्रकार वह 'महान' है। समाज ही नही संसार को असंतोष के जग से उठाकर ऐसे स्थान पर देखना चाहता है जहाँ से पीछे की ओर देख उसकी दुनिया अपनी प्रगति का अनुभव करे। उसका असंतोष ही जब सामाजिक असतोष और जनविप्लव का रूप धारण कर लेता है तो क्रान्ति बन जाता है।

असंतोष को पा वह निराशा से रो नहीं उठता, जल उठता है अपनी ज्वाला को दोनो हाथों उन्मुक्त बाँटने लगता है।

यह है कलाकार के जीवन का लक्ष्य।

इस संग्रह में भूखो-नंगो की बस्ती के कुछ चित्र हैं जिन्हे कुछ कलाकारो ने अपने हृदय के ख़ून से सींचा है, इस ख़ून में जीवन की धड़कने हैं जो सदैव ही सजीव रहेगी, आप पढ़कर इन धड़कनो का अनुभव करेंगे ऐसा मेरा विश्वास है, और यही धड़कनें एक अभाव, एक असंतोष और आग की ओर इङ्गित करती हैं। इन कहानियो के दानव कलाकारो के हृदय की ज्वाला मे पड़ तिलतिला रहे हैं, पाशविकता इन कथाकारो की लकीरो से दब चीख़ रही हैं और बेबश वढ़ रहे हैं; असंतोष का तूफान उन्हे आगे बढ़ा रहा है वहाँ जहाँ दूर क्षितिज पर बादल उमड़-घुमड़ रहे हैं, जो पानी नहीं ख़ून बरसने वाले हैं। मै यह मानता हूँ कि इन तस्वीरो मे बंगाल में मानव के मानव भक्षण का वह ताण्डव नही उपस्थित हो सका, मै मानता हूँ कि नाश और पतन की वे रेखाये चित्र नहीं बना पाईं। सृष्टि का नाश कलाकार चित्रित करना चाह कर भी नही कर पाया क्योंकि उसके नियन्ता भी तो मनुष्य ही थे और कलाकार की दृष्टि-पथ पर दीवाल बनाने के भी प्रयत्न किये गये किन्तु कलाकार की सर्वभेदी दृष्टि से कुछ अलक्ष्य हो ऐसा नही, उसने जो चित्रित किया है वह अतिरंजना नहीं, बल्कि पूर्ण चित्र भी नहीं कहा जा सकता यह तो शायद वही समझ सकता है जिसने उन दिनो बंगाल मे इस ताण्डव को देखा होगा। समाचार-पत्रो के चित्र और समाचार तो छाया भी पूर्ण करने में समर्थ न हो सके।

परन्तु उस ताण्डव के मूल में छिपी क्रान्ति को संसार ने देख लिया है संसार सजग हो उठा है कि मानव यो ही न मर पाता। मरते समय भी अपने लिये वह एक बार छटपटा उठता है, हत्यारे को लोहूलुहान कर देता है और उसकी छाती पर बैठ उसका ख़ून पी जीवित भी रहता है। यह है एक सत्य जो संसार को चुनौती दे रहा है। मनुष्य ने मनुष्य को भूखो मार डाला पर वह कुर्बानी क्या कभी व्यर्थ जा सकती है, वे ख़ून की नदियाँ जिन्हे मनुष्य ने अपने हाथो से बहाया है क्या कभी यो ही रह जायगी, उसमें यह असमता बह जायगी, यह मानवता नष्ट हो जायगी यही इस संग्रह के कलाकार कहना चाहते हैं।

आप कहेंगे घाव को यह कहानियाँ फिर ताज़ा कर रही हैं। इस समय जब कि सारे संसार को मनुष्य कुत्तो की तरह भूखो मार डालने का भय दिखला रहा है, यह कहानियाँ बंगाल के उस ताण्डव को हमारी आँखो के सम्मुख फिर ला रही हैं। उस समय की दबी क्रान्ति ख़ून मे पल रही है और शायद मेरी यह भविष्यवाणी असत्य न होगी कि संसार शीघ्र ही भूखे, नगो की एक महा-क्रान्ति देखने वाला है। यह क्रान्ति संसार की तस्वीर को बदल देगी, ख़ून को बदल देगी, न्याय और व्यवस्था के सिद्धान्तो का मटियामेट कर देगी। आग जो रुई के गट्ठर के नीचे सुलगती है वह जब जल उठती है सम्पूर्ण गट्ठर को भस्म करके ही छोड़ती है। परन्तु मूर्ख मानव उसे सुलगाने, उसमें फूँक मारने का ही प्रयत्न कर रहा है। यह कहानी संग्रह संसार के लिये एक चेतावनी है।

इन कहानियो को मैं कला की कसौटी पर नहीं कसना चाहता, चाहता ही नही बल्कि जानता ही नहीं। आग में सोना तपाया जाता है, सोने मे आग नहीं तपाई जाती। हृदय की आग में कला रूपी सोना तपाया जाता है, पर कला के सोने मे दिल की आग नहीं तपाई

जाती । इन कहानियो में हिन्दुस्तान के जख्मी दिल कलाकारों की धड़कने हैं सो उन्हें यह अपनी कला-कृतियो में सबसे अधिक प्रिय भी है । यही इनकी कसौटी है यही इनका मूल्याकन है

इन कहानियो के सम्बन्ध मे मुझे कुछ अधिक नही कहना है। हृदय में एक दर्द सा उठ रहता है कहने को बहुत कुछ होते हुये भी कुछ कह नही पा रहा हूँ। कलाकारो ने मुझे सहर्ष अपनी कहानियाँ संग्रह मे प्रकाशित करने की अनुमति दी इसके लिये मै उनका आभारी हूँ; भारतीय मानवता उनकी आभारी है।

एक शब्द और मुझे अपने मित्र रामेश्वर सिह और सोमेश्वर प्रसाद गुप्त के सम्बन्ध में कहना है। रामेश्वर तो अपने हैं कृतज्ञता प्रकाश का आभार उनका क्या मानूँ। उन्होने इस संग्रह को तैयार करने मे जितना प्रयत्न किया उसे यदि अपने स्नेह से तौलूँ तो भी उनका पलड़ा भारी रहेगा। गुप्त जी ने इस संग्रह का प्रकाशन अनेक कठिनाइयाँ उठा कर किया है उनका आभार मुझ पर बहुत है।

और अन्त मे पाठकों के सामने यह तस्वीरें पेश कर रहा हूँ ख़ून के बने यह चित्र कुर्बानी की माँग लेकर आपके सामने दामन फैलाये हुये हैं, आशा ही नही ध्रुव-विश्वास है आप हृदय के शोलों से इस भूखे-दामन को भर देंगे।

२५—३—४६

—ब्रह्मदत्त विद्यार्थी

एक-स्केच

# बंगाल का अकाल

## प्रकाशचन्द्र गुप्त

बंगाल की 'शस्य श्यामला', "सुजला" और "सुफला" भूमि; सोने की धरती, जहाँ इतिहास की शक्तियो का निरन्तर संघर्ष हुआ है, आर्य, मङ्गोल और द्रविड़, फिर पठान और मुग़ल, अन्त मे फिरंगी और मराठे; सभी उसकी स्वर्ण-विभूति के भूखे लोलुप। प्रकृति का रूप मानो यहाँ पृथ्वी और आकाश फोड़कर निकला हो! धान के हरे खेत, ताल तलैये, केले, ताड़, अनन्नास, नारियल, बाँस और कटहल के वन, अनेक नद, सरिता, पर्वतराज हिमालय और सागर की अनन्त जल-राशि। इस वैभव के इच्छुक इतिहास के अनेक डाकू, जगतसेठ, अलीवर्दी खाँ, पेशवा बाला जी राव, राघो जी, मीरजाफर, अमीचन्द, क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स। इनके विरोध मे संघर्ष करती, बंगाल की अमर आत्माये; लौहशलाका समान उसकी सुदृढ़, चमकीली विद्रोह की शक्ति सिराजुद्दौला, चित्तरंजन, कवि गुरु रवि ठाकुर।

सदियो पर्यन्त उस संस्कृति का गुरुतर विकास हुआ है, जो आज इतिहास के फन्दे में पड़कर काल का ग्रास बन रही है, जिसे आज मनुष्य का गढ़ा अकाल और बर्बर फासिज्म मुँह बाये लीलने आ रहे हैं; जिसकी रक्षा आज भारतीय जन-शक्ति का प्रमुख कर्तव्य है।

बंगाल के आदिम निवासी जो प्रकृति की शक्तियों से भयभीत उन्हें पूजते थे; पश्चिम से बढ़ते आर्य आक्रमणकारी जो नया उल्लास और

नया आह्लाद मनमें लेकर आये थे; उत्तर और पूर्व से छनकर आये पीले रंग और तिरछी आँखो वाले मंगोल। अनेक जातियो और संस्कृतियो के मेल और संगम का इतिहास। इस विशाल नींव पर निर्मित बंगाल की शालीन सामन्ती इमारत। अन्त मे आधुनिक युग का जागरण और अनन्त आलोक। राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन ईश्वरचन्द्र विद्या सागर, विवेकानन्द। विज्ञान साहित्य, सगीत और अन्य ललित कलाओ का अभूत पूर्व विकास। जगदीश बोस, पी० सी० राय, रवि ठाकुर, नज़रुल इसलाम, दिलीप राय, नन्दलाल बोस। बंगाल की संस्कृति की भारतीय जीवन पर अमिट छाप।

वह सस्कृति अकाल और बमो की मार से मानो अब काँच सी टूटी, अब टूटी। लेकिन नही, वह टूट नही सकती! वह फौलाद है, अगर हम एक हैं, वह कच्चा धागा नही। मज़बूत, लोहे की रस्सी है, उसके पीछे चालीस करोड़ का बल है, अगर चीन की तरह हम भी अपने झगड़ो को भूलकर एक हो जायँ।

बंगाल आज डूब रहा है। हर हफ्ते बंगाल मे एक लाख आदमी मरते हैं। आदमी और कुत्ते कूड़े के ढेर पर खाने की तलाश में एक साथ टूटते हैं, कुत्ता जीतता है, आदमी हारता है, क्योकि उसके बदन में नाम को भी जान नही। जीते आदमियो को स्यार गाँवो से घसीट ले जाते हैं और जीते-जी खा डालते हैं। माँ बच्चो को मुट्ठी भर अन्न के लिये बेच डालती हैं, और पुरुष स्त्रियो को। बगाल का अस्तित्व आज मिट रहा है, लेकिन आदमख़ोर व्यवसायी देश को मरघट बना कर मोटे हो रहे हैं। नौकरशाही के कान पर जूँ नही रेंगती, राष्ट्रीय नेता अब भी जेलो मे बन्द हैं और बंगाल की दलबन्दियो में कोई शिकन नही पड़ती।

भारत अकाल का देश है। हमने अपने इतिहास में कितने अकाल देखे हैं! लेकिन हम आज भी उसी तरह खेत गोंड़ते हैं और बीज बोते है, जैसे चार हज़ार वर्ष पूर्व हमारे पुरखे। विज्ञान के आविष्कारो का हमारी खेती-बारी पर काई असर नही हुआ। लेकिन रेल, नहर और तारो के जाल ने अकाल की मार कुछ कम ज़रूर कर दी।

सूखा पड़ा, बाढ़ आई, लाखो मरे! इस बार न सूखा न बाढ़। आदमी का बनाया यह अकाल है। नफ़ाखोरो के स्वार्थ का गढ़ा यह अकाल है। क्लाइव के सिपाहियों की तरह चावल का माँड़ पीकर आदमी जीते हैं। मक्खियो अथवा टीड़ी-दल की भाँति वह मरते है, किन्तु यह नरमेध करके अन्न के चक्रवती दुनिया मे अपना सिक्का चलाते है।

अब फिर बंगाल के आकाश में फ़ासिष्टो के विमान मॅडराने लगे। मुर्दे सूँघकर मरघट मे चील कौवे और गिद्ध उतरने लगे। उनके लिये यह स्वर्ण अवसर है। उन्हे बुलाने का मन्त्र बंगाल के कापालिक ने ही जगाया है। जिसकी देशभक्ति का मन्त्र भी आज उलटा पड़ रहा है, जो विभीषण और जयचन्द की परम्परा को आज आगे बढ़ा रहा है।

अगर चालीस करोड़ की संख्या में कुछ बल है, तो उसकी आज ज़रूरत है। रवि ठाकुर का देश, कविता, संगीत और सभी ललित कलाओं का देश, बंगाल आज डूब रहा है। चालीस करोड़ का संयुक्त बल ही उसे उबार सकता है।

श्रीमती उषा मित्रा

# मन का दीप

उसका जन्म ही वेश्या के गृह में हुआ था, अथवा संसार ने उसे वेश्या बना दिया था, सो कह सकना कठिन है। परन्तु थी वह बनारस की प्रसिद्ध वेश्या ही। मजे की बात तो यह है कि नाम रहा है उसका सावित्री। सत्यवान की सावित्री नहीं, पति को जीवन-दान देने वाली सावित्री नही। बनारस की, नाच-गान के लिए लब्ध-प्रतिष्ठ, सावित्री रानी।

कभी कोई हँसी में कह उठता—"वाह, वाह, क्या मजे का नाम रख दिया है तुम्हारा! कहाँ वह सती, कहाँ तुम वेश्या—एकदम उल्टा, सम्पूर्ण अनमेल!"

तब सावित्री गम्भीर भावुकता से उत्तर देती—"अनमेल पर ही दुनिया टिकी हुई है न, महाशय!"—फिर चुस्की का गिलास मुँह से लगा लेती।

दुनिया को लूटना उसने सीखा था। मिथ्या, प्रवञ्चना, प्रेमाभिनय से मनुष्य का रक्त शोषण करना उसका काम था। मेहदी-सी रङ्गीन बनी, सज-सजा कर एक प्रलोभन फैलाया करती। उसके भक्तगण दिन-रात उसके वन्दना-गान से उसे स्वर्ग में चढ़ाया करते। वह सावित्री उस दिन पहुँची थी कलकत्ता शहर में। बनारस से वह एक सेठ जी के घर मुजरा के लिये कलकत्ता बुलाई गई थी।

स्टेशन पर ट्रेन रुकी। कई व्यक्तियों के साथ वह लचकती हुई उतर पड़ी। उसके प्रधान भक्त ज़मीदार देवेन्द्र ने उसे हाथ का सहारा देकर उतारा। प्लेटफार्म पर उसे ले जाने के लिये कई व्यक्ति उपस्थित थे। बाहर फिटन खड़ी थी। देवेन्द्र और सावित्री उस पर बैठ गये; बाकी सब लोग दूसरी गाड़ी पर। देवेन्द्र के गम्भीर मुख के प्रति निहारती सावित्री हँसी से मचलने लगी। चुटकियाँ बजा-बजा कर कहने लगी—"गई, अब देवेन्द्र की सावित्री लुट गई।"

"जिसके पास पैसे हैं, उसे ऐसी पचासो सावित्री मिल जायँगी।" अत्यधिक क्रोधित था देवेन्द्र। उसी दिन से नही, वरन् जब से सावित्री के कलकत्ता में आने की बात चली थी, तभी से वह इसका विरोध कर रहा था, कि नही, वहाँ जाने की कोई ज़रूरत नही है। मै तुम्हे कही पर भी जाने देना पसन्द नहीं करता हूँ।"

सावित्री ने अहंकार से उत्तर दिया था—"क्या मैं तुम्हारी खरीदी हुई गुलाम हूँ ? क्यो न जाऊँ ? ईश्वर रूप देता है दिखलाने के लिये। मै अपना सुन्दर रूप संसार को क्यों न दिखलाऊँ ?"

"ऐसा ! क्या सुन्दरता दिखलाने की चीज़ होती है ?"

"ज़रूर ! सुन्दर ही दुनिया में जयी हो सका है; असुन्दर, कुरूप नहीं।"

"तो कुरूप कहाँ जाय ?"

"चाहे जहाँ, उनकी परवाह कौन करता है ?"

हाँ, यों बात करते-करते वे दोनों तब मोटर पर बनारस के पथ से जा रहे थे। एक कुत्ते के पैरो पर से पहिया निकल गया। यन्त्रणा से वह चिल्लाने लगा। उस करुण-चीत्कार से पथ-यात्री तक खड़े हो गए।

देवेन्द्र दया से आर्द्र हुआ—"रोको, रोको! बेचारा कुत्ता दब गया! उसे अस्पताल पहुँचा दें।"

सावित्री झुँझला पड़ी—"मेरी कार पर मरता हुआ कुत्ता! तुम पागल हो गये हो?"

"मर रहा है बेचारा, सावित्री!"

"तो मैं क्या करूँ? उस बदसूरत कुत्ते का मरना ही अच्छा है। गाड़ी मत रोको!"

"सचमुच तुम बड़ी कठोर हो, घमण्डी हो, सावित्री!" यह थी उस दिन की बात।

देवेन्द्र के वचन से सावित्री आग की तरह जल उठी—"तुम्हारे पैसे पर मैं थूकती हूँ।"

और तब ठीक उसी दिन की तरह कहने लगा देवेन्द्र—"वास्तव में तुम कठोर हो, पत्थर-जैसी कठोर; और हो वैसी ही घमंडी, हृदय जैसी कोई वस्तु तुम्हारे पास नहीं है।"

"कठोर, निर्दयी, ममताहीना!"—इठला कर कहने लगी सावित्री—"यह सब तो मन की कमज़ोरी है। मैं हूँ, और है मेरा रूप तथा यौवन! इससे आगे कुछ नहीं जानती। जानने की मुझे ज़रूरत भी नहीं है।"

देवेन्द्र चुप हो गया—एकदम चुप। उस मौन में इस नारी के प्रति तिल-तिल कर अश्रद्धा, अभक्ति जमने लग गई। स्मरण हो आई उस एक दिन की बात। एक कोढ़ी भिखारी द्वार पर खड़ा था जब उतरी थी कार से सावित्री। उसकी ओर से घृणा से उसने मुँह फेर लिया था। कहा था—दूर हो! इस कुत्सित चेहरे की छाया मेरी इस सुन्दर आकृति पर मत डालो।"

और फिर भी उसे विनय करते देख कर द्वारपाल से कहा था—"उसे धक्के देकर दूर करो।" तब देवेन्द्र ने कठिनाई से द्वारपाल को रोक कर एक नोट भिखारी को दे दिया। उस पर जाने कितने दिनों तक सावित्री परिहास करती रही। फिर एक दिन की बात कि भूकम्प-पीड़ितो के लिये सहायता माँगने कुछ लोग आये थे, और उनके मुख आर्त्त लोगों के दुखद कहानी-वर्णन पर वह परिहास से बोली थी—"मेरे पैसे ऐसे कामो के लिए नहीं हैं। वह मरते हैं, तो मरने दो, उनके साथ मैं क्यो भिखारिन बनने बैठूँ!"

सुवृहत् कलकत्ता नगरी का प्रशस्त राज-पथ, जनाकीर्ण था! दोनों ओर उच्च अट्टालिकाओं की श्रेणी, दुकानें और पथ के दोनों ओर दुर्भिक्ष-पीड़ितों के नर-कंकाल—मृत-अर्द्ध-मृत, शिशु-वृद्ध, युवक-युवतियाँ, नग्न, अर्द्धनग्न अवस्था मे।

गाड़ी की गति मन्द हुई। पथ में दुर्भिक्ष-पीड़ित क्षुधाकुल मनुष्य, और आर्त्त, चीत्कार, उदासी तथा आतंक व्यापा हुआ था कलकत्ते पर। सावित्री के नेत्रो के सामने सहसा विश्व का यह कौन-सा कठोर, कौन-सा भयानक दृश्य उपस्थित हो गया है, मनुष्य जीवन की यह कौन-सी दुख की, क्षुधा की वार्त्ता खुल पड़ी है! पहले तो वह सिहर उठी, आँखे उस ओर फेर लीं; कदाचित् घृणा से और उस ओर न देखने की प्रतिज्ञा की। किन्तु फिर न जाने क्यों, उसकी आँखें अपने आप उसी ओर को लौटने लगीं।

उसके सामने मनुष्यों के मृत, अर्द्धमृत शरीर थे। जिनकी आँखें अन्दर को धँस गई थी। मुँह की हड्डियाँ उठी हुई थी, देह पर श्याम वर्ण व्याप्त था। किसी की जीभ बाहर को निकल आई थी, और

कोई दयार्द्र किसी मृत-प्राय व्यक्ति से मुँह में बूँद-बूँद जल डाल रहा था। कहीं ठेलों पर मृतकों के शव लादे जा रहे थे।

गाड़ी आगे बढ़ी। इस बार सावित्री अस्फुट स्वर से चीत्कार कर उठी। एक वृद्धा नारी पड़ी हुई थी। एक कुत्ता उसके मुँह पर झुका कुछ खींच रहा था। कदाचित् वृद्धा के मुँह में कोई भोज्य वस्तु रही हो और उसके क्षुधा-पीड़ित, शक्तिहीन शरीर में कुत्ते को हटाने की शक्ति न रही हो।

"क्या बात है?"—विस्मय से देवेन्द्र ने पूछा।

"मै यह देख नही सकती।"

"क्या?" देवेन्द्र समझा नही।

"यह···यह · भयानक दृश्य।"

अवहेलना से देवेन्द्र ने कहा—"ये लोग? ये लोग तो भूख के मारे हैं—दुर्भिक्ष-पीड़ित हैं। सब शहरो से ज्यादा कलकत्ते की दशा खराब है। अन्न तो है ही नहीं। फिर ऐसा तो हुआ ही करता है, सावित्री।"

गाड़ी उस स्थान से चलने लगी, जहाँ गृहस्थों के रसोई-घरों की नालियों पर नर-नारियों की भीड़ थी। कोई नाली के निकट मुँह खोल कर पड़ा हुआ था, कोई बैठा हुआ, या कोई हाथ पसारे, जैसे नाली ही हठात् अन्नदाता बन गई हो। वे सब एक दूसरे को हटाकर स्वयं नाली तक पहुँचने की चेष्टा कर रहे थे।

"यहाँ क्या हो रहा है?" सावित्री का स्वर अद्भुत सुन पड़ा।

"यहाँ ये लोग भात के मांड़ के लिये जमा हुए हैं। माँड़, जूठन इत्यादि, ये सब रसोई-घरो की नालियाँ हैं न।"

विवर्ण मुख से सावित्री ने पूछा—"गरम माँड़ से इन लोगों का मुँह नही जल जायगा?"

"परन्तु पेट को कुछ शान्ति तो मिल जायगी; अन्ततः एक दिन और जी सकेंगे न।"

इस बार वह दृश्य था, जिसे सहन करना, देख सकना सावित्री जैसी कठोर, स्वार्थी वेश्या के लिये भी असम्भव हो उठा। नारी का मृत शरीर पड़ा हुआ था, कदाचित् माता का, हजारो मक्खियाँ उस पर बैठी भिनभिना रही थीं।..... सावित्री एकदम चीत्कार कर उठी—"लौटाओ गाड़ी स्टेशन पर, लौटो-लौटो!"

निबिड़ विस्मय से देवेन्द्र आवाक् हो रहा, फिर बोला—"अब क्या बात हो गई?"

"इस दृश्य को नहीं देख सकती। दुनिया के हर्ष को, खुशी को, गिश्व की दरिद्रता ने चूस लिया है, निगल लिया है। कलकत्ता नर-रक्त पिपासा राक्षस है, लौटा कर ले चलो मुझे बनारस!"—

देवेन्द्र जोर से हँसा। बोला—"यह बात! मैं कहूँ न जाने क्या हो गया। अजी, ऐसा तो हुआ ही करता है। घर के अन्दर रहती हो। क्या जानो, इस वक्त सब देशों में अकाल है, गरीबी है; यहाँ कुछ ज्यादा है बस। हाँ: आज कौन-सा राग गाओगी।" देवेन्द्र जरा उससे सट कर बैठ गया।

न जाने क्यों, उसका सटना सावित्री को उस समय ज़हर-सा लगने लगा। उसने उसे ठेल दिया। तब निर्लज्ज की भाँति हँसता हुआ देवेन्द्र कहने लगा—"कलकत्ते में एक से एक बढ़िया औरतें हैं। कल तुम्हें उधर की सैर करा लाऊँगा।"

परन्तु सावित्री के कानो तक शायद ही वे शब्द पहुँचे हो। उस समय वह आँखे फाड़-फाड़ कर उस आतंकित दृश्य को देख रही थी। फुट-पाथ पर भूखा शिशु मृत्यु-यातना से तड़प रहा था, और माता क्षुधाकुल आँखों से ग्रस्त मूर्तिवत् बैठी उसे देख रही थी।

## आठ

"रोको, रोको !"—सावित्री जोर से कह उठी।

"तुम तो आज छोटी बच्ची बन गई हो, सावित्री !"

सावित्री ने उस बात पर भ्रूक्षेप भी न किया।

तब ? कदाचित् भाव-विलासमयी प्रेयसि के अन्तस्थल में बैठी हुई नारी तब हठात् ही अपने नारीत्व की महिमा मे जाग पड़ी हो, और कदाचित् उस नारी ने माता की मनःवृत्ति को सजग कर दिया हो। तिल-तिल में नहीं, पल-पल में नहीं, एकान्त ही हठात्, एकान्त ही सहसा।

गाड़ी जब तक रुक भी न पाई थी, कि सावित्री कूद कर उतर पड़ी, उस माता के निकट पहुँच गई, मनीबेग खोल कर नोटो का बण्डल निकाल लिया, और बोली—"बहिन, यह रुपये लो, अपने बच्चे को बचाओ !"

क्षीण कंठ से उत्तर आया—"रुपये लेकर क्या करूँगी ? इस शहर में अन्न नहीं है। मुट्ठी भर चावल के लिये दुकानो पर रोज कितनो ही की मृत्यु होती है। पर कोई किसी के मृत-प्राय शरीर को रौंदता हुआ फिर भी पहुँच जाता है दुकान तक।"

सावित्री के नेत्रों के सामने विस्मय का अगाध समुद्र था। पैसा देकर भी अन्न नहीं ? यह कैसी विचित्र बात है ? शस्य-श्यामला भारत-भूमि की उपज को कौन से महादैत्य ने निगल लिया है ?

सावित्री पैदल ही आगे बढ़ी। वैसे दृश्य पथ पर अनेक थे। वह दोनो हाथों रुपये बाँटती हुई चलने लगी। एक वृहत् अट्टालिका के सामने भीड़ थी। उसने झाँक कर देखा।

बच्चो को गोद में लिये स्त्रियाँ अन्दर प्रवेश कर रही थीं, प्रत्येक आगे जाना चाहती थी।

"यहाँ पर क्या अन्न बँट रहा है?" पूछा सावित्री ने।

"नहीं बहन, यह अनाथालय है। हम अपने-अपने बच्चों को देने आई हैं।

"अपने ही बच्चे को और अपने ही हाथों?"

'हाँ, यहाँ उन्हें चम्मच भर दूध, थोड़ा-सा भोजन तो मिल जायगा। आखिर भूखे-प्यासे उनकी जान तो न जायगी। हमें उन्हें तड़प-तड़प कर मरना नहीं देखना पड़ेगा।"

स्तम्भित थी सावित्री।

जब वह गन्तव्य स्थान पर पहुँची, तब उसका मनोवेग पूर्ण ख़ाली था।

सेठ जी की अट्टालिका के आँगन में निमंत्रित लोग भोजन कर चुके थे, कुछ भोजन कर रहे थे। शामियाने के नीचे दरी-गलीचे बिछे थे। मोटे-मोटे तकियों से टिके हुये लोग बैठे थे। बीच में सारंगी, तबला आदि के साथ सावित्री बैठी थी। सामने राज-पथ था। पथ पर सेठ जी के घर की उच्छिष्ट पतरियों का ढेर लगा हुआ था। वहाँ अकाल-पीड़ितों की भीड़ थी। पतरियों पर हज़ारों लोग झुके हुये थे। एक तीव्र कोलाहल था।

"तेरा चंचल नयन"—गा रही थी सावित्री, किन्तु उसके गान में चिर स्फूर्ति की मौत-सी हो गई थी; वह चंचलता, मादकता नहीं थी, जिससे बनारस के श्रोतागण अपने आपको भूल जाते थे। अपना सर्वस्व देकर स्वयं पथ के भिखारी बन जाते थे।

उस गान को सुनकर खुशी नहीं, एक विस्मय, क्षुब्धता से देवेन्द्र कह उठा अपने एक मित्र से—"आज बाई जी को हो क्या गया है ! अपनी सधी हुई, सुरीली आवाज़ को कहाँ खो आई है सावित्री ?"

विमान, अभय आदि भी कम विस्मित नहीं हो रहे थे, वे बोले—"यही हम भी सोच रहे हैं। कलकत्ते में आकर हमारी बाई जी को क्या हो गया ? बनारस की सावित्री को किसने लूट लिया ?"

"रामसिंह, धन्नूसिंह"—सेठ जी ने आवाज़ लगाई।

दरबान गण पहुँच गये।

"देखो, यह हल्ला कैसा है ?"

"बाहर जूठन पर भिखमंगो का हुजूम है, हुजूर !"

"मारो उन्हें, मार कर भगाओ।"

आज्ञा पाते ही भृत्यगण लाठी लिये उन दरिद्रों पर टूट-से पड़े। और तब एक तुमुल काण्ड आरम्भ हो गया। एक ओर था क्षुधार्तों का आर्त्त चीत्कार, दूसरी ओर धन-गर्व का मूर्त्त प्रहार।

सावित्री का स्वर कण्ठ ही में कब दब गया था, और नृत्यशील पैरों की गति कब रुक गई थी यह वह जान सकी सेठ जी के यह कहने से—"तुम गाओ बाई जी, मै खुद जाकर उन बदमाशो को भगाता हूँ।"

घृणापूर्ण नेत्र सावित्री ने एक बार उठाये, जिस दुनिया से दो दिनों से उसका परिचय हो रहा था, वह विश्व उसके लिये सम्पूर्ण नवीन तथा हृदयस्पर्शी था। इस दुनिया की भावना, कल्पना तक उसकी परिचित दुनिया में नही थी। सोच रही थी वह—उस रङ्गीन दुनिया मे एक ऐसी दुनिया अब तक कहाँ छिपी हुई थी ?

तब तक सेठ जी छड़ी घुमाते बाहर निकल गये।

ग्यारह

"रोको, रोको !"—इस आवाज़ से सेठ जी की छड़ी टूट गई। सेठ ने आँख उठा कर देखा—उन्मादिनी-सी सावित्री उन व्यक्तियों के बीच में खड़ी कह रही है—"भाइयो और बहिनों, इस चंडाल का अन्न मत छुओ। यह जूठन उसी के लिये छोड़ दो। लो मेरे पास जो कुछ है, वह लेते जाओ।" यह कह कर सावित्री अपने अलंकारों को खोल-खोल कर उन लोगो की तरफ फेंकने लगी।

सेठ जी का रक्त गरम हो उठा, बोले—"मेरे निमंत्रित लोग भीतर बैठे हुए हैं। वक्त निकलता जाता है। इन लोगो से आप पीछे मिल सकती हैं। मैं आपको रुपये पहले दे चुका हूँ।"

उनके नोटों का बण्डल निकाल कर सेठ जी के आगे फेंक दिया। फिर शेष पैसा तक उन सबो को देकर पैदल स्टेशन की ओर चल पड़ी।

बनारस की जनता कहती—सावित्री सनकी-सी हो गई है। देवेन्द्र का कहना था कलकत्ता शहर ने सावित्री बाई जी को लूट लिया है। सखी, सहेलियाँ कहतीं— यह भी एक फैशन है, जो कि सावित्री कलकत्ते से सीख कर आई है।

उसकी माँ उसे समझाती—"इस तरह कब तक चलेगा? ग्राहक सब बिगड़ जायेंगे। बुढ़ापे के लिये कुछ रखना है। बेटी, जेवर तो सब दे आई हो, यह सूने हाथ-पैर बुरे लगते हैं, अब कुछ बनवा लो।"

सावित्री जरा-सा हँस देती, और बस। उसके मनमें हठात् ही जो उज्ज्वल दीप जल उठा था, वह दीप शायद संसार की समालोचना पर उदास होना भी नहीं चाहता।

निराला

सिर्फ धीमी बत्ती अपने मन से जल रही थी
पुरानी मर्याद का बाँध टूट रहा था।

# दो दाने

तूफान और बाढ़ के दिन बीत चुके हैं। हरा-भरा बंगाल बाहर से वैसा ही है, मगर भीतर से जला हुआ। पूर्वी मोर्चे पर कड़ी चढ़ाई है। कितने ही एरोड्रम अमेरिकन वायुयानों से भर चुके हैं। पूरब की गश्त जोरों पर है। रात को ब्लैक-आउट। कलकत्ते में हाथ नहीं सूझता। सनसनी का बाजार गर्म है। चावल और धान से व्यापारी मारवाड़ियों ने अपनी कोठियाँ भर ली हैं। अन्न इतना मँहगा हो गया है कि मोल लिया नहीं लिया जाता।

गाँव के बाजार के बाजार खाली हो गये हैं। न पैसा है, न अन्न। पहले लोग उपास करने लगे। दिन में एक वक्त, फिर दो दिन में एक वक्त, बाद मे यह भी मोहाल हो गया। पेड़ों के कोंपल उबालकर खाने लगे। कुछ दिनों में हरा-भरा बंगाल ठूँड़ा हो गया। आदमी और ढोरो के पेट मे पेड़ो के पत्ते चले गये। भूख की ज्वाल बढ़ती गयी। देहात में भीख न मिलने की वजह से लोग शहर के रास्ते दौड़े। कोई आधी दूर चलकर मरे, कोई पहुँचकर, मगर पेट में दाना न गया। धनिक जन हथियारबन्द सिपाहियो से अपने गोलों की रक्षा करने लगे।

इसी समय कमला को सूझा, अपने परिवार को लेकर कलकत्ता चली जाय। कमला साधारण गृहस्थ की विधवा है। मौरूसी खेत भी कुछ बीघे हैं और साधारण गहने भी। हाथ में कुछ ही रुपये बच

रहे हैं। गाँव मे चौथाई लोगों को काल के गाल चले जाते और युवकों के पैर लड़खड़ाते देखकर उसने मन ही मन तय किया, जिस तरह दूसरी लावारिस युवतियो ने यौवन बेचकर अपने भाइयों की परवरिश की है, वह भी करेगी; नही तो अन्न के अभाव से सबके साथ-साथ खुद अपने को भी काल का ग्रास होते देखेगी।

बड़ी दृढ़ता से उसने छाती औंधी। दोनों लड़कों से बड़ी, बेटी चम्पा को, जो व्याहने लायक पन्द्रह साल की है, कलकत्ता के बाजार में बैठालेगी। कुछ सहज ज्ञान से और कुछ पड़ोस की गरीब युवतियों की कहानियाँ सुनकर उसने इस पथ पर पैर जमाया। चम्पा को बड़े आदर से रखने लगी, और एक अच्छे दिन कलकत्ता के लिये रवाना हो गयी।

उसको किराये की कोठरी तलाश करने में जो दिक्कतें उठानी पड़ी, उनका हाल छोड़ देते हैं। वह एक ऐसी ही कथा है कि एक किरायेदार ने अपनी मदद का जरिया निकाला कि अपने दो कमरे उसके रहने के लिये छोड़ दिये, किराया बीस रुपये माहवार लेकर।

दस-बारह रोज कमला को जेवर बेचते और दलाल लगाते लग गये। दलाल लोग चम्पा को देख गये और उससे बातचीत भी कर गये। इस तरह का अनुभव चम्पा को पहले कभी न हुआ था। मारे डर के कलेजा धड़क रहा था, मगर मां की बात का सहारा था। इस अरसे में माँ ने बड़ी तालीम दी, बड़ा ढाढस बँधाया, बड़ा दिल मजबूत किया।

बिहारी एक रोज शराब की दूकान पर पहुँचकर खड़ा हो गया।

झाबरमल को बकरों की सप्लाई से कई लाख रुपयों का मुनाफ़ा हो चुका था। उनका सम्बन्ध सीधे गवर्नमेंट से नहीं, कन्ट्रैक्टर से था। बकरा सप्लायर झाबरमल सुहावने समय के साथ क़दम बढ़ाते हुये बोटी और शोरबे का स्वाद ले चुके थे। फलतः बोतलवासिनी से भी प्रेम था। संगत के गुण से दूसरे ख़रीद-फरोख्त की तरह बाजार की वेश्यायें भी थीं। वह अनुभवी बिहारी की आँख नहीं बचा सके। उनके बोतल लेकर निकलते ही बिहारी ने उँगलियों से अमरूद दिखाया। झाबरमल ने मतलब समझकर पूछा—"कहाँ?"

बिहारी ने जबाव दिया, "बाबू, गृहस्थ। बहुत हंगामा न चलेगा।"

झाबरमल—"खाना पीना?"

बिहारी—"हाँ, मगर बहुत सँभलकर। माल नया है। कलकत्ते में न मिलेगा।"

झाबरमल की दोनों आँखों से कामुकता का दरिया उमड़ चला। पूछा—"कोई दोस्त अगर साथ हो?"

बिहारी—"बाबू हम इतना ही कहेंगे, फ्रेश माल है, अभी देहात से आया है। कलकत्ता शहर भर में न मिलेगा।"

झाबरमल ने जमकर पूछा—"लेकिन यह तो बताओ...

बिहारी—"बाबू, पहले माल देख लीजिये। आँखें हिरन की, बाल घुटने तक, रंग गोरा, चौदह-पन्द्रह साल की उम्र। पेट है बाबू; पेट—नहीं तो खानदानी घर है।"

झाबरमल को जैसे एक स्वास्थ्य मिला। पूछा—"पता क्या है?"

बिहारी ने धीरे से अपनी छाती ठोककर कहा—"बाबू, हमी ले

चलेंगे। ख़िदमत में हमीं रहेंगे, नहीं तो ऐसा माल आप जैसे बाबुओं से छूटकर गुण्डों के हाथ लगेगा।"

तभी झाबरमल के एक मित्र ने उसको पुकारा। झाबरमल ने अपने मित्र की ओर बढ़ते हुए कहा—"कल फिर इसी समय आओ।"

वहीं एक किनारे एक तरुण, जिसने फौज मे अफसर की जगह स्वीकार की थी, चुपचाप खड़ा अधकटी बाते ग़ौर से सुन रहा था। झाबरमल के चले जाने के बाद उसने बिहारी को बुलाया और जेब से एक रुपया देकर सिगरेट दियासलाई खरीद लाने के लिये कहा।

पास ही उसका मोटर खड़ा था। बिहारी के खरीद लाने पर उसने सिगरेट और दियासलाई ले ली और बाकी पैसे बिहारी को वापस कर दिये। फिर मोटर पर बैठते हुए बिहारी को भी बैठने के लिये कहा।

बिहारी भले मानुसो की डाल का बन्दर, कभी इस डाल पर, कभी उस डाल पर। संकेत मिलते ही मोटर मे एक बगल बैठ गया। बैठते ही देखा पायदान के पास एक बोतल रखी है। अफ़सर को इच्छा थी कि बिहारी की कुल बातें सुनें, मगर उनकी तड़क-भड़क से बिहारी घबराता था कि लगी रोज़ी छूट न जाय। नही तो अपना मतलब गाँठने का श्रीगणेश कर देता। सिर्फ हिम्मत बँधती थी, बोतल को देखकर। मन ही मन उसने निश्चय किया कि यह फैशनेबुल बाबू रुपये के बाज़ार मे मारवाड़ियो की बराबरी न कर सकेंगे।

अफसर ने पूछा—"तुम इससे क्या बातचीत कर रहे थे?"

बिहारी ने मुस्तैदी से जवाब दिया—"रोटियो का सवाल था कि कोई रोजी लगा दे।"

तरुण अफसर अपने मन का भेद देना नहीं चाहता था। बातचीत का लुब्बोलुवाब वह मजे मे समझ चुका था, और अपनी तीखी

साहित्यिकता के कारण मदद भी करना चाहता था, मगर बिहारी की हिम्मत ढीली रही।

अब तक मोटर अफसर के कमरे के नीचे वेलस्ली रोड पर आयी। वह उतरकर अपने कमरे चला और बिहारी को भी बुलाया। बिहारी उसके पीछे हो लिए। दूसरे मंजिल के एक अच्छे कमरे में उसका वास था। कई और कमरे थे। ड्राइवर मोटर गराज मे ले गया। बैठ कर सिगरेट सुलगाते हुए मुस्कराकर तरुण ने कहा,—"काम पड़े तो यहाँ आना। हमारी जगह देख चुके। अच्छा, अब जा सकते हो।"

दूसरे दिन बिहारी फिर अपने ठिकाने पर गया और झावरमल के लिये इन्तज़ार करने लगा। इससे पहले वह कमला से बड़ी-बड़ी बातें हाँक चुका था। कमला दिल पर पत्थर रखकर सुन चुकी थी। चम्पा सतीत्व की बड़ी-बड़ी कहानियों और बड़े-बड़े आदर्शों पर बड़ी-बडी आँखें फाड़कर गौर कर चुकी थी।

"शैलाधिराज तनया नययौ न तस्थौ" वाली दशा चम्पा की थी। जो कुछ भी वह कर रही ह, प्रकृति के इंगित से, जैसे उसका अपना कोई बस नही है। रोज़ सैकड़ो आदमियों के मरने और भीख माँगते फिरने की खबरें सुनती थी और कुछ देखती भी थी। परिस्थिति को दूर तक समझने की ताकत न थी, न परिस्थितियों के ख़िलाफ़ क़दम उठाने की हिम्मत। दबे हृदय से उभरती आशा की किरण पकड़े हुये कमला ने सम्मति दी और चम्पा ने, माँ जैसा कहेंगी वैसा होगा, कहा।

बीस रुपये पर तय हुआ। यह सब मालूम करके बिहारी गया था।

नियत समय पर झाबरमल आये। पहले की तरह शराब की दूकान से एक अद्धा खरीदा। बिहारी को पहले ही देख लिया था कि अपनी जगह पर खड़ा दीन भाव से ताड़ रहा है। खरीदकर चलती हुई टैक्सी बुलायी और बिहारी के साथ बैठ गया। एक साथी और था जो रास्ते के निकास पर खड़ा था, उसको भी बैठा लिया।

अफ़सर ने अपने ड्राइवर और नौकर को पहचनवा दिया था और गाड़ी से आकर दूकान के कुछ फासले पर गाड़ी के साथ छोड़ गया था। आज्ञा दी थी कि बिहारी की आँख बचाकर गाड़ी लेकर उसका पीछा करें, अगर गली मे जाय तो गाड़ी छोड़कर एक आदमी साथ हो ले, जिस मकान में जैसे जाय उसका पूरा पता जल्द दे।

झाबरमल के चलने के साथ कुछ फ़ासले से अफसर वाली गाड़ी भी पीछे लगी। झाबरमल की गाड़ी सीधे चलती गयी और नहर के पार नारिकेल डांगा की एक मालूली गली मे घुसी। पीछे वाली मोटर भी लगी रही। टैक्सी के रुकने पर पीछे वाली मोटर कुछ पहले ही रुक गयी। रात आठ का समय। बिहारी के साथ सेठ जी किराया चुकाकर एक गली के भीतर घुसे। दूसरी मोटर के एक आदमी ने पीछा किया। मकान के दरवाजे पर सेठ जी को खड़ा करके बिहारी भीतर गया। कुछ देर बाद सामने वाली कोठरी में सेठ जी को ले गया और उनके मित्र के साथ बैठाला। इधर का आदमी लौटा और सीधे अफसर को चलकर ख़बर दी।

जिस वक्त सेठ जी भीतर बैठे थे, कमरा खाली था। सिर्फ धीमी बत्ती अपने मन से जल रही थी। कमला का हाल बयान से परे था। हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे। पुरानी मर्याद का बाँध टूट रहा था।

दुःख के आँसू उमड़कर सारा घर डुबा देना चाहते थे। बच्चे सहम न जायँ, चम्पा घबरा न जाय कि आता हुआ दाना तूफ़ान और बाढ़ में जैसे उड़ जाय और बह जाय। वह पत्थर से दिल को बाँधे रही। काँपते हाथों भी बेटी को एक साफ साड़ी पहनाकर सजाया। बाल शाम को सँवार दिये थे। कुमारी की मांग में सेंदुर न था। आँख मे जो ज्वाला थी, उसको समझदार ही समझता।

बिहारी रुपये के लिये अड़ा था। कमला, चम्पा को सजाकर धीरे-धीरे ले आयी। कमरे के पास आते ही बिहारी ने रोका और चम्पा की बाँह पकड़कर सेठ जी के पास ले गया। धीमे प्रकाश में सेठ जी ने जो सौन्दर्य देखा, उससे अनुभवी व्यवसायी की आँखों में अँधेरा नहीं छाया। उसने और अच्छी तरह देखा। चम्पा प्रथा कुछ न जानती थी। आज उसके विवाह की जैसे पहली रात है, दो प्रिय हैं। हृदय में कम्प है, लेकिन पुलक नहीं; आत्मा में कर्तव्यनिष्ठा है, लेकिन स्त्री-भाव वाला सम्प्रदान नहीं।

बिहारी ने कहा, बाबू यही है, गृहस्थ; और तो सब कहा जा चुका है। अगर रहना चाहें तो आपको तो मालूम है। चम्पा को बाँह पकड़कर एक बगल बैठा दिया। वह कुमारी की तरह सर उठाये बैठी रही।

सेठ जी ने दस-दस के दो नोट निकाल कर चम्पा को दिये। चम्पा ले नहीं रही थी, बिहारी के डाँटने से ले लिये। बिहारी ने हाथ फैलाकर कहा हमको दे दो।

सेठ जी ने बात काटकर पूछा, तुम्हारा कितना होता है?

बिहारी ने दोनों हाथ की उँगलियाँ और अँगूठे उठाकर दिखाये। सेठ की धनाढ्यता के पूरे चाँद को देखकर उसकी वाणी का सागर भी बिना उमड़े नहीं रहा—मुँह से भी आवाज़ निकली, दस रुपये।

कमला से न रहा गया। मर्यादा का बाँध टूट गया, कल-प्रवाह से निकला—झूठ।

सेठ जी ने मुस्किराकर अपनी मातृ-भाषा में गाली देते हुए कहा, ख्वबीस साले, आधे-आधे का साझा है? हमको तो चवन्नी भी नहीं मिलती।

बिहारी ने कहा, इसका आधा बाबू?

सेठ जी ने पाँच रुपये का एक नोट निकालकर अपनी तरफ से उसको दिया और पूछा, और किसको किसको ले आये हो?

खुश होकर बिहारी ने खीस निपोड़ी और सर हिलाया, कहा, कोई नहीं, बाबू। आप पहले आदमी हैं।

नासमझ चम्पा कुमारी की तरह मुस्किरायी।

बिहारी ने कहा, दो रुपये अपनी माँ को दे दो।

चम्पा उठकर चली। उसको तालीम मिल चुकी थी, वह माँ की और बिहारी की आज्ञा मानकर चलेगी। उसकी चाल में, सेठ जी ने देखा, कोई बाजारी गति नहीं। चलकर उसने माँ को दोनों नोट दिये। लेकर माँ ने धीरे से मुँह चूम लिया, और आँसू पीकर सर हिलाते हुये ढाँढ़स बँधाया, घबराना नहीं।

सेठ जी उठकर खड़े हो गये। बिहारी से पूछा, तुम साले भले बदन में दाद की तरह लगने वाले हो, इससे कौन-सा रिश्ता रखते हो?

बिहारी ने कहा, अन्नदा हैं, हमारी!

सेठ जी ने कहा, यह कहो कि बहन है छोटी।

बिहारी कुछ शर्माया, कुछ कच्चा पड़ा, सिंगारी प्रभाव के कारण; मगर रुपये के अदब से दबकर कहा, हाँ, बहन है बाबू जी।

सेठ जी ने कहा, तो अब तुम जाओ, तुम्हारा काम हो गया।

बिहारी ने जवाब दिया, हम भाई भी हैं, इस घर के दरबान भी हैं, पान-सिगरेट, खाना-पीना कुछ मँगाना चाहे, इसके लिये नौकर भी हैं; आपके जाने के बाद हम जायँगे।

"अच्छा" सेठ जी ने उठते ही यह कहा, "हमको मिर्जापुर (कलकत्ता) में काम है। हम चलते हैं।" बँगला में समझाकर कहा, "हम पहले हैं तो दूसरे की आशा नहीं रखते। इतना समझने के लिये काफी है।"

रुपये देकर दरवाजे के पास चम्पा खड़ी थी। सेठ जी ने पूछा, तुम्हारा नाम क्या है?

चम्पा ने बंगाली मधुर स्वर से यथोच्चारण कहा, "चम्पा।"

सेठ जी ने बँगला मे समझाया, हमारी जगह दूसरा नही ले सकता, यह आदमी नौकर रहेगा।

कहकर आगे बढ़े।

बिहारी की समझ में न आया। आगे बढ़कर पूछा, क्या बाबू, नापसन्द है?

मधुर मगर तीखा एक तमाचा बिहारी के गाल पर पड़ा।

तिलमिलाकर जब उसने आँख खोली, तब खम्भे की बिजली के प्रकाश में तरुण अफ़सर को खड़ा देखा। पीछे से सेठ जी की आवाज़ आयी, अब सबेरा हो गया सबेरा।

साहित्यिक अफ़सर ने समझा, हमारी तारीफ़ की है। सेठ जी का मतलब था हम रुपये दे चुके हैं, सारी रात पार हो चुकी है। कल इसका राज़ लेंगे, जब यह यहाँ आया है।

## तेइस

सेठ जी अफ़सर को पकड़े घूमते थे, वे दूसरे अफ़सर के मातहत थे, इनकी दो-एक ढीली कारस्वाइयाँ उसको दिखा चुके थे। ये छाँह को पकड़ नही पाये, पकड़ने के इरादे यहाँ तक आये हैं उनके भी आदमी है। ये राज़ रखते और लेते हैं।

बिहारी को दूसरी चकाचौंध लगी, जब परिचित बाबू जी को सामने देखा।—आप है—सम्भ्रम से कहा।

अफ़सर पूरे बाबू की पोशाक मे थे। पूछा, क्या हो रहा था?

बिहारी बात टाल गया। चले गये सेठ की तरफ़ उँगली उठाकर कहा, यह हमारा साला चला गया।

अफ़सर पूरी तरह नहीं समझे। बिहारी रास्ते तक दौड़ा गया, देखने के लिये कि सेठ जी हैं या चले गये। सेठ जी उसी जगह की तंग गली में घुसे, जिसका बिहारी को पता न लगा?

उसको हिम्मत हुई। बाबू साहब से उसने कहा, आइये। हम भी आपकी मेहमानदारी करें। पेट, पेट, पेट! इतना काफ़ी है, बाबू साहब।

चम्पा के कमरे का दिया जल रहा था। खातिरदारी का बदला चुकाने के लिए वह बाबू साहब को सेठ जी जगह ले गया और बैठाला।

दूसरे कमरे में कमला के पास जाकर साँस से बातचीत करनी शुरू की इसलिये कि दूसरे कमरे में भनक न जाय। समझाया, यहाँ किसी का विश्वास न करो, अपना काम देखो, एक बाबू जी आये हैं, बड़े आदमी हैं, इनसे भी रुपये मिल सकते हैं, अब दुःख के दिन दूर हुए।

सेठ जी के रुपये देकर चले जाने का घर भर पर प्रभाव था। वे ये नही समझे, दूसरे बाबू आये हैं।

चौबीस

बिहारी, कमला और चम्पा को लेकर फिर दरवाजे चला। दोनों ने सोचा, वही बाबू हैं।

बिहारी चम्पा को लेकर कमरे के अन्दर गया। प्रकाश में चम्पा ने दूसरी सूरत देखी तो दिल में मुस्किरा पड़ी। बाबू साहब ने उसको अभ्यर्थना समझा और चम्पा को गणिका।

बिहारी ने चम्पा की तरफ उँगली उठाकर चले गये सेठ जी की तरफ़ इशारा करके समझाया उनकी हैं, दो दफ़े दस-दस की उँगलियाँ उठाईं और चम्पा की तरफ मोड़कर कहा दिये। फिर समझाया, अभी या कुछ देर बाद वह आदमी आ सकता है, बाहर से उँगली ले आकर चम्पा की बाँह में गड़ा दी।

बाबू जी ने पूछा, यह कौन आदमी है?

बिहारी ने कबूतर उड़ाया। कहा बाज़ार है, कौन जानता है कि कौन-कौन है। भीतर से डर रहा था कि सेठ फिर न आ जायँ।

तरुण साहित्यिक की रूसी करुणा चम्पा की समझ में न आई।

अफ़सर ने अंगरेजी गले में रूसी साहित्यिकता का स्वर भरकर दबंगी से कहा, यह आदमी अन्न-चोर है, दूसरे का गला नापता फिरता है, इसके साथ बंगाली गृहस्थ बहू-बेटियों का मिलना कितना भयानक है, यह समझदार ही समझते हैं। हम किसी पेशे के ख़िलाफ़ नहीं, मगर हमारा एक उद्देश्य है। अगर तुम हमारी हो जाओ तो हम रास्ता निकाल सकते हैं।

निष्काम इस साहित्यिक देश-प्रेम के अन्दर वासना की घोर बदबू निकल रही थी। चम्पा इतना ही समझी। चम्पा की माँ मारे घबराहट के काँपने लगी। उसकी समझ में नहीं आया कि ये क्या कह रहे हैं। बिहारी ने सोचा बाबू शराब के नशे में हैं। ज़ोर की हँसी आयी, दौड़ कर बाहर निकल गया और कमला की बाँह पकड़कर हिलाते हुए

शराब चढ़ाने की मुद्रा दिखाते और समझाते हुए कहा कि बाबू मदहोश हैं।

वज्र-गम्भीर बंगला में बाबू साहब ने कहा, यह जो आदमी आया था, यह बदमाश है। इसने सैकड़ों की रोटियाँ मारी हैं। इसके जैसे आदमियों के कारण देश में अकाल है, इसको पकड़ाना होगा, इसका नाम बताओ।

बिहारी ने तपाक से कहा, बाबू श्यामलाल।

तरुण-साहित्यिक आग्रह-भरी दृष्टि से चम्पा को देखकर उठे। बाबू श्यामलाल मुश्किल से खत्म हुए ब्लैक-आउट को उनके जीवन में न लगा दें, इस डर से उठकर चले और कहा, हमारे आदमी हो फिर समझोगे, हमसे तुम्हारा उपकार है या ऐसे गर्दन-मरोड़ हत्यारे से, तुम्हारी समझ का पत्थर पलट जायगा तब समझ में आयेगा। हम फिर तुम लोगों से समझेंगे, कहकर बिलायती और रूसी चाल से बाहर निकले और अपना रास्ता लिया।

चले जाने पर कुछ दूर तक बिहारी पीछे लगा गया। उन्होंने बिहारी को अपने घर बुलाया।

कमला ने चम्पा को बुलाकर पूछा, इन दोनों में कौन अच्छा है?

चम्पा ने कहा, पहला।

गिरह पर गिरह लगती रही और बात पर बात चढ़ती गयी, मगर चम्पा के चरित्र में सेठ जी के कारण धक्का न लगा। वह अपने परिवार के साथ सुख से रहती है गृहस्थ की तरह। बिहारी सेठ जी के व्यवसाय का मददगार है। तरुण साहित्यिक को वोट न मिला। सेठ जी के अफ़सर से उसकी चलती रही।

यशपाल
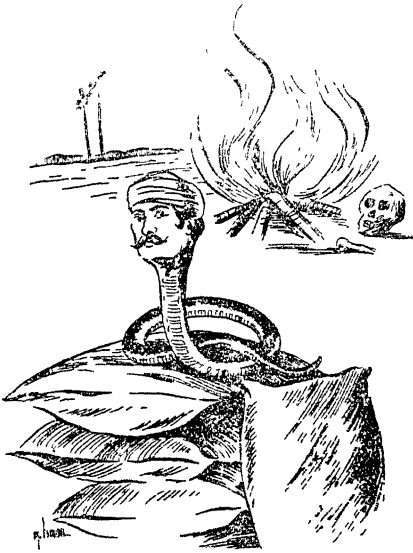
# महादान

सेठ परसादीलाल-टल्लीमल की कोठी पर जूट का काम होता था। लड़ाई शुरू होने पर जापान और जर्मनी की खरीद बन्द हो गयी। जहाज़ो को दुश्मन की पनडुब्बियो का भय था, अमरीका भी माल न जा पाता।

आखिर रकम का क्या होता? सरकार धड़ाधड़ नोट छापे जा रही थी। ब्याज़ की दर रोज़-रोज़ गिर रही थी। रुपयों की गिर रही और चीज़ो की बढ़ रही थी।

सेठ परसादीलाल ने चावल का भाव चढ़ता देख चार कोठे खरीद लिये थे। हाँथ पर हाँथ धरे बैठे रहने से कुछ करना भला था। आठ रुपये मन खरीदे चावल का भाव ग्यारह रुपये जा रहा था। सेठ जी को भगवान की कृपा पर भरोसा था, जो पत्थर में बन्द कीड़े का भी पेट भरता है, वह भला सेठ जी की सुधि न लेता। नित्य दो घंटे पूजा कर घर से निकलते थे। "और काम रह जाय, यह नही रह सकता।" पैंतीस हजार मन चावल में एक लाख साढ़े छिअत्तर हजार का मुनाफ़ा था। भाव अभी चढ़ रहा था। चावल निकालना सेठ जी को मूर्खता जान पड़ती थी। वे और खरीद रहे थे।

अनाज का भाव चढ़ा तो देश भर के भूखे-नंगे कलकत्ते की ओर दौड़ पड़े। ऐसा दुर्भिक्ष कभी किसी ने सुना न था, देखे की तो कौन कहे? मनुष्य का रूप धरे अस्थि-पंजर अवशिष्ट कुत्तो के साथ जूठे पत्तों

और सकोरों पर यों टूटते कि भगवान का नाम ! सब ओर नर-कंकाल देहों का कातर आँखे उठा हाथ पसार मुट्ठी भर अन्न के लिये चिल्लाना सुनाई देता''मागो बाबूरे''मूठी भात। सेठ जी अपनी कोठी से आते-जाते इस त्राहि-त्राहि और आतंक के वातावरण में राम-राम, हरे राम का जाप करते चले जाते।

जिस अन्न की एक मुट्ठी के लिये कंकाल समूह त्राहि-त्राहि कर रहा था, वह सेठ जी के कोठो में भरा और 'तेजी' की प्रतीक्षा कर रहा था। सेठ जी के कोठो में कुछ समय विश्राम कर लेने से चावल का मूल्य सवाया-डेवढ़ा हो जाता। कोठों मे बन्द चावल की, रुपये के रूप में बढ़ती यह शक्ति बाज़ार से दूसरे चावल को अपनी ओर खींचती जा रही थी।

क्षुधा-पीड़ितो को देख सेठ जी का हृदय पसीज उठता। भुने चने का एक बोरा उनकी कोठी के द्वार पर रख दिया जाता। दरवान प्रत्येक माँगने वाले को एक मुट्ठी चना देता जाता। चने का यह दान एक भयंकर संघर्ष का रूप ले लेता। भीख बाँट सकने लायक व्यवस्था बनाये रखने के लिये डाँट-फटकार, लात-घूँसे और कभी डंडे और जूते तक के उपयोग की आवश्यकता हो जाती।

सेठ जी के द्वार पर दान था और भीतर व्यापार। एक के बाद दूसरा दलाल आकर चावल के सौदे की बात करता। भूखे कंगालों के प्रति बह जाने वाली सेठ जी उदारता, व्यापार के क्षेत्र मे अविचल सेनापति की दृढ़ता में बदल जाती।

लाला जी के यहाँ चावल सुबह से पैंतीस के भाव बिक रहा था। दोपहर में आकर उन्हें मालूम हुआ मुनीम जी ने पाँच सौ मन सुबह से बेच डाला। लाला जी माथा ठोक लिया—"क्या सत्यानाश कर डालोगे मुनीम जी ! बन्द करो !'''"नहीं भाई, नहीं है अपने पास !"

दलालों की ओर हाथ बढ़ा उन्होंने कहा ! 'हम तो भाई साढ़े पैंतीस खुद खरीदार हैं।'

सड़कों-बाजारों में दुर्भिक्षितों की संख्या और उनका चीत्कार बढ़ता जा रहा था। लाला जी परेशान थे, सरकार चावल पर कन्ट्रोल कर रही थी मुनीम जी राय दे रहे थे, समय चढ़ते जितना निकल जाय निकाल दिया जाय। चिढ़कर लाला जी ने कहा—"सरकार के दाम लगाये से क्या होता है? जिसके कोठे में माल है दाम उसका लगेगा! सरकार कहाँ से लाकर सस्ता बेच लेगी? कोई कागद का नोट है कि मन चाहा छाप लिया? सरकार भी लावेगी तो व्योपारी से?"

कन्ट्रोल के कारण प्रकट में सौदा बन्द था। पर असल में सेठ जी पैंसठ के भाव बेच रहे थे। मुनीम जी चिन्ता से कहते "पैंसठ के भाव खपेगा कितना, अमान की फसल भी तो आवेगी?" सेठ जी ने समझाया—"ऐसा छोटा दिल करने से कहीं व्योपार होता है मुनीम जी?...इस भाव से आधे-पौने कोठे भी निकलेंगे तो अपनी दोहरी-तेहरी खरी है! आगे के राम जी मालिक हैं।"

सभी बज़ारों से आदमियों के मक्खी-मच्छरों की तरह पटापट मरने की खबरें आतीं। सुनकर सेठ जी का कलेजा दहल जाता। और भी भयंकर खबरें आने लगीं। मुर्दा घाट पर लाशों के ढेर लगे हैं। लकड़ी रुपये की आठ सेर मिल रही है, बल्कि मिलती ही नहीं। गरीब लोग लाशें छोड़ चले आते हैं। "बेचारे अन्न के दाने को तरस कर मर गये। अब उनकी मिट्टी की यह दुर्दशा! बेचारों की गति कैसे होगी।" लाला जी की आँखों में आँसू आ गये। उनकी कोठी पर रुपये में एक पाई धर्मादय का कटता था। व्यौपार-व्यौपार है और धर्म-धर्म, धर्मादय का रुपया कभी रोकड़ में लगा देते तो उसे ब्याज़, मूल और

मुनाफे सहित फिर धर्मादय में कर देते। वह भगवद् अर्पण था। कंगालों की दुर्दशा देख उसी खाते में से लाला जी दो बोरी चना रोज़ बटवाते थे। फिर बयालिस हज़ार रुपया धर्मादय में हो रहा था। जैसे मुनाफ़ा बढ़ा वैसे धर्मादय भी!

'मुनीम जी'—सेठ जी ने हुक्म दिया—'जो भाव लकड़ी मिले, बीस हजार की लकड़ी खरीद कर घाट पर गिरवा दो! किसी बेचारे की मिट्टी की दुर्गति न होने पावे!

अगले दिन सुबह ही छापे में (समाचार पत्र मे) छप गया—"महादान! सेठ परसादीलाल टल्लीमल का महादान · !" गति हीनो की अवस्था से जिनका कलेजा मुँह को आ रहा था ऐसे लोगो ने आ सेठ जी को धन्यवाद दिया। विनीत स्वर में, अकिंचन भाव से सेठ जी ने उत्तर दिया—"मै किस लायक हूँ···सब भगवान का ही है। उन्ही के अर्पण है · मनुष्य है किस लायक?

श्री रांगेय राघव

घर निर्जनता की अर्गला लगाये मूक खड़े थे धुँधलका
अभी तक भी मानों कोनो मे छिपा बैठा था।

# अदम्य जीवन

हम पगडंडियो से बढ़ते जा रहे थे। सूर्य आकाश में चढ़ने लगा था। कहीं-कहीं कोई किसान किसी पेड़ की छाया में बैठा दीख पड़ता था। सर्वत्र नीरवता छा रही थी। आकाश में बादल तैर रहे थे, जिन्हे देखकर खेतों से एक सोंधी-सी उसाँसे उमॅग उठती थी। दूर हरियाली की डहर तेज चलती हवा की तरंगो पर गूँज-सी उठती थी। हरी-हरी पृथ्वी पर कभी-कभी बादलो के छा जाने से कहीं धूप और कहीं छाया बरबस हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। किन्तु मेरे साथी को जैसे इन सब बातो में कोई दिलचस्पी नही थी। बायाँ हाथ उठा कर वह कह रहा था—'वहाँ है शिद्धिरगज देख रहे हो न वह ताड़ का पेड़ ?'

दूर—लगभग मील भर की दूरी पर – कालनेमि की तरह खड़ा था वह लम्बा ताड़ का पेड़। जैसे-जैसे हम उस पेड़ की तरफ़ बढ़ रहे थे, आकाश के बादल लहरों की तरह उस पर केन्द्राकार आ-आकर फैल जाते थे। वर्षों से ताड़ का वह पेड़ इसी तरह खड़ा है और वर्षो से उसके हिलते पत्तो ने बादलो की मर्मर सुनी है; किन्तु आज उसकी छाया में मनुष्य विक्षुब्ध हैं।

मेरा साथी चुपचाप बढा चला जा रहा था। एकाएक वह ठिठक कर खड़ा हो गया। मैं उसके पीछे था। मैने उसका कन्धा पकड़ कर कहा—'भट्टाचार्य जी, क्या हुआ ?'

"कुछ नहीं; गाँव आ गया।"

'गाँव ! पर यहाँ तो कोई बस्ती शुरू ही नहीं हुई।'

साथी की आँखों में एक निराश मुस्कराहट काँप उठी—'नहीं क्यों कहते हैं आप ?' वह देखिये वह···और उसने अपना हाथ सामने की ओर उठा दिया। मिट्टी का एक छोटा-सा ढूह घास में से अपना अनगढ़ सिर निकाले चुपचाप पड़ा था। मैं समझ नहीं सका कि क्या यही गाँव है। मैंने कहा—'यह तो मिट्टी का एक ढूह मात्र है।

इस गाँव की यही तारीफ़ है। आदमी मिलने से पहले यहाँ कब्रें शुरू हो जाती हैं।

मैंने देखा, वह सचमुच कब्र थी। कच्ची मिट्टी, सिर पर कोई साया नहीं, चारों तरफ़ कोई घेरा नहीं। हम लोग बढ़ चले। प्रतीक्षा की-सी नीरवता में प्रायः हर पाँच-दस क़दम पर एक-एक कब्र थी। मेरा हृदय काँप उठा।

सामने एक टूटा घर था—भग्न, विध्वस्त, मानो तूफ़ान में उसका वैभव नष्ट हो गया था। और उसके सामने केले के पेड़ों की शीतल और मनोरम छाया में चौदह कब्रें आँखे मूदे पड़ी थीं। एक लड़का जो वहीं बैठा एक आम की गुठली का सब कुछ खा जाने में लगा था, अपने आप चिल्ला उठा—'बाबू एक में दो-दो तीन-तीन हैं। एक-एक में दो-दो तीन-तीन।

और वह फिर गुठली पर मुँह मारने लगा। भट्टाचार्य जी पेड़ों की घनी छाया में एक पेड़ से सटकर खड़े विश्राम कर रहे थे। वे कहने लगे—'बाहर से तुम्हारी तरह ही बहुत से लोग आते हैं। हम चाहते हैं कि तुम यहाँ की एक-एक कब्र से बात करो और हिन्दुस्तान के कोने-कोने में जाकर कहो कि जिस ढाके की मलमल एक दिन शाहंशाह पहनते थे, आज वहाँ जुलाहे चूहो की तरह मर रहें हैं। बोलो,

सुना सकोगे संसार को यह ?"

छोटी-छोटी पगडंडियों से होता हुआ यह स्वर कब्रों से टकराकर गूँज उठा और मानो कब्रों से आवाजें आने लगीं। चौदह कब्रें आँखों के सामने एकबारगी उनमें सोये कंकाल तड़प उठे और नाच उठे यातना से व्याकुल भूख से तड़प-तड़प कर मरते हुए प्राणियों के चित्र !

राह में एक वृद्ध अपनी चटाई पर बैठा करघा चला रहा था। हम लोग उसी के पास जाकर रुक गये। वृद्ध ने हमारी ओर दृष्टि उठाई। भट्टाचार्य जी ने कहा—'दादा' आगरे से आये हैं, यह यहाँ का हाल देखने।

जियो बेटा, जियो, वृद्ध ने गद्गद् स्वर से कहा—'यह आगरा कहाँ है ?"

हिन्दुस्तान में ?

हिन्दुस्तान से आये हो ? आओ, बैठो, आओ। उसने चटाई की ओर इशारा किया। हम लोग बैठ गये। वृद्ध कहने लगा—'जो देखने लायक था वह तो ख़त्म हो गया। अगर तुम देखने आये हो' तो देखो; आगे जाने क्या हो ?"

वह क्षण भर चिन्तित-सा दिखाई दिया। फिर भी एकाएक स्वर बदल कर उसने कहा—'तुम हमारे मेहमान हो भैया, आराम से बैठो ज़रा। हम भूखे हैं; मगर तुमने जो इतना कष्ट किया है किसलिये ? हमें अपना समझ कर ही न ? फिर तुम समझते हो, हमें इसका ज्ञान नहीं है।

मै चुप बैठा रहा। भट्टाचार्य जी कहने लगे—'दादा कष्ट-वष्ट की बात छोड़ो। इन्हें इस गाँव के कुछ हाल-चाल बताओ।"

वृद्ध एक क्षण चुप रहा। फिर बोला—हाल-चाल ? वह देखो···
और उसने एक कब्र की ओर इशारा किया और कहता गया—शिद्धिरगंज के हाल-चाल सुनना चाहते हो ? एक दो-तीन गाँव के एक छोर से दूसरे छोर तक गिनते चले जाओ। क़सम है, अगर तुम किसी को भी हाय-हाय करते पाओ, नहीं आज कुछ नही है। था एक दिन, जब गाँव मे दिन-रात रोने कराहने के सिवा और कुछ भी सुनाई नही देता था; मगर अब तो वह सब कुछ नही।

वास्तव मे हमे कोई भी रोता नही दीखा। सब मानो अपने-अपने काम मे लगे थे। मैने देखा, डाक्टर चुपचाप घरों की ओर देख रहा है। बाँस के सुन्दर-सुन्दर झोंपड़े ! सदियो से बंगाल पर—हम लोगों पर—बार-बार बाहरी-हमले होते रहे; मगर आक्रमणकारी कभी भी यहाँ की शस्यश्यामला पवित्र भूमि को नहीं रौंद सके। यहाँ मनुष्य को इतना समय मिल चुका था कि वह बैठकर आराम से इतने सुन्दर और स्वच्छ घर बना सकता। और आज वही घर निर्जनता की अर्गला लगाये मूक खड़े थे। अकाल ने उन पर अपनी जो वीभत्स छाया डाली थी उसका धुँधलका अभी तक भी मानो कोनों में छिपा बैठा था।

मै देख रहा था, जिनके शरीर में केवल हड्डियाँ शेष थी; आज भी उनमे जीवित रहने का साहस था। अकाल आया, बींमारी आई, और फिर दूसरे अकाल की गहरी आँधी भी क्षितिज पर सिर उठाने लगी है; किन्तु अविचलित हैं यह ! किसलिये ? इसीलिये न कि यह जनता किसी से भी दब नहीं सकती। एक दिन विजेताओं ने इन्हें कुचला था आज भी मनुष्य का स्वार्थ और भीषण व्यापार इन्हें निचोड़ रहा है; किन्तु यह तो अभी तक अदम्य अविजेय हैं

बूढ़ा फिर कहने लगा—अब के उसका स्वर दृढ था—'इस गाँव में आज घरो पर किसकी दृष्टि ठहरेगी, भैया ? इधर देखो, वे जो छाया में सो रही हैं चुपचाप, वे मिट्टी की कच्ची कब्रें गिनकर देख लो, अगर पाँच सौ से कम दिखाई पड़े ! और एक-एक में एक-एक ही आदमी दफ़नाया गया हो, यह भी कोई ज़रूरी बात नहीं है। यह है हम मुसलमानो की बात। और अगर तुम सुनना चाहते हो कि हिन्दू क्यों नहीं मरे, तो जाकर शीतलक्षा की धारा से पूछो कि क्यो तू शिद्धिरगंज के सैकड़ो किसानो को बहा ले गई, जिनकी हड्डियो तक का आज पता नहीं ?

और वह सहसा मुस्कुरा उठा। मैंने देखा और समझने की चेष्टा की। मृत्यु ने उसे विक्षुब्ध कर दिया था। उसने कहा—'इस गाँव में क़रीब-क़रीब हर घर में मौत हो चुकी है। हज़ारो व्यक्ति मर चुके है; मगर सब तो नहीं मर सकते थे, और शायद सब नही मरेंगे; मगर कौन जाने आगे क्या होगा ?"

इस समय कुछ और लोग भी वहाँ इकट्ठे हो गए थे। रहमत, जो अपने ताने को एक बार ठोककर उठ आया था, मगर वहीं बैठ गया था। चर्चा चल पड़ी। रहमत कहने लगा—"हाँ, काफ़ी लोग मर गये हैं।"

'तुम्हारे घर में कितने आदमी थे ?'

'पच्चीस थे, जिनमें बीस मर गये। अब पाँच बाकी हैं।' और उसने अब्दुल के हाथ से हुक्का लेकर धुँआँ उगलना शुरू कर दिया। बोला—"यह मिल जाती है, भैया, बस !" उसने तम्बाकू की ओर इशारा किया और मुस्करा उठा। पहले वृद्ध की वह क्षुब्ध आकृति अब कुछ दीन—की सी गई थी—मानो पहले जो व्यक्तिगत दुःख सजीव होकर चारो ओर हाहाकार कर उठा था, अब सामुहिक रूप मे केवल साधा-

रण-सा होकर चक्कर काटने लगा है। कुछ देर बाद रहमत ने एक लम्बी साँस छोड़ी और फिर गम्भीर भाव से कहा—'आने दो, जो कुछ आएगा, उसे झेलेंगे।'

पगडंडी पर मरियल भुखमरे कुत्ते भूक उठे, मानो रहमत की बात को समझ कर उन्होने उसका समर्थन किया हो। रहमत ने फिर कहा—'उन दिनो तीस-चालीस आदमी रोज मरते थे। अकाल तो खत्म हो गया; मगर बीमारियो ने जो पकड़ा, तो उनसे अभी तक गला नही छूटा।'

डाक्टर ने पूछा—'क्या-क्या बीमारियाँ हैं यहाँ?''

रहमत बिना सोचे ही बतला गया—'मलेरिया, बसन्त (चेचक) और चर्म रोग।'

मैंने चारों ओर दृष्टि उठाकर देखा। लोगों के गालों की हड्डियाँ उभर आई थीं, आँखो में सूजी की ललाई छा रही थी, किसी-किसी के गले में सूजन थी। उन्हें लक्ष्य कर डाक्टर ने मुझसे कहा—'क़रीब-क़रीब सभी या तो मलेरिया के शिकार रह चुके हैं या अब भी मलेरिया ग्रस्त हैं।'

एक चंचल लड़का कहने लगा—'आपको अकाल की बात कुछ नही मालूम। यहाँ चावल किसी भी दाम पर नहीं मिलता था। तीन साढ़े तीन सौ आदमी तो इस गाँव को छोड़ गए। भुखमरे नहीं, तो ··और उसकी झंकारती हँसी एक बारगी ठिठुरतीं-सी फैल गई। उसकी बगल में एक लड़की खड़ी थी, कोई नौ-दस बरस की। वह बीच में ही बोल उठी—भूल गया न कि अभी भी कई भुखमरे हैं, जो यहाँ लंगरखाने में खा रहे हैं।'

सहसा रहमत ने कहा—अब्दुलरहमान, आओ, इधर बैठो।' अब्दुल रहमान अभी आया ही था कि एक आदमी कह उठा—

'इसके घर में सोलह आदमी थे, जिनमे से यह अकेला ही बचा है।' अब्दुल रहमान ने निराश नयनों से हमारी ओर देखकर कहा—क्या बताऊँ बाबू, अफ़सोस सिर्फ यह है कि अब घर भी नही रहा। रहमत के यहाँ रहकर इन्हें दुःख देता हूँ।'

रहमत हँस पड़ा। वह बोला—'क्या बात कहते हो, अब्दुल-रहमान तुम तो एक आये हो; मगर और जो उन्तीस की जगह बाकी है · ' और सब हँस पड़े। इतने मे सामने से घूँघट काढ़े एक स्त्री निकली। मैं हठात् पूँछ बैठा—'रहमत क्या तुम्हारे गाँव मे स्त्रियो को अपनी इज़्ज़त बेचने पर भी उतारू होना पड़ा था?'

रहमत के मुँह पर एक काली छाया फैल उठी। उसने पल भर कुछ नहीं कहा। फिर गम्भीर स्वर में कुछ सोचकर बोला—'बाबू, बात तो बुरी है; मगर है सच। कुछ थी ऐसी; मगर बुरा कहकर भी कितनी बुरी की वे, मैं नही जानता, कुछ कहते हैं कि जैसे इतने मरे, वे भी मर जातीं, तो हर्ज ही क्या था? पर मैं सोचता हूँ, मर जाना क्या सहज है? कोई क्या अपने आप मर जाना चाहता है? खैर, जाने दीजिए, उस बात को जाने ही दीजिये।'

अब्दुलरहमान हर बार कह उठता था—'क्या करेंगे हम, क्या बताइए न?' उसके स्वर में अथाह निराशा और विवशता गूँज उठती थी। 'चावल का भाव अब भी अठारह या उन्नीस रुपये मन का है। कहाँ से खरीदे हम? गाँव मे अधिकांश अब भी एक वक्त ही खाते हैं। और चावल खरीदने वाले भी सब ही तो चावल नहीं खाते, कई तो सकरकन्द के ही सहारे जी रहे हैं।'

'इतनी आमदनी नहीं, फिर बताओ'—रहमत कहने लगा—'कोई कैसे खरीदे? अकाल खत्म हुआ ही कब, जो दूसरा शुरू होगा। हमने कच्ची कब्रो में कई लाशो को बिना क़फ़न के गाड़ दिया। आपको

शायद मालूम न हो, हम मुसलमानों के यहाँ लाश को कफ़न में बाँध कर गाड़ने का कायदा है। मगर कायदा क्या करे, जब ज़िन्दों के लिये भी कपड़ा नही है तो मरों की क्या कीमत है, बाबू ?"

उसका यह प्रश्न उसका अपना नही था। उसने अनजाने नही, जान-बूझकर ही उँगली उठाई थी उधर, जिधर मनुष्य को नंगा रख कर मनुष्य ने अपने मुनाफ़ो के लिये बेशुमार कपड़ा तालों में बन्द कर रखा था, जहाँ वस्तु मनुष्य के लिये न होकर पैसे के लिये थी। कितना बड़ा व्यंग्य और विद्रूप था यह कि आज कपड़ा बनाने वाले स्वयं नंगे थे !

हम लोग काफ़ी देर तक बैठ चुके थे। एक लड़का कह उठा—'चलिये बाबू, गाँव देखिए।' और हम लोग उठे। वहाँ एकत्र हुए लोगों में से कुछ ने हमें प्रणाम किया, कुछ ने आशीर्वाद दिया और हम लोग चल दिये।

कहीं-कहीं कब्रें टूट गई थीं। सामने के दो घर बिलकुल टूट गये थे, उनके केवल चबूतरे बाकी थे। सामने एक गाय घास चर रही थी। पेड़ो की छाया में अनेक कब्रें सोई पड़ी थी। लड़के ने कहा—'यह हैं आदूमियाँ का घर।' मर गया बेचारा। उसके घर में उन्नीस आदमी थे, अब कोई भी नहीं बचा है।" वायु सनसनाती हुई बह गई। आदूमियाँ वहाँ बैठकर हँसता था, आज उसका कोई पता नही। लड़के को घर का एक-एक प्राणी याद था—अभी कल ही की तो बात थी। मगर वह निर्विकार खड़ा था। मानवी भावनायें कितनी कठोर होगईं थीं ! सहसा आगे चलकर वह एक कब्र पर खड़ा होकर कहने लगा—'बाबू, यह मेरे बाप की कब्र है। बस, मैं इतनी कब्रों में से इसे ही पहचानता हूँ। वह मुझे बहुत प्यार करता था। सचमुच वह मेरे ही लिये मर गया।' लड़का कुछ ठिठुर गया। मैंने देखा डाक्टर चौंक

उठा। वह मुझसे बोला—'यह मुसलमान होकर कब्र पर खड़ा है ? हमारे यहाँ तो ऐसा नही होता।'

भट्टाचार्य जी मुस्करा उठे। उन्होने लड़के से वही प्रश्न दुहरा दिया। लड़का क्षण भर चुप रहा। फिर हँस पड़ा—'यहाँ तो सब ऐसा ही करते हैं बाबू ! कहीं पैर रखने की भी तो जगह नही है। कहाँ तक कोई कब्रों को बचाता हुआ, उनका चक्कर देकर, चले ? इतनी ताकत है कितनो में।"

हम लोग आगे बढ़े। भट्टाचार्य जी एक आदमी से कुछ बातें करने लगे। वह आदमी कह उठा—'गाँव—कमेटी व. यूनियन बोर्ड के मेम्बर सब चोर हैं, चोर ! कोई हमारी परवाह करता है ? रिश्तेदारो को कारड देते हैं, अपनो को देते हैं; हमारी क्या पूछ · ? दूसरा आदमी चलते-चलते रुककर कह उठा—हममें एका नहीं है, वर्ना क्या मजाल कि वह अपनी मनमानी करें।

तब तो बंगाल अभी जीवित है ! आज भी वह अपना रास्ता खोज निकालना जानता और चाहता है। भूख से व्याकुल होकर भी यह भारत का संस्कृतिजनक सिर झुकाने को तैयार नहीं है। आज भी वह इन सब आँधी-तूफानो को झेलकर फिर से विराट रूप में फूट निकलना चाहता है। सचमुच कोई इनका कुछ नही कर सकता। यदि जनता में चेतना है, तो इन्हें भूखों मारने वाले नर-पिशाच नाज-चोरों का अन्त दूर नहीं है।

एकाएक लड़का झोंपड़े के पास पहुँच कर रुक गया। हमने देखा, भीतर कुछ जुलाहे साड़ियाँ बुन रहे थे। लड़के ने कहा—'ढाके की साड़ियाँ प्रसिद्ध हैं न, बाबू ! अब यहीं दो-चार घर रह गये हैं, और कुछ दिन बाद शायद · , वह कहते-कहते चुप हो गया ! जुलाहे काम छोड़कर हमारी ओर देख रहे थे। सामने ही एक औरत बैठी थी वह

विधवा थी। उसके घर के दस आदमी मर चुके थे—और सामने केवल तीन अनगढ कब्रें थी।

अधिकाश घरो की टीनें उखड़ गई थी। और न जाने कितनों ने भूख से लड़ने के लिये अपनी टीनें बेच दी थी। भट्टाचार्य जी ने उँगली से दिखाते हुये कहा—'वह सामने एक भद्र लोक का घर था। उसे भी टीन बेच देनी पड़ी, क्योंकि···।" सहसा वे रुक गये। बात पलट कर उन्होंने कहा—'वे जो टीने दिखाई दे रही हैं उखड़ी-उखड़ी, इसकी वजह यह नहीं कि उनके मालिक उन्हें बेचना नहीं चाहते थे; मगर इसलिये कि उनमें इतनी ताक़त ही नहीं रही थी कि उठाकर इन्हें बाज़ार तक तो भी जाते और यही कारण है कि ··।'

मैने देखा, घर के चबूतरे के बीचोंबीच एक कब्र थी। यह भी एक मनुष्य था, जो अपने घर का वक्षस्थल फाड़कर सो रहा था। फोड़ों की तरह वे कब्रें जगह-जगह सूजी हुई सी दिखाई दे रही थीं।

धूप तेज हो रही थी। हम हाट में पहुँच गये थे। मछलियों की बू वातावरण को भेद रही थी। एक बूढ़ा व्याकुल-सा भागा जा रहा था। भट्टाचार्य जी ने बताया—उसे उस समय तीव्र ज्वर था, जिसके कारण उसका दिमाग़ ठीक नहीं था। हाट के एक कोने में स्थानीय डाक्टर की एक डिस्पेन्शरी थी—छोटी-सी गमग़ीन सी। डाक्टर के दिल में यह मुफ्त दवाखाने खोले जाने की बात जमती नहीं थी। आख़िर वह फिर क्या खायेगा? हमारे डाक्टर ने उससे बातचीत की। उसके पास न कुनैन थी, न सिन्कोना, और गाँव में हर घर में मलेरिया का रोगी था, हर बच्चे की तिल्ली और जिगर बढ़े हुये थे।

दवाखाने की एक बेंच पर बैठा एक आदमी कह रहा था—'हर एक चीज़ चोर बाज़ार में है, हरएक चीज़ पर मुनाफाखोरी हो रही है; कोई करे तो क्या करे!

एक औरत, जो पास में खड़ी थी, कहने लगी—'तुम डाक्टर हो ? पहले क्यों नहीं आये ? जाने कितनी जानें बच जातीं ? यहाँ एक सरकारी दवाखाना है, जिसमें कोई खास दवाई नहीं, मरीज़ों की कोई खास तवज्जह नहीं। कहाँ ढाकेश्वरी-मिल नम्बर दो में तुम्हारा दवाखाना है ? अब वही आयेंगे कल से; चार-पाँच मील तो है ही···।'

उस समय उस औरत की बात को अनसुनी करके खैराती अस्पताल का असिस्टेन्ट डाक्टर मुझसे कह रहा था—'हमने पचहत्तर फीसदी आदमियों की हालत सुधार दी है ·।' भट्टाचार्य जी मुस्करा रहे थे। एक ओर हमारे शासक बोल रहे थे, दूसरी ओर वही बात जनता कह रही थी। सामने अनेक जर्जर रोगी खड़े प्रतीक्षा कर रहे थे—बुझी हुई आँखे उभरी हुई पसलियाँ और वही भयानक चर्म-रोग।

यहाँ से हम लोग लगरखानों की ओर चल दिये। लंगरखाने और जगह बन्द हो गये हैं, किन्तु यहां अभी तक खुले हैं। खुले हुये मैदान में पेड़ों की छाया में, तीन भट्टियाँ खुदी हैं। एक बड़ों का लंगरखाना है, जहाँ खिचड़ी बँटती है। क़रीव सौ आदमी आज भी उसी पर पलते हैं। मैली-कुचैली औरतों के जमघट में कुछ बैठी चूल्हा फूँक रही थीं। एक औरत ने बताया, बच्चो के दो लगरखाने हैं—एक हिन्दू, एक मुसलमान दोनों में सौ-सौ बच्चे खाते हैं। साढ़े सात सेर खिचड़ी बँटती है और कुछ मछली, बस इतना ही। किसी तरह लोग जी भर रहे हैं। भट्टाचार्य जी ने बताया कि फ्रेन्ड्स एम्बूलेन्स यूनिट इन्हे चला रहा है।

मैं और भट्टाचार्य जी आगे चल पड़े। फिर हम दोनों एक पेड़ के नीचे बैठ गये। भट्टाचार्य जी कहने लगे—'तुमने देखा, साढ़े सात सेर ? सौ में कितना पड़ा ?

सामने भट्टी में से धुँआँ निकल कर ऊपर घुमड़ रहा था। आज सारा बंगाल महानाश की आग पर लटका भुन रहा है और चारों ओर से राक्षस मानों उसे चबा जाना चाहते हैं। इतने में डाक्टर आ गया। उसके साथ एक औरत थी, जो रो रही थी—'दवाखाना लेकर अब आये हो। पहले आते, तो मेरे बच्चे तो बच जाते···। अरे, वह माँ थी। उसके छः बच्चे मर गये थे और सिर्फ दो बचे थे।

'मैं अब यहीं लंगरखाने में काम करती हूँ, किसी तरह पेट भर जाता है। भीख नहीं माँगी जाती, बाबू···।' और फिर वह रो पड़ी—'मेरे बच्चे ·! दिल कड़ा कर हम लोग वहाँ से चल दिये। वह आँखों में आँसू भरे शत-शत आशीर्वाद देती-सी ज्यों की त्यो खड़ी रही।

खेतो मे कब्रे चुपचाप उदास-सी सोई पड़ी थीं, जिन्हें चिथड़ों में लिपटा एक बुड्ढा एक पेढ़ की छाया में बैठा विस्मय भाव से देख रहा था। एक टूटी-सी दीवाल में तीन आले अब भी खड़े थे; मगर घर नहीं थे। आठो घर विध्वस्त पड़े थे। उनके सामने बराबर-बराबर में तीस कब्रे पड़ी थीं और एक नवयुवक जो देखने में बूढा लगता था, उनकी ओर देख-देखकर मुस्करा रहा था। वे सब एक दिन जुलाहों के घर थे; पर अकाल के ताने और बीमारियों के बाने ने सहसा उनके जीवन-व्यापार का अन्त कर दिया।

'दिन में नहीं, दिन में नहीं, रात को'—भट्टाचार्य जी कहने लगे—गाँव मे कब्रिस्तान की-सी छायाएँ नाचने लगती हैं। शिद्धिरगंज कभी भी नहीं भूलेगा कि एक दिन आदमी के बनाये अकाल ने उसका सत्यानाश कर दिया था। जो आदमी अपनी हड्डियों से—दधीचि की हड्डियों से यह कथा लिख गये हैं, बंगाल उनकी ज्वलन्त स्मृति को कभी नहीं भुलायेगा।'

मेरे मुँह से हठात् निकल गया—'उसे हिन्दुस्तान कभी नहीं भुलायेगा भट्टाचार्य जी, मानवता उसे कभी नहीं भुला सकेगी।'

डाक्टर आगे-आगे चल रहा था। हम लोग लौट रहे थे। नदी की पतली धारा में कुछ नंगे लड़के नहा रहे थे, जिनकी पतली हड्डियों से टकरा कर छोटी-छोटी लहरें मानों निराश उदास लौट जाती थीं।' उन्होंने हमें देखा और समवेत स्वर से चिल्ला उठे—'इन्क्लाब, जिन्दाबाद! इन्क्लाब जिन्दाबाद!!'

गर्व से मेरी छाती फूल उठी। कौन कहता है कि बंगाल मर गया है? जहाँ भूख और बीमारियों से लड़कर भी मनुष्यों के बालको मे क्रान्ति को चिरंजीवी रखने का अपराजित साहस है, वह राष्ट्र कभी भी नहीं मर सकेगा। हड्डी-हड्डी से लड़ने वाले यह योद्धा जीवन की महान शक्ति को अभी तक अपने से जीवित रख सके हैं। संसार कहता है, स्टालिनग्राड मे लोग खण्डहरो में से लड़े थे और उन्होने दुश्मन के दाँत खट्टे कर दिये। उन्होंने बर्बरता की धारा को रोककर भारत को गुलाम होने से बचा दिया। किन्तु मैं पूछता हूँ, क्या शिद्धिरगंज दूसरा स्टालिनग्राड नही है? मनुष्य भूख से तड़प-तड़पकर यहाँ जान दे चुके हैं, वे भीषण रोगो का शिकार हो चुके हैं, उनके घर खण्डहर हो गये है, कब्रो से जमीन ढॅक गई है, नदियो मे लाशो की सड़ाँध एक दिन दूर-दूर तक फैल गई थी; किन्तु मनुष्य का साहस जीवित है। आज भी बंगाल के बच्चे क्रान्ति को नहीं भूले हैं। क्या इन योद्धाओ ने भारतीय संस्कृति की जड़ों पर होने वाले आघात को सह कर आज संसार को यह नही दिखला दिया कि जनशक्ति कभी पराजित नहीं हो सकती, वह कभी मर नहीं सकती।

जब फाशिस्तवाद से बर्बर नर-पिशाच मुनाफ़ाखोरों ने नाज पर बैठकर ज़हर उगला, कपड़ाचोरो ने उनकी बहू-बेटियो को निर्लज्ज होने दिया, तब भी क्या इन्होने सिर झुकाया? नही, ये वीरो की तरह लड़े हैं। आज शिद्धिरगंज की पृथ्वी शहीदो के मज़ारो से ढक गई है। युग-युग

तक संसार को याद रखना पड़ेगा कि एक दिन मनुष्य के स्वार्थ और असाम्य के कारण गुलामी और साम्राज्यवादी शासन के कारण, बंगाल जैसी शस्य श्यामला भूमि में भी मनुष्य को भूख से दम तोड़ना पड़ा था और लोगो ने उसे पूरी शक्ति से इसलिये झेला था मानवता जीवित रहना चाहती थी। उसे कोई मिटा नही सकता।

आज अकाल का वह पहला भीषण स्वरूप समाप्त हो चुका है। किन्तु रोगो की वर्षा आँधी के बाद प्रलय उमड़ा रही है और इस समय भी लोग कहते हैं—बंगाल का अकाल समाप्त हो चुका है! पर आज यह कुछ नहीं भी महामरण का भीषण नृत्य है जब हम लोग शिद्धिरगंज से लौट रहे थे, शीतलक्षा की प्रशान्त धारा में नहाता हुआ एक आदमी गा रहा था—

सोनार बाँगला होलो शोशान
एक साथे सबे चल।

उसका यह स्वर दूर-दूर तक लहरों पर फैला था।

ज़मींदार के यहाँ पाँचू यह आस लगाकर गया था कि सहारे के लिये एक और जुगत लगाएगा सो उलटे ट्यूशन भी गई। ज़मींदार अपनी पत्नी और बच्चों को कल पछाँह भेज रहे हैं। भुखमरों की बढ़ती हुई लूटपाट और हमलों से दयाल भी डरते हैं। डाकू को डाकुओं का डर है। पचास भोजपुरिये लठैत और दो-दो बन्दूकें पास रखकर भी सपनों में चौंक-चौंक उठते हैं कि कहीं...!

दयाल वर्ग के प्रति पाँचू का निष्क्रिय विद्रोह अपनी असमर्थता पर व्यङ्ग बनकर उसके मस्तिष्क में चुभ रहा था। अतचेंतन मनमें छिपा हुआ यह व्यङ्ग पाँचू को चिढ़ा रहा था। अपनी इस खीझ को उलट-पलट कर अनेक पहलुओं से देखते हुये सोचने लगा कि हमारी कमज़ोरी ने ही इन्हे बढ़ावा दिया है। हमारे निष्क्रिय त्याग और सहनशीलता ने ही इनकी स्वार्थी प्रवृत्तियों को हम पर अधिकाधिक अत्याचार करने के लिये उसकाया है। सदियों की आदत ने इन्हें एक झूठा बल दे दिया है। मन्दाग्नि रोग से पीड़ित, चर्बी बढ़े हुये फुसफुसे बदन के मसनदी-गधों के आगे, तगड़े से तगड़ा पहलवान भी एड़ियाँ रगड़ने लगता है। बड़े से बड़ा बुद्धिमान भी इन कुन्दजहन पैसे-खोरों की अक्ल को इनकी तिजोरी की तरह ही बड़ी बताकर अपने अस्तित्व को साफ़ भुला देने में ही अपनी रक्षा समझता है। यह सब इसीलिये न कि इनके पास पैसा है।

पाँचू की झुकी हुई आँखें मोहनपुर की ओर उठीं। दयाल ज़मीदार की हवेली, गाँव की हद के पार थी। पाँचू अब मोहनपुर में प्रवेश कर रहा था। गाँव की झोपड़ियाँ—नहीं, अब इन्हें झोपड़ियाँ कहना भी पाप होगा—मिट्टी की चार टूटी हुई दीवालों का ढूह, जिसके बाँस बिके, छप्पर बिके, चिथड़े-गुदड़े बिके, घरगृहस्ती लुटी।

एक ओर दो बच्चों की नंगी लाशें पड़ी हुई थीं। पास में ही रासू की झोपड़ी है। ये बच्चे शायद रासू के ही हैं।

पाँचू से रहा न गया। पास जाकर देखा। मौत अभी बच्चों के साथ खेल ही रही थी। घड़ी पल के मेहमान हैं। रासू की बहू बहुत पहले ही भाग गई थी। रासू लुटेरों में मिल गया। घर-बार माँ-बाप, सब साथ छोड़ गये--बस ये थकी-थकी साँसें, एक-एककर पल-दिन गिनती हुई, किसी तरह अपना फ़र्ज़ पूरा होने तक साथ दिये जा रही हैं।

पाँचू मौत को बहुत नज़दीक से देख रहा था, बहुत ग़ौर से देख रहा था। इस अकाल में यही हालत एक दिन उसकी और उसके घर वालों की—लेकिन अभी तो उसके पास चावल है। यह बिचार आते ही फौरन उसे यह भी ख्याल हुआ कि घर वाले उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। वे भूखे होंगे—दीनू, परेश, नन्हीं-सी मुन्नी, कनक। वह फौरन ही वहाँ से हट आया, और तेज़ी से अपने घर की तरफ़ चलने लगा।

यह फ़ज़लू काका। अपनी झोंपड़ी से टीन निकाल रहा है, बेचने के लिये।

ये पेड़ के नीचे बूढ़ी खेमनि, कमर में एक लँगोटी लगाये, दोनों हाथों से मिट्टी की एक हँडिया थामे, सिर झुकाये खोई हुई-सी बैठी है। कभी गाँव भर की परिक्रमा लगाया करती थी। पाँचू ने इसका

नाम नारद जी रख छोड़ा था। ब्राह्मणो के टोले से ये मछुओं की बस्ती की ओर कैसे चली आई ? ये भी एक दिन यों ही बैठे-बैठे मर जायगी। रासू के बच्चे शायद अब तक मर गये होंगे। उन्हें कौन उठायेगा ? यों ही लाशे सड़ती रहेंगी ? क्या आदमियों की लाशें यों ही सड़ती रहेंगी ? क्या एक दिन उसकी भी लाश इसी तरह—? नहीं-नहीं, वह अपने लिये कभी भी ऐसा नहीं चाहता। ऐसा सोंचना भी नहीं चाहता। तब उसे जाकर उन लाशो को ठिकाने से लगाने का प्रबन्ध करना चाहिये।

पाँचू ठिठका। उसकी तबीयत हुई कि लौटकर बच्चो को देख आये। लेकिन उसे घर जाना है। बच्चे भूखे बैठे होंगे। रासू के बच्चों की लावारिश लाशो से लेकर अपनी कल्पना तक, सारी विचारधारा से हठपूर्वक मन मोड़कर, वह आगे बढ़ा। ईश्वर की लीला अपार है। भाग्य का लिखा कोई नहीं मेट सकता।

क़दम तेज़ी से आगे बढ़ रहे थे।

ये बेनी की झोपड़ी। बेनी वो बैठा है। उसके घुटनों पर अपना सिर टिकाये हुये उसकी पत्नी बैठी है। दो महीने पहले ही उसका ब्याह हुआ था। नई जवानी, नई उमंगे, और ये अकाल ! बंशी बजाने में बेनी अपना सानी नहीं रखता। पाँचू ने देखा, दोनों की जवानी बूढ़ी हो गई। पास-पास बैठे रहने पर भी न औरत को मर्द का होश है, न मर्द को औरत का। पाँचू सोचने लगा, अकाल-पीड़ित नवदम्पति का यह मधु चन्द्र···उसे मंगला की याद आ गई। वे सपनो भरी आँखे, उसका अल्हड़पन और उसकी मुस्कराहट पाँचू की आँखो के सामने नाच गई। चार दिन से वह भी भूखी है बेचारी।

पाँचू के कदम और तेज़ पड़ने लगे।

आँखों के सामने, थोड़ा दूर पर, मोनाई की दूकान। माँस की पतली-पतली झिल्लियों में चमकती हुई खुदा की खुदाई डगमगाते हुये कदमों से इधर-उधर डोल रही थी। गड्ढों में धँसी हुई डगर-डगर आँखें घूर-घूरकर अन्न के एक दाने की तलाश में मोनाई की दूकान के आस-पास भटक रही हैं। कितने ही नर-कंकाल झुके हुये ज़मीन में चावल की सिर्फ एक कनी खोज रहे हैं। बेतरतीबी के साथ दाढ़ियाँ बढ़ी हुई हैं। औरतों के बाल अस्त-व्यस्त, तमाम ज़िस्म की नसें और हड्डियाँ चमक रही हैं। बच्चे इन्सान के बच्चे नहीं मालूम पड़ते। ये इन्सान की बस्ती ही नहीं मालूम पड़ती।

झुटपुटी साँझ धीरे-धीरे घिर रही थी। इस मद्धिम उजाले में ये हिलते-डोलते प्राणी—पाँचू सोचने लगा—अगर टाटा, बिड़ला, राकफलर और फोर्ड के सामने अचानक आ जाये! खाना जरा ठंढा हो जाय या लज्ज़त में कहीं कमी रह जाय तो हटरों से नौकरों की चमड़ी उधेड़ लेने वाले साहब दिमाग़ हिन्दुस्तानी, आई० सी० एस० अफ़सरान, रायबहादुरान अगर संयोग से इधर निकल आयें तो क्या वह इन लोगों को वह अपने ही जैसा आदमी मानने के लिये तैयार होंगे? क्या वे यकीन कर लेंगे कि ये भूत नहीं, आदमी ही हैं? इनमें भी वही साँस चल रही है जो उनके तन के अन्दर उन्हें अपनी अमीरी महसूस करा रही हैं। ये भूख की उन सीमाओं को पार कर चुके हैं जिनके आभास मात्र से ही उनका रियासती रोब बर्दाश्त की हद से गुज़र कर देर से खाना परोसने वाले नौकरों के पेट पर लात मार देता है।

शहर के राजनीतिक वातावरण में पनपा हुआ दिमाग इस समय शौकिया तौर पर जोश खा रहा था। उसके पास इस समय पाँच सेर चावल है। वह आज खाना खायेगा चावल पाने से पहले वह भी भुखमरों में से एक था। वह भी भूख की तकलीफ़ को उसी तरह

महसूस कर रहा था जैसे कि ये चलते-फिरते नर-कंकाल। लेकिन यह सन्तोष कि उसे और उसके परिवार को आज भोजन मिलेगा, उसे तमाम भुखमरों से अलग किये दे रहा है। इसके साथ ही साथ वह यह भी जानता है कि उसका यह सन्तोष अस्थायी है। उसका मन इसी-लिये इन भुखमरे साथियों का साथ छोड़ने से इन्कार करता है। परसों से उसका और उसके परिवार का भविष्य भी इन्हीं की तरह कठोर हो जायगा। लेकिन इस वक्त तो वह खुश है; फिर भी अपने साथ ईमानदारी बरतते हुये वह अपने आनन्द को अस्थायी बना देने वाले दयाल और दयालवर्ग के लोगों पर बौद्धिक बड़प्पन के साथ झुँझला रहा है। खाने के मामले में आज वह दयाल और मोनाई के बराबर का ही दरजा रखता है। फिर क्यों न उन पर झुँझलाये, और क्यों न अपने भविष्य के साथियों का पक्ष ले?

सहसा पाँचू का ध्यान टूटा। मोनाई की दूकान के सामने पाँच-छः जीवित कंकाल एक को घेरे हुये छीना-झपटी और हाथापाई कर रहे थे। उनकी अस्पष्ट और भयावह आवाज़ों का सामूहिक स्वर साँझ की बढ़ती हुई अँधियारी को मनहूसियत का गहरा रंग दे रहा था। फिर पाँचू ने देखा, उस घिरे हुये आदमी की एक चीख़ इस मनहूस शोर में एक दर्द पैदा करती हुई अचानक घुट-सी गई; और वो घिरा हुआ आदमी गिर पड़ा।

पाँचू दौड़कर पास पहुँचा। उसने देखा, मुनीर बढ़ई था। साँस नहीं चल रही थी। मर गया शायद। मुनीर की लाश के आस-पास चावल बिखरा था, जिसे बटोरने के लिये लोग वहशियों की तरह टूट पड़े थे। उन्हें इस बात का कोई ख्याल न था कि उनके पास ही एक आदमी—उनके एक साथी की लाश पड़ी हुई है। वह इस समय पूरे उत्साह के साथ ज्यादा से ज्यादा चावल बटोर लेने के प्रयत्न

में थे। एक बार लाश को, फिर एक बार पाँचू को कुछ खोई हुई दृष्टि से देखकर वे फिर अपने काम में लग गये। उनके हाथ छीना-झपटी करने लगे

पाँचू चिल्लाया! "मार डाला न तुम लोगो ने इस बेचारे को?"

उसकी बात पर उन जीवित कंकालों के चेहरे उठे। उनके चेहरों पर चिढ़ का भाव था। वे सूखी हुई झुर्रियाँ, वे धँसी हुई आँखें गोया प्रश्न कर रही हो! "क्या बकता है? हम अपना काम कर रहे हैं।"

दो-एक निगाहें पाँचू के हाथ की पोटली पर गईं। पाँचू सकपकाया। वह उठ खड़ा हुआ। उसने एक बार मुनीर की लाश की तरफ़ देखा। मुनीर ने उसके स्कूल की बिल्डिङ्ग में लकड़ी का बहुत-सा काम किया था। बड़ा भला आदमी था बेचारा।

मन लड़ रहा था। कहीं उसके चावल के लिये भी छीना-झपटी न करे। उसे यह चिन्ता नहीं थी कि उसका चावल ये लोग छीन सकेंगे, लेकिन इस छीना-झपटी मे कहीं उसके धक्के से एकाध और मर गया तो? एक लाश और बढ़ जायगी—लाशें—मुनीर की लाश रासू के लावारिश बच्चो की लाशें—और इस अकाल में वह खुद न कभी—नहीं-नहीं, वह इसे दफ़नाने का प्रबन्ध करेगा। इन्सानियत का तकाज़ा है। और फिर मुनीर ने उसके साथ स्कूल में काम किया था।

बढ़ई नूरुद्दीन आज चार दिन से दोनो जून पेट पर हाथ फेरकर डकार ले रहा है। अज़ीम के घर मेहमान हैं। साँझ पड़े सुरीले गले से टीप लगाता है।

"जोबनेर आज फूल फूटे छे,
आशबे बोले शाँझ बेलाय !"

बेफ़िक्री से गूँजता हुआ स्वर पड़ोस के भूखे घरों की दीवालों से टकरा कर लोगो के दिलो में टीसे उठाता है। नूरुद्दीन के घर में कोई नहीं है। बाप बहुत पहले ही मर चुके थे। एक बहन थी, उसकी शादी हो गई। मा थी सो पिछले हफ्ते एक दिन सात रोज़ की भूख का गुस्सा नूरुद्दीन ने उसके गले पर उतार दिया। गला घुटते ही भूखी, लागर बुढ़िया की रूह तड़पकर अर्श-मोअल्ला को छेदती हुई खुदावन्द करीम से फ़रियाद करने पहुँच गई। माँ के मरते ही गुस्से की बेबसी काबू में आई, लेकिन भूख में साझीदार के लिये नफरत इतनी थी कि गुनाह को गुनाह न समझा। भूख से मर गई, यह समझकर अज़ीम की मदद से उसे दफ़नाने का इन्तज़ाम किया। उस दिन अज़ीम ने उसे अपने घर खाना भी खिलाया।

अज़ीम मोनाई का दाहिना हाथ है। बचपन से ही उसकी दूकान पर नौकर है। अकाल कभी उसके घर झाँकने की हिम्मत भी नहीं कर सकता। नूरुद्दीन ठहरा उसका लँगोटिया यार, एक जान दो कालिब—मुसीबत मे दोस्ती का हक़ अदा करना इन्सान का फ़र्ज़ है। अलावा इसके नूरुद्दीन बड़े काम का आदमी है। अज़ीम समझता है, जैसे रोज़गार—व्यौपार मे वो दूर की कौड़ी ले आता है; वैसे ही नूरुद्दीन भी कहो तो राजा इन्दर के घर से परी निकाल कर ले आये।

अज़ीम को जब से मोनाई का बिश्वासपात्र और प्रधान मंत्री का पद मिला है, वह अपने को (मोनाई के बाद) गाँव के बड़े आदमियो मे समझने लगा है। नूरुद्दीन की दोस्ती से अज़ीम को भी कभी-कभी शेर के शिकार मे सियार की तरह जूठन मिल जाया करती है। इसीलिये उससे दबता है। नूरुद्दीन के साथ रहते-रहते बहुत दिन पहले

एक बार खुद भी मुनीर की बीबी के साथ छेड़ छाड़ की हिम्मत की थी, पर उसमें मुँह की खाई। तब से उस औरत पर उसके दाँत थे। पर जूठन चाटने की अब तबियत नहीं होती। इसीलिये नूरुद्दीन से उसने मुनीर की बीबी के लिये फ़रियाद न की।

औरतों के सामने ही नूरुद्दीन मज़ाक-मज़ाक में उसका पानी उतार लेने से नहीं चूकता था। इस बार नूरुद्दीन पकड़ में आया है। एहसान का कर्ज़ पाटने का अच्छा मौक़ा हाथ लगा। अज़ीम ने मोनाई के यहाँ उसका घर और चार बीघे ज़मीन बिकवा कर पच्चीस रुपये दिलवा दिये, अपने घर लाकर रक्खा, दोनों वक्त भर पेट खाना भी खिलाया। इसके एवज़ में अज़ीम ने नूरुद्दीन से मुनीर की बीबी तलब की। साथ ही उसकी यह शर्त भी थी कि इस बार शेर वह ख़ुद बनेगा और सियार नूरुद्दीन। यह शर्त नूरुद्दीन के लिये सख्त थी, लेकिन अज़ीम से उसे चावल मिलते थे। अलावा इसके वो पच्चीस रुपये भी अभी अज़ीम के पास थे।

नूरुद्दीन के चक्कर मुनीर के घर की तरफ़ बढ़ने लगे। सात-आठ दिन से मुनीर के यहाँ किसी के मुँह में अन्न का एक दाना भी न पहुँचा था। दो छोटी-छोटी लड़कियाँ, चाँद और रुकैया अन्न बिना मुर्दे-सी पड़ी रहती थीं। मुनीर भूख के साथ-साथ मलेरिया से भी लड़ रहा था। लेकिन मुनीर की बीबी को आज भी पाँचों वक्त की नमाज़ सहारा था।

नूरुद्दीन हमदर्दी दिखाने आया। पर मुनीर की बीबी परख में खरी उतरी।

नूरुद्दीन ने दाँव पलटा। मुनीर की बीबी के खुदा में साझा लगाया। इलहाम के चर्चे होने लगे।

मीरगंज की मसजिद मोहनपुर और मीरगंज कीहद पर थी। पीढ़ियों से भूता की मसजिद के नाम से मशहूर थी। नूरुद्दीन ने बताया—"वहाँ एक भूत सबाब करता है। पिछले हफ्ते मैं उधर से आ रहा था। छः रोज़ से फाके हो रहे थे। शाम की नमाज़ का वक्त था और मसजिद सामने। एक बार तो दिल में भूतों का डर समाया। फिर सोचा, भूतो के डर से ख़ुदा का डर बहुत बड़ा है। जी कड़ा करके वहीं नमाज़ पढ़ी। नमाज़ पढ़कर मसजिद के बाहर आया देखा, जीने पर एक केले के पत्त में भात और भुनी हुई मछलियाँ रक्खी हैं। मैं चकराया। मुँह में पानी भर आया, मगर भूतो का डर था। तभी कहीं से आवाज़ आई—ऐ ख़ुदा के बन्दे! ये तेरे ही वास्ते है। ढाई सौ वर्षो के बाद तू ही एक ऐसा इन्सान मिला, जिसने ख़ुदा के ख़ौफ़ को हमसे बड़ा माना। आज की दुनिया में अज़ाब बढ़ गया है। दुनिया ख़ुदा को भुला बैठी है। मगर जो ख़ुदा को नही भूलता, उसे ख़ुदा प्यार करता है। ले, खाले—और रोज आकर यहाँ नमाज़ पढ़। तुझे कोई खोफ़ नहीं। मैं भूतो का सरदार हूँ। ख़ुदा के हुक्म से ख़ुदा के बन्दो का इम्तेहान लेता हूँ। तुझे यहाँ रोज़ खाना मिलेगा। ख़ुदा के बन्दे कभी भूखे नही रह सकते।

नूरुद्दीन एक दिन शाम को यह करिश्मा दिखाने के लिये मुनीर की बीबी को ले गया। उस दिन नमाज़ के बाद मसजिद के जीने पर दो आदमियों के लिये खाना परोसा हुआ मिला।

पूरे सात दिनों के बाद मुनीर की बीबी को खाना नसीब हुआ। निवाला मुख तक ले जाते समय बच्चियो का ख़याल आया, बीमार और भूखे मुनीर का भी ख़याल आया, मगर नूरुद्दीन ने साफ़ जता दिया कि ख़ुदा की मर्ज़ी के खिलाफ़ अपना हक़ अपने प्यारे से प्यारे को भी तुम देने की हक़दार नहीं।

अपनी भूखी बेटियों और बीमार पति के सामने, ख़ुदा के घर से खाना खाकर लौटी हुई मुनीर की बीबी की आँखें, उठाये नहीं उठती थीं। जी बेहद कलपता था, मगर हर रोज़ शाम होते ही नमाज़ के बाद परोसी हुई पत्तल का ख़याल आता, जिसमें ख़ुदा के हुक्म से उसके सिवा और किसी का हक़ नहीं था।

ख़ुदा के खौफ़ ने मुनीर की बीबी को झूठ बोलना सिखाया। आत्मा सोने लगी, स्वार्थ जगने लगा।

मुनीर की बीबी रोज़ शाम की नमाज़ पढ़ने जाने लगी।

नूरुद्दीन थाली परोस चुका था। अज़ीम आज खाने पहुँचेगा। चालाक नूरुद्दीन जानता था, वह हर तरह से अज़ीम के हाथ में है। उसने मुनीर की बीबी को अपना हथियार बनाया। पहले अपने पचीस रुपये वसूल किये और सोचा, शहर जाकर मिलिट्री में बढ़ई का काम ढूँढ़ेगा। उसके लिये औज़ार चाहिये। अपने औज़ार वो घर की तमाम चीज़ों के साथ बेचकर पहले ही अपना और अपनी माँ का पेट, जब तक चला भरता रहा था। उसने सोचा, भूखे मुनीर से औज़ार खरीदे जा सकते हैं। नूरुद्दीन मुनीर के घर आया। उसकी बीबी से बोला—"अपना हक़ भी आज से तुम्हें देता हूँ। मैं शहर जाऊँगा। मेरा हक़ ख़ुदा की मर्जी से तुम्हारी बच्चियों और तुम्हारे शौहर को मिलेगा।"

मुनीर की बीबी खुशी-खुशी नमाज़ पढ़ने गई।

यह पहला मौक़ा था जब नूरुद्दीन नहीं गया और उसने अज़ीम को शेर बनने का मौका दिया। आज अज़ीम खुद थाली लेकर मसजिद पर पहुँचने वाला था। अपने पचीस रुपये वसूल करने के बाद नूरुद्दीन ने उसे समझा दिया—'भूखी बच्चियों और शौहर से चुराकर अकेले खाने की आदत डलवाकर मैंने उसका ज़मीर चूर-चूर कर दिया

है। अब सचाई और पाकदिली की वो अकड़ उसमें नहीं रही। थाली दिखाकर सामने से घसीट लेना, वह तुम्हारे पीछे-पीछे चली आयगी। सब्ज़ बाग़ दिखाना, सब्ज़ बाग।"

मुनीर की बीवी नमाज़ पढ़ने गई, इधर नूरुद्दीन ने अपना जाल फैलाया। भूख हाथ कटाने के लिये तैयार हो गई। मुनीर ने सिर्फ एक अठन्नी के लिये अपने सारे औज़ार बेच दिये। अठन्नी पाकर बारह रोज के भूखे और बीमार मुनीर के डगमगाते हुये कमज़ोर पैर जल्द से जल्द मोनाई की दूकान पर पहुँच जाने के लिये लपके थे।

मुनीर की लाश को उठाकर ले चलने के लिये पाँचू ने अपनी ही तरह के सहृदय और मृत्यु-भीरु दो 'मज़बूत' मरभूखों को राजी कर लिया था। चावल की गठरी अपने गले से बाँधकर पीठ की तरफ कर ली। चलने में पाँच सेर चावलों की गठरी पीठ पर इधर-उधर हिलती, इससे गला घुटने-सा लगता था। हाथों में एक आदमी की लाश का बोझ और मन भारी—बड़ी मुश्किल से रास्ता तय हुआ। चाँद और रुकैया बाप की लाश को देखकर बेहाल हो गईं। भूख कमज़ोरी और बाप की मौत का ग़म नन्ही-सी रुकैया की बर्दाश्त से बाहर हो गया। वह बेहोश हो गई। चाँद दस बरस की थी, रुकैया से ज्यादा समझदार बाहोश और इसीलिये ज्यादा तकलीफ़ में। माँ घर पर नहीं है। बाप की लाश घर पर आई है। छोटी बहन बेहोश पड़ी है। वह क्या करे। बिलख-बिलखकर रो रही है। दम घुटने लगता है। एक दुःख में हज़ार दुःख याद आ रहे हैं अब्बा गये थे चावल लाने और खाली हाथों लौट आये। हाय अब्बा! अब्बा की याद में भूख की तड़पन थी, जो उस वक्त अब्बा की तरह ही अज़ीज़ थी—अब्बा से ज्यादा अज़ीज़ थी।

भूतों की मसजिद के पास झाड़ी की आड़ में मुनीर की बीबी खाना खा रही थी और अज़ीम उसके पास ही बैठा उसके बदन पर हाथ फेर रहा था। अज़ीम की आँखों में वहशत थी, उतावलापन था। ज़ब्त की शिद्दत से बीच-बीच में होंठ काटने लगता था, आँखें चढ़ जाती थीं, मुनीर की बीबी के बदन पर उसके हाथों का दबाव सख्त हो जाता था। और मुनीर की बीबी—वो खाना खा रही थी, और उसी में अपने को खोये रखना चाहती थी।

नूरुद्दीन मुनीर के मरने की ख़बर सुनकर उसके घर आ पहुँचा था। उसकी बगलाभगती मुहब्बत बग़ैर आँसुओं के उसे ज़ार-ज़ार रुला रही थी। दिमाग़ में पेच पड़ रहे थे—"और खाली हुई है। शहर ले चलें। इस तरह से अपने काम आयेगी। दो लड़कियों की माँ हो जाने पर भी अभी ढली नहीं है। काठी अच्छी है इसकी। चार दिन और अच्छी तरह से इसकी खिलाई पिलाई करूँगा, पठिया निकलेगी…। अज़ीम साला मजे लूट रहा होगा। खैर…मगर, इसी से अज़ीम को नीचा न दिखाया तो मेरा नाम भी नूरुद्दीन नहीं।"

मुनीर की लाश उठाकर लाने वाले तीनों आदमियों में से किसी में इतनी ताक़त नहीं थी कि लाश को क़ब्रिस्तान तक ले चलें। घर के पिछवाड़े, ज़रा दूर पर, एक ऊसर खेत था, नूरुद्दीन कहीं से फावड़ा ले आया। किसी तरह ज़मीन खोदी गई।

नूरुद्दीन ज़मीन खोद रहा था, साथ ही साथ उसका दिमाग़ भी चल रहा था—"लौट के आयें तो दाँव फेंकूँ…कहीं भड़की हुई न आय। फुसलाना चाहिये। दो रुपये दूँ, मुसीबत में हमदर्दी, मगर रुपये तो शायद अज़ीम भी दे। यों तो घाघ है, मगर औरतों के मामले में साले की अक्ल घास चरने चली जाती है। और फिर इस पर

तो महीनो से उसकी तबियत आई हुई थी। इसे तो ज़रूर ही रुपये देगा वो। तब फिर ? लौंडियों को हथियार बनाना चाहिये। माँ का दिल लूटने के लिये यही सबसे अच्छा तरीक़ा होता है‥ करें क्या—खिलाओ ससुरियो को बस, यही ठीक है। मास्टर बाबू की गठरी में अनाज मालूम पड़ता है। इसे ही उड़ाना चाहिये। मगर टटोल तो लिया जाय देखें अनाज है या और कुछ—"

नूरुद्दीन ने फावड़ा रख दिया। हाँफने लगा, जैसे थककर चूर-चूर हो गया हो। दूसरा आदमी उठा। आप पाँचू के पास बैठ गया। बातों-बातो मे बहाने से गठरी पर हाथ रख टटोलकर देखा कि चावल है। फिर सोचना शुरू किया—'उडाना चाहिये। ऐसे तो हाथ नहीं आयेगा। तिकड़म करं। लड़कियो को उसका द। पढ़े-लिखे बेवकूफ़ तो होते ही हैं। दया-धरम बहुत रहता है इनमे। और जिसमे मास्टर बाबू तो बस मोम का दिल रखते हैं। चाँद और रुकैया को उसका दे कि मास्टर बाबू चलने लगे तो पैरो से लिपट जायें और खाना माँगे। बस फिर तो मै गठरी धरवा ही लूँगा। मगर समझो कि न पसीजे तो ? यक़ीन तो नहीं होता। अगर ऐसे ही पत्थर के बन गये होते तो यो लाश लेके न आते। नहीं, दाँव खाली न जायगा। अल्ला ने चाहा तो कौड़ी चित्त ही पड़ेगी। और जब वो आयेगी तो ताजे ग़म में ये तसल्ली बड़ा काम देगी। बच्चियो को खाना खाते देखकर अपना गुनाह भी भूलेगी। बस फिर तो क़ाबू में आ जायगी। मगर ये लड़कियाँ ? इन्हे साथ ले जाना तो बेवकूफी होगी। लेकिन इन्हें उससे अलग कैसे किया जायगा ? खैर, ये फिर सोच लेगे। अभी तो मास्टर बाबू की गठरी‥‥"

नूरुद्दीन ने खट से एक साँस छोड़ी। पाँचू की तरफ देखकर बोला—"इसकी बीबी बिचारी मसजिद मे नमाज़ पढ़ने गई है। घर

लौट के देखेगी तो [ गला भर गया। आँसू पोछने के बहाने कमीज़ के पल्ले में मुँह छिपाकर दो एक सुबकियाँ भी ले डालीं ] ''क्या बताऊँ मास्टर बाबू'' खुदा जाने क्या-क्या दिखाने वाला है आगे। अभी थोड़ी देर पहले तो मैं मुनीर को दो रुपये देकर गया था। आप लोग तो राजा आदमी हैं। मेरी तो कोई औक़ात ही नहीं, पर अपनी सी हालत सब की जानता हूँ। दस रोज खाने को न मिला। माँ बिचारी भूखो मर गईं। घर ज़मीन बेचकर रुपये लाया था, सो उसमें से पहले इसे दो रुपये निकाल कर दे दिये। पर क़िस्मत! बेचारा अपनी जान से गया। लड़कियाँ भूखो मर जायँगी। हाय! आज बारह दिन से फ़ाके हो रहे हैं इसके यहाँ। जब से रुपये लेकर मोनाई की दूकान की तरफ गया था, लड़कियाँ बेचारी आस लगाये बैठी थी कि अब अब्बा चावल लेके आते होंगे। [ गला फिर भरने लगा ] बिचारियों को यह नहीं मालूम था कि अब्बा अब साँसे भी साथ लेकर न लौटेंगे। हाय! [ फिर सुबकियाँ और रोना।]

पाँचू स्तब्ध। अपने जीवन में मुनीर की इस घटना का समावेश कर वह देख रहा था। जिस तरह बरफ का टुकड़ा बहुत देर तक हाथ में रक्खा रहे तो हाथ सुन्न पड़ जाता है, उसी तरह मृत्यु का भय पाँचू के हृदय पर इस समय तक पूरी तरह से छाकर उसे स्तब्ध कर चुका था। मुनीर की लाश के स्थान पर वह अपनी लाश देख रहा था। नूरुद्दीन की एक-एक बात उसके मन की ऊपरी सतह को छूती हुई उसे इस तरह लग रही थी जैसे उसके मर जाने के बाद उसकी तथा उसके परिवार की कहानी नूरुद्दीन किसी दूसरे को सुना रहा हो।

पाँचू मुनीर की लाश की तरफ़ देखता रहा। उसमें वह अपनी लाश देख रहा था। गड्ढा खुद गया। बग़ैर क़फ़न के लाश दफ़ना दी गइ। मिट्टी पड़ रही है। पाँचू की लाश पर मिट्टी पड़ रही है।

पाँचू खड़ा देख रहा है। लाश ढक रही है। मिट्टी का बोझ लाश पर पड़ता जाता है। लाश अब नहीं दिखाई देती। गड्ढा भर रहा है। मुनीर की लड़कियों के रोने की आवाज़ अब उसके कानों को सुनाई दे रही है। नूरुद्दीन का ज़ोर-ज़ोर से आहें भरना अब वह सुन रहा है।

गड्ढा भर गया। लोग फावड़े और पैरों से मिट्टी दबा रहे हैं।

मुनीर इस संसार से चला गया। मुनीर अब कभी भी न दिखाई देगा। मुनीर ने उसके स्कूल की बेंचे बनाई थीं, ब्लैक बोर्ड बनाया था। मुनीर हँसता था, बोलता था, चलता फिरता था, काम करता था। थोड़ी देर पहले तक उसका शुमार 'है' में किया जाता था, अब 'था'—एक कहानी बन गया। कालिदास था, शेक्सपियर था, अकबर, एलिज़ाबेथ, चन्द्रगुप्त था, मुहम्मद था, ईसा था, बुद्ध था, राम, कृष्ण, मुनीर था। पाँचू था। यह अकाल इस देश को एक कहानी बनाकर ही छोड़ेगा। लोग कहेंगे, एक सूबा था, जिसका नाम बंगाल था।

मुनीर के घर से पाँचू खाली हाथों लौट रहा था। उसके मन का विद्रोह स्वयं उसे ही खाये जा रहा था। उसने चावल दिया ही क्यों? उसे शर्म क्यों आई? क्या वह शर्म, वो आबरू और धर्म का भय उसे और उसके परिवार को इस अकाल की मौत से बचा लेंगे?

अपनी बुद्धि और ज्ञान पर पाँचू मन ही मन सदा से अभिमान करता आया है, पर इस समय उसे अपनी महामूढ़ता पर तनिक भी अविश्वास न था। वह खुद अपने से चिढ़ा हुआ था।

मुनीर की पितृहीना भूखी लड़कियों का करुण-विलाप सुनकर, अपनी असमर्थता पर मन ही मन आँसू बहाकर उसने सन्तोष कर

लिया था। नूरुद्दीन तथा तीन-चार अन्य लोगों द्वारा अपनी उदार प्रकृति, दरियादिली और दान के मोहक बखान सुनकर भी उसे अपने भूखे परिवार का ध्यान रहा था। जिस समय नूरुद्दीन कह रहा था—"आप राजा आदमी हैं, मास्टर बाबू, दो मुट्ठी इसमें से निकाल कर दे देंगे, तो आपको ज़रा भी न अखरेगा और इन बिचारियों का ग़म ग़लत हो जायगा।"

उस समय तक पाँचू का स्वार्थ उसे इतना कस चुका था कि उसे अपनी गठरी में से एक दाना देना भी असम्भव सा प्रतीत होता था। लोगों ने कहा कि तुम्हारे यहाँ तो मनो अनाज होगा, तुम गाँव के इतने बड़े आदमी हो, तुम यह हो, और तुम वह हो—उस समय पाँचू मन ही मन सस्कार बश यह सोचकर प्रसन्न हो रहा था कि गाँव वाले उसे बहुत अमीर आदमी समझते है।

यह प्रसन्नता उसके सहृदयता का पोषण कर रही थी। पर अपने मुँह से यह नही कह सकता कि वह भी अपने पूरे परिवार के साथ-साथ चार दिन से भूखा है, और बड़ी मुश्किलो से उसे यह पाँच सेर चावल मिले हैं। उसे बड़ा आदमी समझने वाले गाँव के ये लोग अगर उसकी अस्लियत जान जायेंगे तो आबरू चली जायगी। पर उसने सोचा, चावल न देने से भी तो बदनामी होगी। होने दो। यह लोग ज्यादा से ज्यादा यही तो कह लेंगे कि दयाल और मोनाई की तरह मास्टर बाबू, भी कठोर है। इस हालत में भी उसका दर्जा दयाल और मोनाई के बाबत ही रहेगा।

तभी नूरुद्दीन की एक बात ने सहसा उसकी बुद्धि को झटका दिया—"मुर्दे से छुआ अनाज बाम्हन होके घर कैसे ले जाओगे मास्टर बाबू! और वह भी मुसलमान का मुर्दा! तुम्हारे तो किसी काम का नहीं रहा। इन लड़कियों का पेट भर जायगा।"

तर्क अकाट्य था। पाँचू जैसा प्रतिष्ठित कुल का ब्राम्हण मुसलमान मुर्दें के स्पर्श से अपवित्र चावल चार लोगो की जानकारी में कैसे घर ले जा सकता है ? धर्म और जाति जायगी, आबरू जायगी।

पाँचू के मन का विद्रोह स्वयं उसे ही खाये जा रहा था। उसने चावल दिया ही क्या ? उसे शर्म क्यो आई ? क्या वह शर्म, वो आबरू और धर्म का भय उसे और उसके परिवार को इस अकाल की मौत से बचा लेंगे ?

पाँचू खाली हाथो घर की तरफ जा रहा था। अँधेरा हो चुका था। कहीं-कहीं एकाध घर मे दिये की टिमटिमाती हुई रोशनी झलक जाती थी। उन घरो मे आबरू अभी भी पूरी तौर पर सुरक्षित थी। पाँचू ने अपने घर मे रोशनी देखी। उसके विचार ठिठके, पैर, ठिठके। वह खाली हाथों घर जायगा ? सब लोग आस लगाये बैठे होगे। कनक बेजान सी पड़ी होगी। दीनू, परेश भूख के मारे बिलख रहे होंगे, सारा घर भूख से व्याकुल हो रहा होगा—पाँचू की कल्पना प्रखर होने लगी—वह खाली हाथो घर पहुँचेगा। सारा घर एक बार तो उल्लासित होकर उसका स्वागत करेगा, पर दूसरे ही क्षण…?

पाँचू लौट पड़ा। घर जाने की हिम्मत नहीं होती थी। वह अपने आत्मीयो को भूख से तड़पते हुये नहीं देख सकता। और जब वह स्वयं ही उनके उस दुख का कारण हो। उसकी मूर्खता के कारण ही उसके सारे परिवार को तड़प-तड़प कर मरना होगा।

पीड़ा और क्रोध से उसके निरुद्देश पैरो की गति और भी अधिक अस्थिर हो उठी। पाँच सेर चावलो की गठरी लेकर आते वक्त उसमें उत्साह था। पाच सेर चावलो की गठरी के वजन ने उसे मुनीर की

लाश को उसके घर तक पहुँचाने के लिये जो शक्ति प्रदान की थी, वह इस समय छिन चुकी थी। चार दिन की भूख, निराशा और कमज़ोरी के साथ ही साथ लाश उठाने और ले जाने की थकान उसे इस समय तक अत्यधिक अशक्त बना चुकी थी, और उसके ऊपर ये ताज़ी चोट, यह आत्म-ग्लानि और निराशा, उसे चक्कर आ गया, पैर लड़खड़ाये—बड़ी मुश्किल से उसने अपने को गिरने से बचाया।

पाँचू के आस-पास कुछ दूर पर उसी की तरह लड़खड़ाते हुये जीवित कंकाल डोल रहे थे। उसे उनसे घृणा हो गई। उसे अपने से घृणा हो गई। उसे तमाम अकाल-पीड़ितो से घृणा हो गई। उसे मरे हुये मुनीर से भी घृणा हो गई। कम्बख्त को उसके ही रास्ते में आकर मरना था। और अगर मरना ही था तो किसी दूसरे वक्त न मरा—जब वह चावल लेकर आ रहा था, तभी साले को मौत आई।

उसे मुनीर की लड़कियो पर क्रोध आ रहा था, नूरुद्दीन पर क्रोध आ रहा था, उन शास्त्रकारो पर क्रोध आ रहा था जिन्होंने शव को छूने से उसकी पाँच सेर चावलो की गठरी के अपवित्र हो जाने का विधान बनाया। उसे अपने ब्राम्हण और आबरूदार होने पर क्रोध आ रहा था। अकर्मण्य क्रोध के कारण पाँचू की आँखों से आँसू बहने लगे। पर इस बार आँसुओं पर क्रोध न आया। उसे इस समय रोने में ही शान्ति मिल रही थी।

आँसू ज़ोर पकड़ते गये। अपनी हीन और असहाय अवस्था के ध्यान से रह-रहकर पाँचू के अहं को चोट लगती। रह-रहकर पीड़ा के दौरे से उठते, जिससे उसका मानस तूफ़ानी समुद्र की तरह उमड़ने लगता। आँसू हुमड़-हुमड़कर आँखों से बहने लगे। पाँचू फूट-फूटकर रो रहा था। सुबकियाँ साँस खींचकर उठने लगीं।

पाँचू मे पहले का दम न था। वह वहीं खेतों के पास ही धम्म से ज़मीन पर बैठ गया। मन मे राम-राम की रटन थी। निःसहायावस्था मे वह "निर्बल के बल राम" से सहारे की आश मे प्रार्थना कर रहा था। अज्ञात शक्ति के नाम का सहारा पाँचू को धैर्य धारण करने मे सहायता देने लगा। आँसू रुके, सुबकियाँ ख़त्म हुईं। आँखे ख़ुश्क हुईं दो-एक सर्द आहे दिल से निकलीं। फिर चिन्ता। आख़िर इस तरह से बाहर भी कब तक रहा जा सकता है। मुनीर के यहाँ चावल दे आने की बात भी अब तक शायद घर मे सबको मालूम हो चुकी होगी। मै अब तक नही पहुँचा, इससे और भी चिन्ता होती होगी। लेकिन खाली हाथो "घर मे अँधेरा और मसज़िद मे दिया बालकर।"

तभी अचानक ही उसे ख़याल आया, वह स्कूल का कुछ फर्नीचर मोनाई के हाथ बेचकर उससे चावल ख़रीद सकता है।

विचार ने उसे एकदम से स्फूर्ति दी। नया उत्साह आया, नया बल आया। पाँचू एकदम से उठ खड़ा हुआ। मोनाई के घर की तरफ़ चला।

रास्ते मे वह सोच रहा था कि स्कूल की चीजे़ बेचने का हक़ ही क्या है ? वह उसकी निजी सम्पत्ति तो है नहीं। लेकिन कौन पूछता है—और फिर उससे ? अगर वह चाहे तो सारा स्कूल ही उठाकर बेच दे। उसी ने तो इस स्कूल को बनाया है। इसकी एक-एक ईंट मे उसके जीवन का त्याग छिपा है। दिन और रात एक करके ही ये चीजे़ इकट्ठा की और वही इन्हे बेच भी देगा।

आत्मा कह रही थी—"यह चोरी है।" पर आत्मा के उपदेश पर इस समय उसे झुँझलाहट आ गई। वह खायगा क्या ? उसका परिवार भूखा रहेगा ! ये आदर्श, धर्म, पाप-पुण्य सब पेट भरे की

लीला है। अकाल पड़ने पर विश्वामित्र ने भी डोम के घर मांस चुरा कर खाया था उन्होंने तो बाहर चोरी की थी, वह तो अपने ही स्कूल में चोरी करेगा। दरअसल यह चोरी है ही नहीं। दीमकें लग गई हैं। अगर ये डेस्क वग़ैरः ज्यादा दिन तक स्कूल में रहीं तो तमाम स्कूल को खा जायेंगी। इन डेस्कों को न बेचने से सैकड़ों रुपये की स्कूल बिल्डिङ्ग नष्ट हो जायगी।

डेस्कें बेचने के पक्ष में यह दलील पाँचू को मन ही मन और भी अधिक उत्साहित कर रही थी। अपने आपको इस सफाई से धोखा देने के कारण उसे इस समय अपनी बुद्धि पर घमण्ड हो रहा था। सारा घर भूख के भूत से छुटकारा पा जायगा। और इस बहाने तो ज़रूरत पड़ने पर एक-एक, दो-दो करके स्कूल की बहुत-सी चीज़ें बेची जा सकती हैं। इस तरह वह अपने परिवार के साथ बहुत दिनों तक अकाल से लड़ सकता है।

मोनाई का घर दस क़दम पर सामने था। पाँचू ठिठका—"स्कूल की डेस्क बेचने की बात को मोनाई से कैसे कहेगा? मोनाई उसके बारे में क्या सोचेगा? मोनाई उसका बड़ा अदब करता है—आज उसकी आँखें सदा के लिये मोनाई के सामने नीची हो जायेंगी। घर की बात खुल जायगी। चोरी खुल जायगी। चोरी तो यह है ही। पब्लिक के पैसे का अपने लिये उपयोग करना। मोनाई यह सवाल अगर कर बैठा तो?"

पाँचू का सारा जोश ठंडा पड़ गया। निराशा सिर में चक्कर बन कर छाने लगी। लेकिन वह लड़खड़ाया नहीं, हिला-डुला तक नहीं; पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल, स्तब्ध खड़ा रहा। उसकी आँखों के आगे तारे छूट रहे थे, और कुछ भी नहीं सूझ रहा था—कुछ भी नहीं। उस क्षण वह प्रायः चेतना शून्य हो गया था।

"आहा, मास्टर बाबू हैं।"

पाँचू के कानो मे मोनाई की आवाज़ पड़ी। होश ने फिर से उसे अपने कब्जे में लिया। पाँचू चौंका, देखा, मोनाई अपने घर के दरवाजे पर खड़ा था।

"कहो इस वखत यहाँ कैसे?"

"कुछ नही! अ—यो ही चला आया।"

मोनाई पास आया, बोला—"मुनीर बिचारे की मिट्टी ठिकाने मे लगा दी तुमने। दूसरा कोई होता तो नज़र भी न डालता।"

पाँचू चुप। वह सोच रहा था, अपनी बात मोनाई से कहे कि न कहे।

मोनाई उसे देखकर आगे बढ़ा—'सुना, बिचारे की लड़कियों को चावल भी दिया है तुमने? नूरु जस गा रहा था तुम्हारा। बड़ा धरम करते हो मास्टर बाबू। नहीं तो आजकल का ज़माना! गोपी कृष्ण! कोई किसी का नही। भगवान ने क्या ज़माना दिखाया है! राधे! राधे!! कैसे नैया पार लगेगी?"

मोनाई ने एक निःसाँस छोड़ी। पाँचू ने भी एक निःसाँस छोड़ी—वह मोनाई से अपनी बात कहने का विचार त्याग रहा था। कैसे कहेगा; यही सबसे बड़ी उलझन थी, यही त्याग का कारण था। फिर घर भर भूखा मरेगा—यह एक उपाय है।

मोनाई की व्यवहारिक बुद्धि भाँपने लगी। चेहरे का भाव पढ़ना चाहता था, अँधेरे में दिखाई नही पड़ रहा था। हाथ जोड़कर—बोला जब यहाँ तक आए हो तो मेरे घर में भी अपने पैरो की धूल डालते जाओ। आओ न।"

मोनाई के पीछे-पीछे पाँचू चला। दहलीज़ में चारपाई पर बैठकर लालटेन की रोशनी मे मोनाई बातें करने लगा। आप नीचे ज़मीन पर बैठा, पाँचू को मान दिया। मास्टर बाबू आये किसी पेच से हैं। मोनाई ताड़ने लगा, लेकिन मौक़ा साधकर पाँचू से ही मन की बात निकलवानी है। दम लेने लगा—"और इख़बार मे आज क्या-क्या ख़बरें हैं मास्टर बाबू? लड़ाई की क्या ख़बर है? भाव कुछ और चढ़ेगा?"

पाँचू को मोनाई से घृणा हुई। स्वार्थी अभी और भी लूटना चाहता है। गाँव वालों की लाशें भी खा जायगा क्या? घृणा व्यङ्ग बनकर फूटी—"खबरें क्या, चाँदी है तुम्हारी।

बुद्धू की तरह से मोनाई ने हाथ मलते हुये खीसें निपोरीं—"हे, हे, हें, चाँदी क्या मास्टर बाबू, मेरा तो जी कलपता है। गीता मे जो अरजुन ने भगवान जी से कहा था कि जब अपने ही न रहेगे तो तीन तिलोकी का राजपाट लेके मैं क्या करूँगा? सो ही गत अपनी है मास्टर बाबू। कंठी की कसम, ये दिये तले बैठा हूँ, झूठ नही कहूँगा। मुँह मे कौर नहीं दिया जाता। पर भगवान जी ने कहा है कि करम करो अपना—मरना जीना संसार का धंधा ही हैं। बस यही सोच के (आह भरी) राधे! राधे!!"

देखा कि पाँचू अब भी चुप है, खोया हुआ है। बोला—"आज बहुत उदास हो मास्टर बाबू। अरे मुनीर का गम मत करो जादा। आई थी, चला गया। देखो परभू की लीला! मुझसे आठ आने का चावल खरीदा, मैंने उसे जादा तौलकर दिया। मेरी आदत गुपत दान करने की है मास्टर बाबू। पर सो भी उसके भाग मे नही था। कौड़ी-कौड़ी पर मोहर है, भगवान जी ने सच कहा है···वो तुमने चावल कहाँ से खरीदा था मास्टर बाबू?"

"दयाल बाबू के यहाँ से।"

"हूँ !" मोनाई ने गम्भीर होकर एक पल के लिये सिर झुकाया। फिर पूछा— 'क्या भाव दिया ?"

गये हुये कि बात पूछ रहा है कम्बख्त ! जले पर नमक छिड़क रहा है। पाँचू बेरुखी से बोला "क्या करोगे भाव पूछकर ? तुम सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे तो हो ?"

"नही बाबू, फरक है", मोनाई ज़ोर देकर बोला—"ज़मींदार बाबू से दो पैसे कम पर दूँगा। तुम घर के आदमी हो जितना कहो, उठा के दे दूँ।"

पाँचू खुश हुआ। उसे लगा जैसे मोनाई ने सचमुच ही उसके आगे चावल की बोरियाँ लाकर ढेर कर दी हो।

मोनाई अपनी धुन मे कहे जा रहा था—' ये जमीदार बाबू अब हमसे काट करने लगे हैं। इन्हे अब ये डर लगता है कि मोनाई अब आधे का साझीदार बन गया है। अरे, इन्होंने सरकार का यूनन बोड बुलवाया है यहाँ। अपना धान सीधा सरकार मे ही बेचा। अढतिये को एक पैसा लिया दिया नहीं। और अब इस काट मे है कि यूनन बोड से दस रुपये मन के भाव पर बिकवायेंगे, जिसमें मै चौपट हो जाऊँ। पर इन्हे यह पता नही है कि मै भी केवट का बच्चा हूँ। वो फाँस मारूँगा कि जमीदार बाबू देखते ही रह जायँगे—हाँ !"

मोनाई ने दम्भ के साथ पलथी बदली और अन्दर के दरवाजे की तरफ मुँह करके आवाज़ लगाई, "अरे न्याड़ा रे ! ज़रा चिलम तो ले आ बेटा !"

पाँचू के मनमे फ़िर आशा जागी। तिकड़म और दाँव-पेच के अखाड़े मे खुद भी कुछ कर दिखाने की तबीयत हुई। बोला—' अरे

मैं जानता हूँ मोनाई। दयाल क्या खा के तुम्हारा मुक़ाबिला करेंगे। और मुझे क्या मालूम नही है इस वक्त तुम्हारी हैसियत उनसे ज्यादा है।"

मोनाई के मक्खन लगा; गद्गद् होकर पाँचू के पैर छुये और बोला—"सब भगवान जी की दया है मास्टर बाबू। मोनाई केवट ने जब से कंठी ली तब से किसी बामन, साधू और गौमाता का बुरा नही चेता मास्टर बाबू! सत्त कहता हूँ तुमसे! फिर मेरा बुरा कौन चेत सकता है?"

"ठीक है। ठीक कहते हो।" पाँचू ज़रा उत्साह में था—बड़ा दया धर्म है तुम्हारे मनमें। मैं क्या जानता नहीं हूँ।"

मोनाई का हुक्का लेकर न्याड़ा आया। देखा मास्टर मोशाय बैठे हैं। हड़बड़ा कर हुक्का रक्खा और पाँचू के पैर छुये।

शिक्षक का अभिमान जागा। रोब से पूछा—"क्यों रे, आज स्कूल नहीं आया तू?"

न्याड़ा सकपका गया। बाप बोला—"मैंने ही नहीं भेजा था इसे। आज दो दिन से इसकी माँ ज़रा बीमार है। हैं, हैं, कुछ भगवान जी की दया होने वाली है घर में—हे, हें!"

खुशामदाना तौर पर उल्लासित होकर पाँचू बोला—"अच्छा! कब!"

"अभी तो दिन हैं। सातवाँ महीना है। बाकी ज़रा सिर भारी रहता है आजकल उसका—सो लड़के से बढ़कर माँ की सेवा और कौन कर सकता है, मैंने सोचा।"

ये मोनाई की तीसरी पत्नी है। न्याड़ा दूसरी का है। सौतेली माँ ठहरी, बूढ़े की जवान बीबी। बेटे से डटकर सेवा कराती है।

मोनाई न्याड़ा की तरफ देखकर बोला—"जारे माँ के पास जाकर बैठ। और वहीं बैठकर पढ़।"

न्याड़ा सिर झुकाये चला गया। कश खींचते हुये मोनाई बोला—"अब तो तुम्हारा इसकूल बन्द ही हो गया समझो। आहा! तुमने भी क्या चमत्कार कर दिखाया मास्टर बाबू! गाँव की सात पीढ़ी में तुम्हारे जैसे कोई नहीं हुआ। सत्त कहता हूँ।"

पाँचू ने एक निःसाँस छोड़ी, बोला—"हाँ, पर अब दीमकें सारी डेस्कें चाटे डालती हैं।"

"राधे! राधे! मेरी मानो तो कुछ कहूँ।"

पाँचू चौंका। शायद अब बात बन जाय। उत्साहित होकर बोला—"कहो, कहो!"

"मेरे हात बेच डालो न लकड़ी का सामान। दीमकें चाट डालें उससे फायदा? अरे अकाल के बाद तुम्हें बिन्चे तो यों भी बनवानी ही पड़ेंगी। यों इसकूल के खाते में पच्चिस-पचास की बचत तो दिखा सकोगे।"

बिल्ली के भागों छींका टूट रहा था: पर अभी एक मंज़िल और थी—आज का चावल। पाँचू अब तो गंगा के किनारे आ ही गया है, प्यासा हरगिज़ नहीं लौटेगा। बोला—"कहते तो ठीक हो। पर ··"

"क्या मोनाई ने पर निकाले। बोला—"मैंने तो इसकूल के भले की बात कही थी, बाकी मैं जोर नहीं देता। मुझे गरज़ नहीं है। सत्त कहता हूँ।"

मोनाई सत्य कहकर हुक्के में लवलीन हो गया।

पाँचू का नशा उतरा। बात बनते-बनते कहीं बिगड़ न जाय। हड़बड़ा कर खुल पड़ा—"नहीं मुझे इन्कार नहीं। लेकिन बात ये

थी कि . तुम तो जानते ही हो, लूट-मार का ज़माना है, इसलिये घर मे पैसा-कौड़ी नही रखते। ढाका के बैंक मे जमा है। और इस वक्त अ-हाथ जरा तगी मे आ गया है। तुम तो समझते ही हो, ये स्कूल बन्द हो गया और…"

मोनाई ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुये समझदारी के पूरे बोझ के साथ गर्दन हिलाकर कहा—सब समझता हूॅ मास्टर बाबू। मोनाई केवट ने भी अॅधेरे-उजाले दिन देखे हैं। मै चावल देने को भी तैयार हूॅ।"

पाँचू ने देखा मोनाई ने नस पकड़ ली। बड़ी झेंप मालूम हुई। बात बनाने के लिये रोब जमाया—"हाँ, अभी तो ले ही लूॅगा। पर ये रक़म तुम उधार ही समझो। जो तुमसे फर्नीचर बेचकर पाऊॅगा उतनी रक़म बैंक से लाकर स्कूल के खाते में जमा कर दूॅगा।"

बात कहते-कहते पाँचू ने खुद ही महसूस किया कि वह बग़ैर ज़रूरत के सफाई दे रहा है। मोनाई ने एक बार ग़ौर से पाँचू के मुॅह की तरफ देखा, फिर गर्दन झुकाकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा उसने थाह का अनुमान किया। अनुमान पक्का करने की नीयत से फिर बोला—"अच्छी बात है तो फिर दो-तीन दिन में कभी चलकर लकड़ी देख लूॅगा। सौदा हो जायगा।"

पाँचू ने देखा, हाथ आये चावल फिर दूर खिसके जाते हैं. वह एकदम से अधीर हो उठा। मन का सत्य उबल पड़ा। घबड़ाकर दीनता भरे स्वर में बोल उठा—आज ही सौदा कर लो न मोनाई। घर मे चावल का एक कनी भी नहीं है। पाँच सेर की गठरी मुर्दा छूकर बरबाद कर दी। मै धर्म-सकट में पड़ा हूॅ।

मोनाई चुप। हुक्का गुड़गुड़ कर रहा है। पाँचू की आँखे भिखारी बनकर एक टक मोनाई के चेहरे पर ही अड़ी हुई हैं। अपनी आबरू

मोनाई के हाथों समर्पित कर, वह उससे संरक्षण की भीख माँग रहा है, वह गिर गया, सदा से पोषित उसका स्वाभिमान इस समय मिट्टी के खिलौने की तरह गिरकर चूर-चूर हो गया। इतना महान त्याग करने के बाद भी अगर मोनाई ने 'ना' कह दी तो? नहीं-नहीं वह ऐसा न होने देगा। ऐसी नौबत आ जाने पर वह मोनाई के पैरों पर अपना सिर झुका देगा। भूखे घर में चावल की गठरी के साथ प्रवेश करने के लिये वह आज हर तरह का अपमान सहन करने के लिये तैयार है।

तभी मोनाई हुक्का सरकाते हुये बोला—"मैं अभी ही दस-पाँच सेर तुम्हे दिये देता हूँ। इस वक्त का काम चलने दो फिर पीछे हिसाब-किताब करके ले-दे लिया जायगा। कोई फिकर न करो। कहकर मोनाई उठा। अन्दर जाते-जाते दरवाजे पर ही ठिठककर बोला—"स्कूल की कुञ्जी न हो तो मुझे दे दो मास्टर बाबू। रातों-रात बेंचे निकलवानी होगी, जिसमें तुम्हारी इज्जत पर कोई आँच न आने पाये।'

मोनाई के इस आत्मीयता ने तो पाँचू का हृदय जीत लिया। फौरन ही तालियों का गुच्छा निकाल कर मोनाई को दे दिया—"मेजों में जो काग़ज़-पत्तर और रजिस्टर वग़ैरः हैं उन्हें तुम मेहरबानी करके अपने सामने ही क़रीने से अलग रखवा देना। 'समझा।'

पाँचू के स्वर में अत्यधिक दीनता थी।

मोनाई तालियों का गुच्छा लेते हुये बोला—"तुम निसाखातिर रहो। मै अभी दस सेर चावल लाये देता हूँ।'

मोनाई अन्दर चला गया। वह खुश था, भगवान ने बैठे-बैठे ही ये पचास साठ रुपये का फ़ायदा करा दिया। दस सेर चावल देके

सारी बेन्चे अपनी। फिर कौन देता है, कौन लेता है! मास्टर बाबू की नजर तो उठेगी नहीं मेरे सामने। भगवान जी, तुम धन्य हो! राधे! राधे!'

और पाँचू सोच रहा था, भगवान बड़ा दयालु है। पाँच सेर दिये, दस सेर पाये। और भी आगे मिलेगा। दो मन तो मिल ही जायगा कम से कम। मोनाई देबता है। बड़े आड़े वक्त काम आया।

श्रीकृष्णदास

अग्नि की ये लाल लपटें भी मृत मानवता के शवों को हड़प न सकीं ··इसीलिये तो सर्वभक्षिणी अग्नि-ज्वालायें भी हतोत्साह हो मन्द पड़ने लगी।

# अन्तेष्टि

कोई पन्द्रह वर्ष पहिले, 'आनन्द-मठ' पढा। उसकी अमिट स्मृतियाँ अब भी मानस-पटल पर अंकित हैं। वह गाहे-बगाहे दिल को कुरेदती भी रहती हैं। इतना तो अभी तक याद है कि 'आनन्द-मठ' पढ़ते समय कई बार शरीर रोमाँचित हो गया था और ख़ून गर्म हो गया था।

उन्हीं दिनों किसी समाचार-पत्र में छपा देखा कि बंकिम बाबू का पुराना मकान जिसमे बैठकर उन्होंने 'आनन्द-मठ' की रचना की थी गिराया जायेगा। वह रेलवे लाइन के रास्ते में बाधक हो रहा था। भलीभाँति याद है कि इस समाचार को पढ़ने के बाद मैं क्रोध और अवशता से विक्षिप्त हो गया था।

बंकिम बाबू के कला-मन्दिर के अवशिष्ट चिन्ह—उनके गिरते ढहते मकान की छाती पर घरघराते इंजन दौड़ेंगे यह ख़याल जाने कितने हफ्तों और महीनो तक दिल को सालता रहा। वह मकान बचाया जा सका या नहीं! आशा कम है। कला, कविता, कल्पना की कोमल पंखुरियों को आज की जड़ सत्ता कितनी निर्ममता से मसल सकती है!

तीर्थ यात्राओं में अधिक निष्ठा न होने पर भी जब यह पता चला कि हमारी टोली 'शान्ति-निकेतन' जायेगी और वहाँ 'गुरुदेव' का भी

दर्शन हो सकेगा तो मन बाँसों उछलने लगा। मेरे आनन्द की कोई सीमा न रही श्यामल वातावरण में, शस्य श्यामल खेतों के बीच से भागती हुई गाड़ी बोलपुर पहुँच गई।

आज 'आनन्द बाज़ार' लगने वाला था। पूज्य बनारसीदास जी शान्ति निकेतन मे मौजूद थे। उन्होने हमारी टोली को 'आनन्द बाज़ार' ले जाना ख़ुशी-ख़ुखुशी मजूर कर लिया। बाज़ार में हमने देखा तरुण क्रय कर रहे थे और तरुणियाँ विक्रय। सहयोगी जीवन और आत्म निर्भरता की प्रारम्भिक शिक्षा का कितना श्लाघ्य उदाहरण था! कितनी अच्छी रात थी वह!

लेकिन अगली रात और भी अच्छी। सामने 'गुरुदेव' बेत की बनी आराम कुर्सी पर विराजमान थे। काँधो को चूमते हुये श्वेत, निष्कलंक केश, सोने जैसा दमकता चेहरा, लम्बी सुडौल नाक, अर्ध उन्मीलित मदिर नयन, ढंग से कतरी हुई लम्बी, सुफेद बर्फ़ानी दाढ़ी जिसमें रजत लहरियाँ सी दौड़ती रहतीं, आजानबाहु, लम्बा रेशमी गाउन गले से पैरों की पिण्डलियो तक ढके हुये था। 'गुरुदेव' अडिग, अडोल, सौम्य. अर्ध ध्यान मग्न से बैठे हुये थे।

हम लोग पहुँचे। प्रणाम किया। आशीर्वाद पूर्ण अभिवादन के बाद सुरीली स्वर लहरी निकली और हृदय को छू गई, "शान्ति-निकेतन देखा? यह मेरे सपनो का साकार रूप है।" 'गुरुदेव' की वाणी में कितनी आत्मीयता थी! हम कुछ बोल न सके।

बिदा लेते समय हमने सन्देश माँगा। फिर वही कोमल स्वरलहरी फूटी, जैसे वीणा के मन्द मधुर तार झंकृत हो गये हों; "क्या सन्देश दूँ। मेरा स्वप्न पूरा करो। मेरा देश 'शान्ति-निकेतन' बन जाय इसके लिये प्रयत्न करो। भारत कृषि प्रधान देश है। गाँवो में समृद्धि न फैली तो स्वराज्य किस काम का? नवजीवन के प्रकाश की स्वर्ण

रेखायें ग्राम-ग्राम में विकीर्ण करो।" कृत-कृत्य हो हम लौटे। मेरे अलबम में 'गुरुदेव' का हस्ताक्षर अब भी मौजूद है। जब कभी उसे देखता हूँ 'गुरुदेव' की वाणी याद आ जाती है।

वापस आ अपने बिस्तर पर लेटा तो मन भारी हो गया था। 'गुरुदेव' ने हमें चुनौती दी थी। उन्हे विश्वास था कि जो भार हमारे कोमल कन्धों पर वह धरा चाहते हैं उसे वहन करने की शक्ति और क्षमता हममे है। लेकिन क्या हमारे प्रति उनकी यह धारणा सच थी!

उदासी और उलझन मे मै गुनगुनाने लगा।

"घोर तिमिर घन निविड़ निशीथे, पीड़ित, मूर्छित देशे,
जाग्रत छिल तव अविचल मंगल, नत नयने अनिमेषे!
दुस्स्वप्ने आतंके, रक्षा करिलो अंके,
स्नेहमयी तुमि माता!"

जैसे अपनी कायरता, अक्षमता और पलायन के भावों को छिपाने की कोशिश कर रहा था। मै बार-बार यही सोचता हममें से कितने हैं जो 'गुरुदेव' के सपने को साकार रूप देने का सचमुच प्रयत्न करेंगे

उनके इस कथन के आठ-नौ वर्ष बाद ही उनकी कोमल कल्पना को कितना कठोर आघात पहुँचेगा क्या इसका अनुमान भी 'गुरुदेव' कर सके थे। उस महामनीषी के दिव्य चक्षु भी इस दुर्दान्त विभीषिका की झिलमिल झाँकी न देख सके थे। और, जब यह अकाल आया तो 'गुरुदेव' की वाणी की याद हममे से कितनो को रही!

शरत बाबू भारत के सबसे अधिक लोकप्रिय उपन्यासकार हैं। कौन ऐसा पढ़ा लिखा आदमी है जिसकी नज़रो से उनकी कोई न

कोई कलाकृति न गुज़री हो ? और, लेखक के जीवन में तो उनकी कृतियों का वही स्थान है जो किसी नवोढ़ा स्त्री की माँग में सिन्दूर का। इसलिये जब पता चला कि श्री पोद्दार जी की जान-पहिचान शरत बाबू से थी तो मैं उनके पीछे पड़ गया। चाहता था कि वह कुछ व्यक्तिगत अनुभव की बात बतावें।

उन्होंने बताया कि शरत बाबू का विचार था कि बंगाल के भद्र लोक की आख़िरी घड़ियाँ दिनों दिन निकट आती जा रही हैं। उसके सामाजिक जीवन की आपसी असंगतियाँ, उसकी द्विधा और असमंजस उसकी रूढ़ि पूजा और मिथ्या विश्वास, किसी न किसी दिन उसे खा डालेंगे। समाज की इस श्रेणी की दशा सचमुच दयनीय है। ऊपर चढ़ने का प्रयत्न करते हुये भी दिनो दिन वह नीचे ही गिरती जा रही है।

लेकिन आर्थिक दुरावस्था, मुनाफ़ाखोरी, चोरबाज़ारी, बदइन्तज़ामी और स्वार्थान्धता उस श्रेणी की कमर तोड़ देगी इसका भान भी न हुआ था, शरत बाबू को ! भद्र लोक की जर्जर अवस्था की दुर्दशा देखने के पहिले ही शरत बाबू चले गये थे। अगर वह जीवित रहते तो क्या इस वर्ग की हड्डी-पसली तक छिन्न-भिन्न होते देख वह अपने प्राण-शरीर को एक साथ रख पाते ! कभी-कभी क़िस्सा ख़त्म होने के पहिले ही क़िस्सा गो का सो जाना अच्छा होता है !

धीरे-धीरे अगस्त आन्दोलन का उत्तरार्ध भी समाप्त होने लगा। निराश, उदास, असफल राष्ट्र युद्धकालीन मँहगी और कमी के कारण दीन विपन्न हो कुड़मुड़ाने लगा। इस अव्यवस्था और निरंकुशता से पूरा लाभ उठाने वालों ने अपनी थैलियाँ भरनी शुरू कीं। लक्ष्मी सिमटने लगी, साथ ही देश की समृद्धि भी।

बंगाल की हालत ख़राब होने लगी। भुक्खड़ो की भीड़ गाँवों से मुँह मोड़ शहर की ओर चली। मौत का क़ाफ़िला डोलने लगा। नर-कंकालो की काली सिमटी छायाओ से कलकत्ते की पक्की, चमचमाती सड़को पर काले धब्बे पड़ने लगे। पत्रो मे समाचार छपा, बंगाल मे अकाल आ गया।'

बात नैनी जेल की है। साथी बन्दियो ने आँखो मे आँसू भर, करुण स्वर मे संमवेदना प्रकट की। सभा हुई तो कुछ ने अपने खाने मे कटौती कर बंगाल भेजने का प्रस्ताव किया; दूसरो ने फाटक पर जमा रुपयो में से कुछ बंगाल भेजने के लिये अधिकारियो को लिखने की बात सुझाई। थोड़े से लोगो ने यह भी एलान किया कि वे अपने घर वालो को लिखेगे कि बंगाल की सहायता के लिये वे बैंक से रुपये निकाल कर भेज दे। हार्दिक सहानुभूति का सर्वसम्मत प्रस्ताव पास कर लोग अपनी-अपनी बैरकों मे चले गये। लेकिन उन्हीं मे से कुछ अपने चौकों के अध्यक्ष थे। वे चौको मे गये। आज 'स्पेशल' खाने का दिन था। स्वादिष्ट भोजन बनना आज अधिक आवश्यक था!

सुस्वादु भोजन चाभते, उसके बाद पूर्ण तृप्ति से डकारते और फूले पेट पर हाथ फेरते साथी बन्दियो मे कितने ऐसे थे जिन्हें चावल के दो दानों के लिये तड़पते भाइयो की याद आ रही थी! अगर हममे से कुछ को, अर्ध-निद्रित अवस्था मे, लगा कि ये नर-कंकाल अपने लम्बे-लम्बे डगमगाते पैर और काँपते पतले हाथ बढ़ाये, आँखे फाड़े और खीसे निकाले हमारी ओर चले आ रहे हैं, लगा कि वह हमारी फूली तोदो मे अपने तेज़ दात गड़ा देने वाले हैं; अपने काठ से सूखे हाथो से हमारा गला मरोड़ देने वाले हैं; और अगर भय से हमारी नीद खुल गई, हम पसीने से तर हो गये, हमारा कलेजा धड़कने लगा, हमे अपने से डर मालूम होने लगा तो इसमें हमारा क्या दोष! यह तो हमारी भावुकता, कमज़ोरी और कायरता का प्रमाण था!

जेल से बाहर आया तो देखा, साथी बंगाल की सहायता के लिये तरह-तरह से प्रचार और संगठन कर रहे थे। मैं भी उसी मे लग गया। 'बंगाल का अकाल' सारे देश के लिये मौत का पैग़ाम लेकर आया है—साथी कहा करते थे। बंगाल की रक्षा देश की रक्षा है—उनका यह मत था। बंगाल की सहायता और स्थानीय संकटो का मुक़ाबिला करने के लिये संगठन करने के प्रयत्न में 'देशभक्तों' और व्यवसाइयो से काम पड़ा। देशभक्तो ने कहा, हम एक बड़े मुहिम पर जा रहे हैं। ऐसे समय रुक कर पानी पीना अनुचित है। कहा—सरकार जान-बूझ कर जनता को भूखो मार रही है। वह अगस्त महा क्रान्ति का बदला ले रही है। सारा अनाज लेकर उसने अपनी खत्तियों में भर लिया है। वही अनाज वह फौज को खिलाती है या ईरान वग़ैरह भेज रही है। उनका यह भी कहना था कि बंगाल की मदद करना अनुचित है। जनता योंही भूखो मरेगी तो वह आप ही आप 'कर मिट या मर मिट' की नीति अपना कर हुकूमत पर धावा बोल देगी। स्वतन्त्रता प्राप्ति का इससे अच्छा रास्ता और क्या हो सकता था।

व्यवसाइयो, व्यापारियो ने भी जब यही बातें कहीं तो और भी आश्चर्य हुआ। जननायक देशभक्तों और जनशोषक व्यवसाइयों का नारा एक हो गया।

लेकिन "लोक युद्ध" का विश्लेषण कुछ और था। उसने अकाल की ज़िम्मेदारी मुनाफ़ाखोरों, खत्तीबाज़ो, चोर बाज़ार वालों के सिर मढ़ा। उसने कहा, अफ़सर घूस ले, मुनाफ़ाखोरों का साथ दे रहे हैं। दोनों की साज़िश से ही यह अकाल आया और इतने आदमी मरे तथा मरते जा रहे हैं।

हाँ, तो साथी काम में जुटे रहे। धड़ाधड़ मुहल्ला कमेटियाँ बनने लगीं। सारे शहर में अट्ठाइस कमेटियाँ बन गईं। लोगों का संगठन ज़ोरों से होने लगा। अनाज की भयानक मँहगी और छोटे सिक्को की कमी की वज़ह से सबसे पहिले भिखमंगो के मरने की बारी आई। जो भीख माँगने वाले दरवाजे से मुँह मोड़कर वापस नहीं जा सकते, धर्म-भीरु नागरिक जिन्हे कुछ न कुछ दे ही देते, वही अब इस दुनियाँ से मुँह मोड़ चले। लेकिन किसी से कुछ करते न बन पड़ा।

नवम्बर का महीना रहा होगा। शाम का समय, कोई साढे चार बजे। हम लोग पार्टी दफ्तर मे थे। किसी ने आकर ख़बर दी 'नीचे दो लाशे नाली में धँसी पड़ी हैं।' हम नीचे पहुँचे। देखा, एक मर चुका था। उसे पुलिस के हवाले कर दिया। दूसरे की साँस चल रही थी। उसे उठाया, हाथ मुँह धुलाया और साफ जगह पर लिटा दिया। पैसे जमा किये और गर्म दूध मँगा उसे पिलाया। अब उसकी आँखे खुलीं। पूछा, "यहाँ क्यो पड़े हुये थे?" कहा, "सात दिन से कुछ खाने को न मिला था। काम की तलाश मे आया था। बेहोश होकर गिर पड़ा। मेरे साथ एक आदमी और था।" कहकर वह आस-पास देखने लगा।

जब उसे बताया गया कि उसका साथी मर गया और पुलिस के हवाले कर दिया गया तो उसकी आँखे नम हो गईं। लेकिन वह रो न सका, मुँह बिचका के रह गया। रोने के लिये भी शक्ति चाहिये। और वह शक्ति अभी उसमे नही आ पाई थी।

उसे अस्पताल मे भर्ती कराया गया। बड़े कम्पाउन्डर ने स्वयं कहा था, "भुखमरी का केस है", लेकिन दूसरे दिन प्रसिद्ध अंगरेज़ी दैनिक मे समाचार निकला—'जान्स्टनगंज के चौराहे पर दो भिखमंगे पड़े पाये गये। एक मर गया था, दूसरा अस्पताल में दाख़िल कर

दिया गया। दोनो को भयानक- बीमारियाँ थीं!' ठीक तो है, भूख से बढकर भयंकर बीमारी और कौन हो सकती है!

सन् १९४४ का नया दिन सामुहिक मृत्यु और लाशो के काफ़िलो का समाचार लाया। प्रभातफेरी की जगह चीत्कार, त्राहि-त्राहि, हाय-हाय की मन्द, दबती प्रतिध्वनियाँ कानो मे पड़ने लगी। लाचार, असहाय जनता मुँह बाये, आँखे फाड़े मौत की राह देखने लगी। भूख से निर्जीव, वस्त्र-हीनता से नंगी, ठिठुरती जनता की लाशो से बंगाल की शस्य श्यामला धरा पटने लगी। बंकिम के 'कला-मन्दिर' की ईंटे खिसकने लगी। 'रवीन्द्र' के सपनो की हड्डियाँ चरमरा उठीं। उनके 'शान्ति-निकेतन' के प्राँगण मे महामृत्यु का ताण्डव होने लगा। चीत्कार, पुकार, आह-ऊह से वह रौरव नर्क बन गया।

प्रकृति की गोद छोड़, अधीर हो धीर धरा से नाता तोड़, वर्तमान सभ्य समाज की सहायता और सहारा पाने की क्षीण आशा को कलेजे से दबाये, मृत्युभीरु, प्राणार्थी भुखमरो के जलूस राजमार्गों पर रेंगने लगे।

माँ ने बच्चे बेचे, भाई ने बहिनें बेचीं, पति ने पत्नी से नाता तोड़ा। सिक्को, खनखनाते चाँदी के टुकड़ों ने इज़्ज़त और मर्यादा का मोल किया। असमत की क़ीमत ठीकरों से लगाई जाने लगी। बोडबियों का मूल्य मुट्ठी भर चावल और बस!

सड़को पर, दिनदहाड़े, अर्ध मृत लाशो को नोचने वाले शृगालों, श्वानो की टोलियाँ घूमने लगीं। कलकत्त के राजमार्गों पर श्वानों-शृगालों का साम्राज्य क़ायम होगया।

फ़ुटपाथ पट गये। सड़के भी पटने लगीं। मार्ग अवरुद्ध होने लगे। जब कभी किसी सेठ-महाजन के मोटर के पहियो से चिपटी अधमरी लाश दूर तक घिसट जाती तो मानवता की माँग के सिन्दूर की मोटी,

भीगी, लाल, रेखा भी खिंच जाती। लेकिन इस रेखा को मिटा देने वाले मोटरो की भी कमी न थी। कारपोरेशन का स्वास्थ्य और सफ़ाई विभाग भी इन 'लाल धब्बो', को धुलवाकर सड़क को बिलकुल साफ करा देता !

नालियो, गलियो, फ़ुटपाथो और राजमार्गो पर से बीनी-बटोरी लाशो के अम्बार श्मशान पर लगने लगे। अर्ध-नग्न लाशे लगातार जलती, धुँआ देती भट्टियो में फेकी जाने लगी। लेकिन अग्नि की ये लाल लपटें भी मृत मानवता के शवो को हड़प न सकीं। उनकी ज्वाला कम होने लगी। जीवित मानवो को मृतक बना देना भूख की ज्वाला के लिये आसान है। लेकिन निष्प्राण शवो को हज़म कर लेना अग्नि की ज्वाला के लिये मुश्किल। इसीलिये तो सर्वभक्षिणी अग्नि-ज्वालायें भी हतोत्साह हो मन्द पड़ने लगी।

सदय-हृदय, धर्म-भीरु, वैष्णव सेठो का दिल पसीजा। उनसे यह हृदय विदारक दृश्य देखा न गया। उन्होने भगवान से बिनती की, मृतात्माओ को शान्ति मिले। आँखो मे आँसू भर करुण स्वर मे बोले, "जीवित अवस्था मे तो हम इनकी कुछ भी सहायता न कर सके। लेकिन इनकी मिट्टी को तो ठिकाने लगाना ही है।" जो दो दाने चावल न दे सके थे उन्होंने दो हज़ार मन लकड़ी का इन्तज़ाम किया। मानवता की अन्त्येष्टि का भार दानवीर महाप्राण मारवाणियो, सेठो ने अपने ऊपर लिया। कुछ भी हो धर्म की रक्षा तो करनी ही थी।

लेकिन यह धर्म पालन का पुण्य प्रयत्न था अथवा इसका भय कि कही ये लाशे फिर न जाग पड़े और अपने चावल के लिये इनकी खत्तियो पर धावा न बोल दे—कौन जाने, कौन कहे ?

अभी तक भद्रलोक की रोटी किसी न किसी तरह चलती जाती थी। रोज़ न सही, दूसरे, तीसरे दिन तो उनके पेट में कुछ न कुछ

चला ही जाता था। दफ्तर से घर लौट अपनी बीबी के सूखे चेहरे को भीगी आँखों से देख, ठंढी साँस ले, ज्योंही वह भात का कौर उठाते, 'रोटी, भात' की कराहती पुकारें आने लगतीं। माथा चकरा जाता, आँखों के आगे अँधेरा छा जाता, उलझन होती, गुस्सा आ जाता और अन्त में रुलाई भी। उठकर तकिये से रुई निकाल, कानों में भर वह फिर वैठ जाते और दो-चार कौर चावल पेट में डाल चौके से उठ आते। मचली आने लगती, लेकिन सँभालना ही पड़ता। पेट में गया हुआ अन्न पचाना ही था। ज़िन्दा रहना ही था।

लेकिन भद्रलोक का यह झूठा आवरण धीरे-धीरे हटने लगा। मेज़, कुर्सियाँ, किताबे बिकने लगी। सुफ़ेद बेदाग़ कपड़ो पर चित्तियाँ लगने लगी। गहनो के नाम पर पीतल की अँगूठी भी नहीं रह गइ। बर्तन भाड़े बिके और अधम पेट की खातिर, दो दाने चावल की खातिर असमत का सौदा होने लगा। उजड़े 'शान्ति-निकेतन' के 'आनन्द-बाज़ार' में अब भी तरुण क्रय करते और तरुणियाँ विक्रय! रवीन्द्र के 'शान्ति-निकेतन' की स्वावलम्बन और सहयोगी जीवन की प्रारम्भिक शिक्षा का कितना श्लाघ्य प्रमाण, कितना ज्वलन्त उदाहरण मिला आह! कवीन्द्र!

समय ने हमसे बदला लिया। खून, हड्डी और माँस से बना बंकिम का कला-मन्दिर ढह गया। उसकी छाती पर से वर्तमान सामाजिक अव्यवस्था और नृशंकता का इंजन पार हो गया। शासन सत्ता के बोझ के नीचे पिस कर वह धूल में मिल गया।

मध्यम श्रेणी और भद्रलोक का गर्व चूर हो गया। उसकी बनावटी अकड़ और शान जीवन की इस प्रतिहिंसा पूर्ण और निर्मम सचाई के सामने पिघल गई। उसके ढोंग का पर्दा हट गया। अपनी

बहिनों, माँओ की लाज बेचकर उसने सीखा, उसके भाग्य की डोरी ग़रीब कृषक-श्रमिक जनता के साथ बँधी हुई है।

लेकिन सोचता हूँ, लक्ष-लक्ष प्राणियो का यों तिल-तिल कर मिटना शेष पर्यंकशायी विष्णु के आसन को क्यों न डिगा सका। शायद, वह लक्ष्मी के कोमल करो का सुखद संस्पर्श पा निद्रा मग्न हो गये थे। या, मामला दूर का था। करुण चीत्कार वहाँ तक पहुँच न सकी। अथवा, लक्ष्मी ने ही रोक लिया हो। कहा हो, "कहाँ जाओगे? शीतल ज्योत्सना से स्निग्ध क्षीरोदधि के शतदल सुवासित इस आनन्द-मय वातावरण को छोड़ उस बदबू, सड़ाँध और आह-कराह से भरे मरघट पर जाना कहाँ की बुद्धिमानी होगी?" और, विष्णु अलसित नयनो से लक्ष्मी की ओर देख, मुस्करा कर, अँगड़ाई ले फिर उनकी गोद में निद्रामग्न हो गये हो। सोचता हूँ, विष्णु को तो लक्ष्मी ने रोक लिया था। लेकिन क्या वैष्णवो की आँखे भी लक्ष्मी की गोद मे मदालस हो गई थी!

सोचता हूँ, एक महा प्राण गाँधी जान-बूझकर आमरण उपवास करते हैं तो सारे देश मे तहलक़ा मच जाता है। ज़मीन आसमान एक कर दिया जाता है और उनकी क़ीमती जान किसी न किसी प्रकार बचा ही ली जाती है। लेकिन बंगाल के इन लक्ष-लक्ष कृषकाय महा प्राणों का आमरण उपवास हमारे धर्मभीरु राष्ट्र को हिला-डुला क्यो न सका? सुना है प्रभु ईसामसीह को अपनी टिक्टी (वह क्रास जिस पर कीलों के सहारे उन्हे गाड़कर मारा गया था) स्वय अपने कन्धो पर लाद कर मृत्युस्थल तक जाना पड़ा था। प्रभु ईसामसीह तो न रहे। वह परमपिता के पास चले गये। वे हमारे लिये महाप्रभु होगये। हमारे पापों से मुक्ति दिला हमें तार देने की अपूर्व क्षमता और शक्ति उनमें आ गई। लेकिन बंगाल के ये लक्ष-लक्ष ईसा मसीह अपने

मृत्युस्थल-कलकत्ते के फुटपाथों पर जो प्राणार्पण कर गये उसका क्या हुआ ? वे अब तक कितनो को तार पाये ? अपने को भी वे तार पाये कि नही ? उनकी इस सार्वजनिक मृत्यु मे क्रान्ति की सफलता देखने वालो को ही वे तार पाते तो भी सन्तोष होता।

सोचता हूँ, यह विभीषिका आई। लेकिन इसने भावुक कलाकारो का हृदय स्पर्श क्यो न किया! 'जूठे पत्ते' चाटने वाले एक व्यक्ति को देख तो उसका हृदय फटने लगा और वह स्वयं 'जगपति का टेढुआ घोटने' को तैयार हो गया। लेकिन नाली से दाने बटोरने वाले असख्य नर-नारियो को देख उसका दिल क्यो न पसीजा ? एक छोटे से अकाल ने—जिसका कारण ईस्टइण्डिया कम्पनी का शोषण बताया जाता है—'आनन्द-मठ' लिखने के लिये बंकिम बाबू को मजबूर कर दिया। लेकिन मुनाफाखोरो—अन्नचोरो द्वारा उत्पन्न किये गये इस भयानक अकाल के बावजूद भारतवर्ष के सारे बंकिम मिलकर भी एक 'आनन्द-मठ' न लिख सके ! यह कैसे हुआ ? क्या अभी इन कलाकारो की तूलिका को क्षार होना शेष है ? इनकी लेखनी के राख हो जाने का प्रमाण स्वयं 'बंग-दर्शन' नहीं है क्या ? मैं पूछता हूँ, आख़िर बंगाल की परिस्थिति का व्यक्तिगत ज्ञान प्राप्त करने के लिये कलाकारों का मंडल क्यो न जा सका ? इन कला के आराधको को आख़िर इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये अवकाश क्यों न मिल सका ?

कहा जाता है कि बिहार में भूकम्प इसलिये आया कि भगवान उसे हरिजनों के प्रति किये गये अन्याय की सज़ा देना चाहते थे। लेकिन सबने मिलकर ज़ोर लगाया। बिहार को सज़ा नही भुगतने दिया गया। लेकिन बंगाल को यह दण्ड क्यों दिया गया ? क्या बंगाल को अपनी क्रान्तिकारी परम्परा के लिये शीश दान की परिपाटी

के लिये ही यह सज़ा दी गई ? भगवान के कोप से बिहार को बचाया गया। लेकिन पूँजीपतियों की स्वार्थान्धता और क्रूर शासकों की लापरवाही और अव्यवस्था से बंगाल को क्यों न बचाया गया ? आख़िर, शस्य श्यामला बंगाल को मरघट बना देने वालों को फाँसी कब दी जायेगी !

सोचता हूँ, मरघट पर स्नेही सम्बन्धी ही क्या शत्रु भी आपसी मन मुटाव और द्वेष भूल जाते हैं। जीवित गुरु नहीं, संसार की कठोर सच्चाइयाँ नहीं, मुर्दा लाशे ही मनुष्य को सच्चा ज्ञान प्रदान करती हैं। अगर यह सच है तो बंगाल के इस महा मरघट ने कितनो को ज्ञान दान दिया ? ज्वाला की ज्योति मे कितनों की आँखे खुलीं ? हर जाति, योनि और अवस्था की लाशो को एक साथ भस्म होते देख कितनों के हृदयों से आपस का द्वेष मिट पाया ? सदियों का सहजीवन जब भ्रातृभाव पैदा न कर सका तो मृत्यु का यह क्षणिक सहयोग ही क्या करता !

आज जब मैं अपने इन लक्ष-लक्ष स्वजनों को तर्पण देने बैठा हुआ हूँ तो बार-बार यह ख़्याल आता है कि मैं अपने भीतर के मुर्दा हृदयहीन कलाकार को भी क्यों न तर्पण दे दूँ ? आख़िर उन दिनों जब कि बंगाल को एक-एक दाने के लिये तरसना पड़ रहा था, जब कि सहानुभूति के एक शब्द से उसकी आँखों में ज्योति आ जाती थी, मैंने क्या किया ? पौरुषहीन, किंकर्तव्यविमूढ़ की तरह बैठा टुकुर-टुकुर देखता रहा और बंगाल का सत्यानाश हो गया। पृथ्वी के भार शत-शत कलाकारों की टोली का एक सदस्य मैं भी था। सोचता हूँ, आज मै अपनी इस सारी टोली की मुर्दादिली को ही तर्पण क्यों न दे दूँ ?

बंगाल से आती हुई पुरवैया में घुल-मिलकर 'आहों' की क्षीण पुकारें कानों के पर्दों पर बजने लगी हैं। कोई कह रहा है, आँखें उघाड़ कर देखो, कान खड़े कर सुनो, दूसरा अकाल आ रहा है। अभी-अभी स्वजनों का तर्पण किया कि फिर ये मरघटी आवाजें आने लगीं। सोचता हूँ, अब तर्पण करते ही बीतेगा क्या ?

सोचता हूँ, गत ज्वाला की लपटों ने हमारे बाहरी चमड़े को ही झुलसाया, इस प्रभंजन और झन्झा से हमारा एक रोयाँ भी न हिला। मरघट की महाशान्ति ने उनके दिलों की सहज धड़कन और नाड़ियों की हरारत को बन्द कर दिया। ऐसा क्यों हुआ ? कैसे हुआ ?

बंगाल के इस मरघट से आख़िर हम तर्पण करने वाले ही कुछ सीख क्यों न सके ?

सीखें क्यों ? सीखें क्या ? अभी तो और भी तर्पण करना बाकी है !

भैरवप्रसाद गुप्त
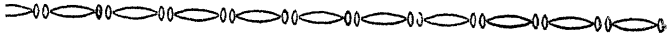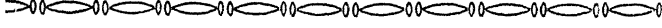
# अन्नपूर्णा

सुप्रसिद्ध चित्रकार, निर्लेप, मेरा मित्र है। उसके कई चित्र अन्त-देशीय प्रख्याति प्राप्त कर चुके हैं। कला-प्रदर्शनियों में जब उसके चित्र पहुँच जाते हैं, तो उनके सामने दूसरे कलाकारों के चित्र फीके पड़ जाते हैं। इसी कारण कला-पारखी उसके चित्रों का मूल्य अब पुरस्कार घोषित कर नहीं आँकना चाहते। उसके चित्र केवल प्रदर्शन के लिये प्रदर्शनियों में रखे जाते हैं। कला की जो उत्कृष्टता उसके चित्रों में होती है, वह देखने और अनुभव करने की ही वस्तु है।

मैंने उसके सभी चित्र देखे हैं। जब वह कोई चित्र पूरा करता है, तो मुझे बुलाता है। कैनवेस के सामने कुर्सी पर मुझे बैठाकर, वह चित्र से पर्दा हटाकर एक ओर खड़ा हो जाता है। मैं उसके चित्र को अपने पूरे मनोयोग से देखता हूँ, ध्यान से उसकी एक-एक बारीकी का अध्ययन कर चित्र की आत्मा का साक्षात करने का प्रयत्न करता हूँ, उसकी कला की गहराइयों में डूबकर उस चित्र में जो मनोवैज्ञानिक रहस्य होता है, उसे पा जाने की कोशिश करता हूँ। तब लगता है कि चित्र में जो चित्रकार की कला का अमर जीवन-संगीत होता है, वह मेरे प्राणों में जल की सतह के नीचे मंद-मंद बजती हुई किसी मधुर रागिनी की तरह उठकर, धीरे-धीरे ऊँचा हो, सत्य की एक गूँज बन मेरी आत्मा पर छा जाता है। मेरा रोम-रोम फड़क उठता है। एक अलौकिक अन्तर्ज्योति से मेरी आँखें चमक उठती हैं। हृदय में

जैसे रस-सा भर जाता है। मैं अनियंत्रित-सा मुड़कर निर्लेप से कह उठता हूँ—"बहुत सुन्दर है!"

उसकी गहरी आँखो में एक रहस्यमय मुस्कान उभर आती है। बढ़कर वह चित्र पर पर्दा गिरा देता है। फिर मेरा हाथ पकड़कर बैठक मे आ नौकर से चाय लाने को कहता है।

हम आमने-सामने चाय की मेज के पास कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। नौकर चाय की ट्रे ला मेज पर रख जाता है। निर्लेप चाय की एक प्याली बना मेरी ओर बढ़ा देता है। और दूसरी प्याली में अपने लिये चाय ढालकर, उसे उठाकर, एक चुस्की ले अपने चित्र की कहानी शुरू कर देता है।

उसके हर चित्र की एक कहानी होती है। वह कहानी शायद उसके और मेरे सिवा किसी को मालूम नही होगी। उसकी कहानी सुन मै हठात् कह पड़ता हूँ—"निर्लेप, ऐसी साधारण चीज लेकर किस जादू से तुम इतनी सुन्दर कला-सृष्टि कर पाते हो?"

उत्तर मे वह अपनी आँखो को सिकोड़ कर तनिक डूबा हुआ-सा बोल उठता है—"माता किस जादू से धूल में सने हुये बच्चे को झुककर, गोद मे उठाकर उसे सुन्दर मानव का रूप दे पाती है?"

सचमुच निर्लेप धूल मे पड़ी हुई चीज़ को ही श्रद्धा से उठाकर अपनी तूलिका से उसे कला का रूप दे हीरे की तरह चमका देता है। उसकी कला का यही रहस्य है, जो मेरे सिवा किसी को ज्ञात नही। वह अपने चित्रो का निर्माता ही नही, माता भी है। माता की कला नैसर्गिक होती है, निर्लेप की कला भी नैसर्गिक है। कला समालोचक अपनी कलम की नोक उसके चित्रो मे गड़ाने मे अपने को असमर्थ पाता है। उसके चित्र फूल की पँखुरियाँ हैं। उनको काँटों की नोक से छूने का साहस कोई कैसे कर सकता है?

दिल्ली में 'भूखा बंगाल प्रदर्शनी' की आयोजना हो रही थी। निर्लेप के यहाँ चित्र के लिये पत्र पर पत्र आ रहे थे। जब पत्रों का कोई भी उत्तर आयोजको को न मिला, तो उनमे से मेरे एक परिचित सज्जन ने मुझे पत्र लिखा कि मै निर्लेप से कम से कम एक चित्र भेजने को कहूँ। वह मेरा और निर्लेप का सम्बन्ध जानते थे। उन्हें पूरा विश्वास था कि निर्लेप अपने प्यारे मित्र की बात नहीं टाल सकता। पर मैं जानता था कि निर्लेप फर्माइश की चीजे़ नही बनाता। फिर भी मुझे विश्वास था कि वह चित्र बनाये बिना रह नहीं सकता, क्योकि उसकी कला सामयिकता की अवहेलना नहीं करती। बंगाल के लाखो भूख से मरने वालो के भीषण चीत्कार, जिनमे धरती और आकाश का कोना-कोना आज लरज़ रहा है, क्या निर्लेप-जैसे कलाकार के हृदय के तारो को झकझोर कर झनझना देने मे असमर्थ होगे?

मैं जानता था कि निर्लेप के लिये मेरी बात का क्या मूल्य है। इसीलिये उसके कलाकार पर बेजा तौर पर जोर डालने की मैने आवश्यकता नहीं समझी। मैं चुप ही रहा। अन्तर्प्रेरणा से निकली हुई और ज़ोर देकर निकाली हुई चीज़ मे जो अन्तर होता है, वह मैं जानता था।

जब मैं आगरे से अपना काम ख़त्मकर घर आया, तो प्रदर्शनी के लिये ठीक दो महीने रह गये थे। निर्लेप से मिला, तो उसे बेहद परेशान पाया, जैसे उसका दिल और दिमाग़ किसी बेहद पेचीदा उलझन मे फॅसे हुये हो, और वह उसमे निकल जाने या उसका कोई हल पा लेने के लिये संघर्ष कर रहा हो। उस हालत में उससे कुछ बात न हो सकी।

दूसरे दिन उसके यहाँ गया, तो वह घर पर नही था। उसके नौकर से मालूम हुआ कि वह कल रात को ही पूरब वाली गाड़ी से

कहीं चला गया। उससे वह कह गया है कि उसके लौटने का समय निश्चित नही।

निर्लेप पूरब वाली गाड़ी से कहीं गया है, उसके लौटने का समय निश्चित नही, यह जानकर किसी क़दर मुझे सन्तोष हुआ। पिछले दिन की उसकी परेशानी भी कुछ समझ मे आ गई। यथार्थ जीवन का चित्रकार बंगाल से पाँच सौ मील दूर पर बैठकर केवल कल्पना और सुनी-पढ़ी बातों के आधार पर अपनी तूलिका उठा, चित्र बनाकर रख देना कैसे उचित समझता। अबकी उससे मुझे एक ज़बरदस्त शाहकार की उम्मीद हुई। मन-ही-मन प्रसन्न होता मैं उसके नौकर से कहकर चला आया कि जब निर्लेप लौटे, तो वह मुझे सूचना दे।

नौकर से कह तो आया, किन्तु मुझे चैन नही था। दिन भर घर पर बैठा हुआ मै निर्लेप के बारे में कुछ सुनने की प्रतीक्षा किया करता। शाम तक जब उसकी कोई ख़बर न मिलती, तो यह सोचकर कि नौकर कही काम में न फॅस गया हो, एक चक्कर उसके घर का ज़रूर लगा आता। देखते-देखते पौने दो महीने बीत गये। दिल्ली की प्रदर्शनी को केवल एक हफ्ता रह गया। निर्लेप लौटा नहीं। अब मेरी बेचैनी और बढ़ गई। कुछ निराशा-सी भी होने लगी। निर्लेप का चित्र प्रदर्शनी में न देख लोगों को कितनी नाउम्मेदी होगी। उसके आयोजक कही यह न समझ बैठे कि निर्लेप मग़रूर हो गया। उसे अब अपने प्रशंसकों की परवाह नहीं।

एक-एक दिन पहाड़ की तरह बीतने लगे। मैं अब दिन में कई चक्कर उसके यहाँ लगाने लगा कि न जाने कब वह आ जाय। पर जब चार दिन और बीत गये, तो मेरी रही-सही आशा भी जाती रही। मेरी सारी उमंगे टूट गईं। अब निर्लेप आ भी जाय, तो क्या

कर पायेगा वह दो-तीन दिनों में ? निदान मैं उदास बैठा सोच रहा था कि कहीं उसे प्रवास में कुछ हो न गया हो।

रात में मुझे नींद नहीं आ रही थी। यदि निर्लेप का कुछ पता होता, तो मैं जाकर उसे देख भी सकता। समझ में न आता था कि क्या करूँ। बेचैनी में करवटें बदलता चिन्ताओं के हुजूम से परेशान हो रहा था कि अचानक बाहर किसी के पैर की आहट हुई। मैं बौखलाया हुआ-सा उठकर दरवाजे की ओर लपका। देखा, तो निर्लेप का नौकर सीढ़ियों पर चढ़ रहा था। मैं उसे देखकर एकबारगी चीख-सा पड़ा—"क्यों, सेवक, बाबू आये ?"

उसके मुँह से ठीक तौर पर 'हाँ' निकल भी न पाया कि मैं दौड़कर उससे लिपट गया। मेरे इस असाधारण व्यवहार से अकचका कर वह सिकुड़-सा गया। मैंने कुछ झेंपकर उसे छोड़ दिया।

"चलो, सेवक, मैं चलता हूँ! वह अच्छा तो है ?" मैंने आगे क़दम बढ़ाते हुए कहा।

"जी! वह अच्छे तो हैं, पर···" मेरा मुँह तकता वह चुप हो गया।

मैं तनिक शंकित-सा हो बोल पड़ा—"पर क्या, सेवक ? चुप क्यों हो गया ?"

"जी, वह आते ही स्टूडियो में घुस गये। कुछ खाया-पिया भी नहीं। मैंने कहा, तो उन्होंने जल्दी में यह कहकर कि स्टूडियो के पास मेरे निकलने के पहले कोई न फटके, तड़ाक से दरवाजे बन्द कर लिये।"

"ओह, यह बात है! अच्छा, सेवक, तुम जाओ! मैं कल सुबह आऊँगा।"

सेवक चला गया। मेरी बेचैनी एकदम न जाने कहाँ चली गई। टूटी उमंगें सहसा हरी हो गईं। ख़ुशी के मारे मुझे रात भर नींद नहीं आई। निर्लेप आते ही जुट गया काम मे। प्रदर्शनी के लिये अब वह एक लाजवाब शाहकार दे सकेगा।

सुबह बिना कपड़े बदले ही मै निर्लेप के यहाँ चल पड़ा। दरवाजे पर सेवक मुँह लटकाये बैठा था। मुझे देखकर उसने अपना सिर ऊपर किया। उसकी आँखों मे किसी बात की आशका काँप रही थी। तनिक देर के लिये मै उसे देखकर अप्रतिभ-सा हो उठा। सहमी हुई आवाज़ मे मैने कहा— क्यों, सेवक, बाबू अभी नहीं निकले क्या?"

"हाँ, बाबू, पहले तो वह चार बजे सुबह निकल आते थे। आज छः बजने को आये, पर अभी तक वह नही निकले। रात को भी कुछ खाया-पिया नहीं। मुझे भय है कि ··" कहते-कहते उसकी आवाज़ भर्रा कर घुट-सी गई।

"नही-नही, सेवक! तुम घबराओ नहीं! उसे तो तुम जानते ही हो!" मैने बैठके की ओर बढ़ते हुये कहा।

"बाबू याद है न आपको पिछले साल की बात। पाँच दिन तक वह बन्द रहे स्टूडियो में। केवल बीच-बीच में चाय और टोस्ट ले लेते थे। मेरे तो प्राण ही सूख गये थे। अब की मुझे डर है कि कहीं··"
—मेरे पीछे-पीछे आते हुये सेवक ने कहा।

"नहीं-नही, सेवक, अब की पाँच दिन का वक्त नहीं है। वह जल्दी ही निकलेगा। तुम तो ख़ामख़ाह घबरा जाते हो। अरे, भाई, यह काम ही ऐसा है कि आदमी सब-कुछ भूल-सा जाता। उसे दीन-दुनिया की ख़बर नही रहती!"—मैने उसे दिलासा देने की गरज़ से कहा।

"आप उन्हें क्यों नहीं मना कर देते, बाबू ! दिन-दिन उनकी तन्दुरुस्ती गिरती जा रही है, फिर भी आराम का नाम नही लेते !"—एक कुर्सी को झाड़ते हुये चिन्तित स्वर मे उसने कहा।

"तुम नही समझते, सेवक ! वह अपने मन का राजा है। किसी के कहने-सुनने का कुछ असर उस पर नहीं पड़ता।"—कुर्सी पर बैठकर मैने कहा।

"चाय लाऊँ, बाबू ?" मेरे सामने की मेज़ साफ़कर, झाड़न कन्धे पर रख उदास स्वर मे वह बोला।

"नहीं, सेवक ! अकेले मै कैसे चाय पीऊँगा ! थोड़ी देर और रुक जाओ। शायद " सारा दिन बीत गया, रात भी आधी निकल गई, पर वह 'शायद' न आया। मै एक मिनट के लिये भी उसके यहाँ से न हटा। बेचारा सेवक बेहाल हो गया। हमे खाने-पीने की भी फ़िक्र न रही। स्टूडियो के बन्द दरवाजे पर नज़र गड़ाये, धकड़ते हुए दिल को लिये हम एकटक ताकते रहे कि अब दरवाज़ा खुले, अब सफलता की मुस्कान होठो मे लिये निर्लेप निकले।

जब पूरी रात भी बीत गई, तो मेरे दिल पर एक अजीब-सी घबराहट तारी हो गई। मेरा दिल जोरों से धड़कने लगा। दिमाग़ में चक्कर-सा आने लगा। आँखो के सामने अँधेरा-सा छाने लगा। अपने को सँभालने की गरज़ से मै उठकर टहलने लगा। पैर लड़खड़ाते-से पड़ रहे थे। आँखे झप-झप जाती थीं। दिमाग़ मे आया, ऐसे काम न चलेगा। मुझे धैर्य नही खोना चाहिये। सेवक एक कोने मे पड़ा फैली आँखो से मेरी ओर देख रहा था। रोते-रोते उसके आँसू ख़त्म हो चुके थे। उसके चेहरे की झुर्रियाँ और भी स्पष्ट हो गई थीं। उसकी हालत देखकर मुझे रोना आ गया। लगा, कही वह यो ही चिन्ता मे जान न दे दे। मैंने दृढ़ता से अपनी आँखो को खोलकर

ज़ोर से ज़मीन पर पैर मारा, और कड़ी आवाज़ मे कहा—"सेवक, चाय लाओ !"

वह अकचका कर स्टूडियो के दरवाजे की ओर देख मेरी ओर अपनी सफेद नाचती हुई आँखे कर देखने लगा।

मैने फिर पैर पटक कर कहा—"क्या देखते हो ? जाओ, जल्दी चाय लाओ ! मै अकेले पीऊँगा !"

उसने मेरी बात सुनकर मुझे ऐसे देखा, जैसे मै पागल हो गया होऊँ। उसने उठकर मेरी ओर वैसी ही नज़र मे देखते क़दम उठाया। मेरा दिल भर आया। जी मे आया कि उस अच्छे सेवक से लिपट कर जी भर रोऊँ। पर वैसा करना उस वक्त मौके की माँग नहीं थी। मैंने ज़ोर देकर अपने को क़ाबू मे रखना ही उचित समझा।

मेज़ के सामने कुर्सी पर बैठकर मैं अपनी दोनो मुट्ठियों से मेज़ को ठोकता रहा, ताकि फिर कही मैं अपने को उसी बेचैन ख़याल में न खो दूँ।

थोड़ी देर में अपने काँपते हुये हाथो मे चाय की ट्रे लिये सेवक मेरी ओर शंकित दृष्टि से देखता हुआ, बेहद उतरा और खिन्न चेहरा लिये मेज़ के सामने आ खड़ा हुआ। मैंने बिना उसकी ओर देखे ही उसके हाथ से ट्रे ले मेज़ पर रख, प्याली मे चाय उँडेलना शुरू किया। हमेशा की तरह सेवक दो प्यालियाँ लाया था। दूसरी प्याली में भी चाय ढालकर मैने एक प्याली सेवक की ओर बढ़ा दिया। उसे अब मेरे पागल होने में तनिक भी शक न रह गया। वह सहमी नज़र से मेरे मुँह की ओर देखता पीछे को हट गया।

"सेवक !" मैंने ज़रा ज़ोर से कहा।

"जी, बाबू !" उसकी आवाज़ से लगा, जैसे अब उसका कलेजा फट जायगा।

मुझे लगा कि मैं सीमा का उल्लंघन कर रहा हूँ। उठकर मैंने सेवक का काँपता हुआ हाथ अपने हाथ में मुस्कराते हुये ले लिया, और नरम लहजे में कहा—"सेवक!"

सेवक के मुर्दा जिस्म में जान आ गई। उसके झुर्रियों भरे चेहरे पर एक अद्भुत मुस्कान थिरक गई, जैसे सरोवर की लहराती हुई सतह पर उषा की सुषमा बिखर गई हो।

मैंने प्याली उठाकर उसके हाथ में थमाते हुये आत्मीयता के स्वर में कहा—"सेवक, लो, तुम भी पियो! जानते हो न कि जब निर्लेप स्टूडियो से अपना काम ख़त्म कर निकलेगा, तो उसकी क्या हालत होगी। अगर हमने अपने को सँभाल उसकी सेवा के योग्य न रखा, तो उसे कौन सँभालेगा? लो चाय पी लो! और, हाँ, आज खाना भी बनाओ। मुझे पूरी उम्मीद है कि शाम तक निर्लेप ज़रूर निकल आयगा। परसों प्रदर्शनी खुलेगी न"

आँखों से छलकते हुये आँसुओं को हाथ से पोंछ सेवक प्याली ले रसोई-घर की ओर बढ़ गया। मैं उसकी ओर देखता रह गया। हृदय में एक अजीब-सी सिहरन उठ रही थी। 'सेवक, तू अल्हड़ निर्लेप का सेवक नहीं, पालक है!" मेरे मुँह से आप-ही-आप निकल गया।

चाय पीकर रसोई-घर में झाँका, तो सेवक सब्ज़ी काटता गुमसुम बैठा था। मुझे कुछ तसल्ली हुई। कुछ घंटों के लिये तो वह बझा रहेगा। फिर स्टूडियो की ओर दबे पाँव आकर झाँपने लगा। अन्दर से सर्र-सर्र की आवाज़ आ रही थी। निर्लेप लगा था चित्र बनाने में। उसे क्या ख़बर होगी कि उसके पीछे उसके दो दीवाने इतने परेशान हैं!

लिखने की मेज़ पर आ मैंने प्रदर्शनी के मन्त्री को एक पत्र लिखा कि निर्लेप का चित्र जायगा। उसके लिये उचित स्थान प्रदर्शनी में रख छोड़ें। रास्ते में पत्र लेटर बक्स के हवाले कर घर पहुँचा।

नहा-धोकर कपड़े बदले। फिर इन्तज़ार में थोड़ी देर तक बैठा रहा कि शायद निर्लेप चित्र पूरा कर निकले, और हमेशा की तरह मुझे चित्र देखने को बुलाये। बड़ी देर तक जब सेवक न आया, तो आख़िर मैं उठ खड़ा हुआ, और निर्लेप के घर की ओर चल पड़ा।

देखा, रसोई-घर मे सेवक निर्लेप की प्यारी चीज़ बादाम-खीर बनाने के लिये सिल पर बादाम और छोटी इलायची पीस रहा था। चुपचाप बिना उसे छेड़े मैं बैठक मे एक आरामकुर्सी पर आ पड़ा। दो रातो का जगा हुआ तो था ही, नींद ने एकबारगी ज़ोर से हमला किया। मै होश-हवास खो गहरी नींद मे डूब गया।

न जाने कितनी देर तक मै यो ही पड़ा रहा कि सहसा मेरे कानो में "बाबू जी! बाबू जी!" की पुकार आ टकराई। आँखे खोलने की मैने कोशिश की, पर पलके जैसे एक दूसरे से सट गई थीं। बहुत कोशिश करने पर भी जब आँखे न खुली, तो वैसे ही फिर पड़ रहा।

"बाबू जी!" किसी ने मेरे कन्धो को ज़ोर से झकझोरते हुए पुकारा। मै आँखे बन्द किये ही उठ पड़ा।

"बाबू जी, स्टूडियो का दरवाज़ा हिल रहा है!

मेरे मस्तिष्क मे कुछ सन्न-सा कर गया। आँखे आप ही खुल कर फैल गई। देखा, सामने सेवक खड़ा ज़ोरों से हाँफ रहा था। मैं स्टूडियो की ओर मशीन की तरह दौड़ गया।

कुछ खट-सा हुआ। स्टूडियो के दरवाजे हिले। मेरा कलेजा ज़ोर से धड़क उठा। अब दरवाज़ा खुलेगा, और निर्लेप मुस्कराता हुआ निकलेगा।...

झटके से दरवाजे के दोनो पल्ले तड़ाक से खुले, और निर्लेप दोनो हाथ फैलाये लड़खड़ाता हुआ बाहर निकला कि लुढ़ककर गिर पड़ा।

"निर्लेप! निर्लेप!" चीखते हुए आपा खो मैने लपककर उसे उठाना चाहा कि मेरे हाथ जल से उठे। "उफ़!" मेरे मुँह से निकल गया।

मेरा सारा शरीर पसीना-पसीना हो गया। उसका माथा छुआ, तो गरम तवे की तरह तप रहा था। निर्लेप ज्वर में अचेत हो गया था।

उसके कंधो के नीचे हाथ लगा, मैंने उसे उठाकर पलंग पर लेटा दिया। उसके पैर और सिर ठीक कर उसका शरीर कम्बल से ढककर सेवक को पुकारा। सेवक हाथ मे बादाम-खीर के गिलास ट्रे में लिये रसोई की ओर से लपक कर आया। उसकी नाचती हुई आँखें एक बार पलग पर पड़े निर्लेप के जलते हुये चेहरे पर और एक बार मेरे परेशान मुँह पर पड़ी कि उसके हाथ से ट्रे छूट गया। शीशे के गिलाश झन्न से गिर कर चूर-चूर हो गये। खीर फर्श पर बिखर गई। वह "बाबू! बाबू!" चिल्लाता निर्लेप के पलंग की ओर लपका। पर मैंने उसे बीच ही मे रोक लिया।

"सेवक! यो न घबराओ! निर्लेप को बुखार हो आया है। दौड़ कर डाक्टर को बुला लाओ! तब तक मैं इसे देखता हूँ।"

घबराया हुआ सेवक डाक्टर को बुलाने दौड़ पड़ा। निर्लेप वैसे ही पड़ा रहा आँखें मूँदे। मेरी आँखे स्टूडियो के खुले दरवाजे की ओर मुड़ीं, तो देखा, सामने ही 'इजेल' पर निर्लेप का बनाया हुआ चित्र टँगा था। दीवार-घड़ी ने टन-टन कर छः बजाये। मुझे प्रदर्शनी की याद हो आई। स्टूडियो में जा, समीप से चित्र को देखा, तो मेरे मुँह से एक लम्बी चीख़ निकल गई। झटके से उस पर पर्दा गिराते पडा, चित्र के नीचे लाल रंग से लिखा था—'तू अन्नपूर्णा माँ रमा है, और हम भूखों मरें!'

आस-पास से काग़ज़ बटोर उस चित्र को 'ईजेल' से उतार मैंने पैक कर दिया। फिर प्रदर्शनी के मन्त्री के नाम एक पत्र लिख, लिफ़ाफ़े मे बन्द कर चित्र के साथ ही मेज़ पर ला रखा।

इतने मे सेवक डाक्टर को लिये आ पहुँचा। डाक्टर निर्लेप की परीक्षा करने लगा। मैंने सेवक को बुलाकर कहा—"सेवक, जल्दी तैयार हो जा! अभी साढ़े छः की गाड़ी से तुझे इसे लेकर दिल्ली जाना होगा। मैंने पत्र लिख दिया है। पता भी बता देता हूँ। कल शाम तक लौट आना!"

सेवक के मुँह से निकल गया—"और मेरे बाबू?..."

"मैं हूँ, सेवक! तुम बाबू की चिन्ता मत करो! जिसके लिये उसने यह सब किया, यदि वही न हुआ, तो उसे कितना दुःख होगा? जाओ, तुम तैयार हो जाओ!"

सेवक अपने कमरे की ओर चला गया। मैं डाक्टर की ओर बढा।

रात मे एक बार भी मेरी आँखें न झपकीं। निर्लेप के झँवाये चेहरे और सूजी हुई पलकों पर टकटकी लगाये उसके सिरहाने बैठा हुआ, मैं उसके ललाट पर लेप मलता रहा। उसने करवट तक न बदली। निर्जीव-सा पड़ा रहा।

ठण्डी उत्तरी हवा ने सुबह होने की सूचना दी। मैंने उठकर दरवाजे खोले। सामने लॉन की हरी दूबों की नोकों पर ओस के मोती चमक रहे थे। गुलाब की झाड़ियों मे खिले हुये फूल हरी साड़ी पर लाल-लाल बूटों की तरह बड़े भले मालूम होते थे। उनकी नन्हीं-नन्हीं शाखों पर नन्हीं-नन्ही चिड़ियाँ फुदकती हुई अपनी दिलकश सीटियाँ बजा रही थीं।

कमरा खुशबू में बसी हुई हवा से भर गया। खिड़कियों के परदे सिहरने लगे। निर्लेप ने करवट ली। उसकी नींद में डूबी हुई कमज़ोर आवाज़ आई—"सेवक! सेवक! इन्द्र को बुला लाओ! उससे कहना चित्र पूरा हो गया है।"

मै उसके पलंग की ओर लपक कर धीमी आवाज़ मे बोला—"निर्लेप, आँखे खोलो, मित्र! मैं तुम्हारे सामने हूँ।" कहकर उसके बिखरे बालो मे हल्के-हल्के उँगलियाँ फेरने लगा।

निर्लेप की बोझिल पलके धीरे-धीरे खुलीं। मुझे अपने पर झुके हुये देखकर उसकी लाल आँखो मे एक चमक-सी भर गई। पलकें झपकाते हुये बोला—"तुम आ गये, इन्द्र! चलो, चलो, मैं अपना चित्र दिखाऊँ!" कहकर वह उठने को हुआ।

"नहीं-नही, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं! रात भर तुम बुखार में बुत रहे! उठने की कोशिश न करो! मै तुम्हारा चित्र देख चुका हूँ।"—मैंने उसे फिर लेटाते हुये कहा।

"तुम मेरा चित्र देख चुके हो! अच्छा, तो बताओ, तुम्हें वह कैसा लगा?"—आँखों में उत्सुकता चमकाते हुये कहकर उसने मेरे मुँह पर दृष्टि जमा दी।

"उसे देखते ही मेरे मुँह से एक लम्बी चीख़ निकल गई!" मैंने सिर झुका कर कहा।

"ओह उसे देखकर तुम चीख पड़े? तब तो मैं सफल रहा, मित्र! अच्छा, सेवक से तुम चाय लाने को कहो, मैं तुम्हें उस चित्र की कहानी सुनाऊँ!"—कुछ उतावला-सा बोला निर्लेप।

"अभी रहने दो, निर्लेप! जल्दी क्या है? तुम अच्छे हो जाओ, फिर इतमीनान से सुनूँगा मैं तुम्हारे चित्र की कहानी!"—मैंने उसके ललाट को सहलाते हुये कहा।

"नहीं-नहीं, मित्र, तुम नहीं समझते मेरी बेचैनी ! जब तक मैं तुम्हें सुना न लूँगा, मेरा दिल हल्का न होगा तुम सेवक से चाय लाने को कहो ! मैं तुम्हें अभी कहानी सुनाऊँगा !" झुँझलाया हुआ-सा निर्लेप बोला।

अधिक कुछ कहने पर निर्लेप चिड़चिड़ा जायगा, यह समझ मैं वहाँ से उठकर, रसोई में जा, चाय तैयार कर, ट्रे में सजा कर ले आया। मुझे चाय लिये देखकर निर्लेप बोला—"क्यों, सेवक कहाँ गया ?"

"सेवक चित्र लेकर दिल्ली गया है। कल वहाँ की 'भूखा बंगाल प्रदर्शनी' का उद्‌घाटन है न !"—मैंने कहा।

"ओह, तो तुमने उसे वहाँ भेज भी दिया !" तनिक रुककर वह फिर बोला—"ख़ैर, तुम मुझे ज़रा सहारा दो !"

मैंने सहारा दे, दीवार से तकिया लगा उसे बैठा दिया। चाय प्याली में ढाल उसे दी। एक प्याली ख़ुद ले, उसके सामने कुर्सी पर बैठ गया। उसने चाय की एक चुस्की ली। फिर मेरी ओर देखते हुये बोला—"मैं तुमसे बिना कुछ कहे-सुने बंगाल की दुर्दशा अपनी आँखों से देखने की गरज़ से उस दिन चल पड़ा। शहरों को छोड़ मैं वहाँ के कुछ गाँवों में गया, क्योंकि मेरा ख़याल है कि हिन्दुस्तान के सच्चे जीवन-चित्र शहरों में नहीं, गाँवों में देखने को मिलते हैं। वहाँ के जिन गाँवों को मैंने देखा, वे या तो सूनी कब्रों की बस्तियाँ थीं, या भयावने श्मशान, जहाँ धूल से ढकी नंगी लाशें या कुत्तों, गृद्धों और श्रृगालों से घिरे अनगिनत मुर्दे दिखाई पड़ते थे। टूटे-फूटे, बरबाद घरों, जिनके ऊपर मृत्यु अपने मनहूस पंखों को फड़फड़ाती उड़ रही थी, सूनी राहो और गलियों, जिनमें बरबाद ज़िन्दगियों की दर्दनाक कहानियाँ अकाल छोड़ गया था, भूखों मरने वाले बेबसों के हृदय-द्रावक चीत्कारों की

गूँजों के सिवाय जो वातावरण में अब भी व्याप्त थीं, वहाँ और कुछ शेष न था। वे ऐसी बस्तियाँ थीं, जिन्हें मुर्दे आबाद किये हुये थे, जहाँ प्रेतों की छायायें डोल रही थीं, जहाँ चारों ओर हू का आलम था। एक-आध महाजनों या जमींदारों के घरों में रोशनी दिखाई देती, तो लगता, जैसे शवो की छातियों पर खड़ी कोई बेहया ज़िन्दगी एक विरोधाभास बन व्यंग्य कर रही हो, जैसे श्मशान में मुर्दा जलाने वाला अपने हाथ मे जलती हुई लुकाठी लिये खड़ा हो।

"एक दिन एक ऐसे ही गाँव में मेरी मुलाकात डाक्टरों के एक दल से हुई। उनके हाथो में दवाइयो के बैग देखकर मुझे हँसी आगई। सोंचा, कितने मूर्ख हैं ये डाक्टर, जो यह भी नही समझते कि भूख की बीमारी की दवा शीशियो मे नही रहती, बोरों मे रहती है! उनसे पूछने पर मालूम हुआ कि वे उन बीमारियो की रोक-थाम करने आये हैं, जिनके फैलने का अन्देशा अकाल के बाद होता है। उनकी बुद्धि पर मुझे तरस आये बिना न रहा। वाह री बुद्धि! जो बीमारी है, उसकी दवा की किसी को फ़िक्र नहीं, और जिन बीमारियों का अन्देशा है, उनके लिये दौड़-धूप! लेकिन कौन करे उन सरकारी गोदामों और व्यापारियों की आढ़तो के फौलादी तालों को तोड़ने का साहस, जहाँ भूख की बीमारी की दवा बोरों में भरी सड़ रही है, गल रही है, व्यर्थ हो रही है, जो मोरचों पर दुश्मनो को मारने वाले सिपाहियो के लिये रख छोड़ी गई है, देश के अपने भूखों मरने वाले लोगों के लिये नही, जो मोटी-मोटी रक़में ऐंठने वाले हुकूमत के एजेन्टो के शरीर मे ख़ून का दौरा क़ायम रखने के लिये रखा गया है, उसके पैदा करने वाले किसानों और मज़दूरों के लिये नही, जो ख़ून चूसने वाली जोंकों को मोटी और मज़बूत बनाने के लिये सुरक्षित है, जिनसे जनता की रगों में एक बूद भी खून बाकी न रहे? उस वक्त मुझे मालूम हुआ कि

बंगाल में कोई दैवी अकाल नहीं पड़ा, वह तो सरकार और शोषकों का एक विनाशकारी षडयन्त्र था जनता को निःशक्त और लुञ्ज-पुञ्ज बनाने के लिये ! 'अकाल-अकाल' का शोर मचा, दुनिया की आँखों में धूल झोंक धूर्तों ने जनता को दोनों हाथों से लूटा।

"उन्हीं डाक्टरों से मुझे मालूम हुआ कि गाँवों की जीवन-धारायें अन्न की खोज में शहरों की ओर तेजी से बही जा रही हैं। कलकत्ते की चमचमाती हुई सड़कों पर गाँवों के विपन्न, जर्जर, नंगे, भूखे इनसान काले-काले बदनुमा धब्बों की तरह लाखों की संख्या में रेंग रहे हैं अपनी अँगुलियों-जैसी पतली-पतली बाहों को उठाये दो मुट्ठी अन्न के लिये। अट्टालिकाओं में चैन की नींद सोने वाले बाबू समाज की इन बहती हुई सड़ी धाराओं की बदबू से परेशान हो रहे हैं, नाक-भौंह सिकोड़ रहे हैं। उन्हें डर है कि कहीं समाज की इस कोढ़ की छूत उनके सुन्दर अंगों में भी न लग जाय !

"कलकत्ते में मानव-जीवन का जो वीभत्स रूप मुझे देखने को मिला, उसका वर्णन शब्दों में करना असम्भव है। सड़कों के दोनों ओर लक्ष्मीपतियों की स्वर्गपुरी, और उसके चरणों में, सड़कों पर भूख की दारुण पीड़ा से छटपटाते हुये इन्सानों की दुखी दुनिया, जैसे धन-धारा के चरणों में बहती हुई दरिद्रता की धारा हो, जैसे पीने के पानी के मोटे पाइप के नीचे मोरियों का पानी बह रहा हो ! पीने वाला पानी सुरक्षित था उन लोगों के लिये, जो उसके अधिकारी थे। और गंदा पानी मोरियों के ऊपर फैल कर चारों ओर बदबू फैला रहा था। डर था कि कहीं वह पीने वाले पानी को भी गंदा न कर दे !

"काली के विशाल मन्दिर की बाहरी सहन में पहले भिखारियों की भीड़ रहती थी। आज वहाँ मरे, अधमरे, कराहते, चीखते क्षुधा-पीड़ितों की भीड़ थी। भोलेभाले गाँव के मरभूखे किसान और मज़दूर

काली माता को अपनी कमज़ोर आवाज़ों से पुकार रहे थे। पत्थर की की मूर्ति पर उन पुकारों का कोई प्रभाव पड़ता हो या नहीं, पर काली के भक्तों के कानों के पर्दे फटे जा रहे थे। जब कोई भक्त काली की पूजा करने उधर से गुजरता, तो अनगिनत नंगे-भूखे इन्सान उसे चारों ओर से घेरकर 'भूख-भूख' का शोर मचाते। पर उनकी उन तड़पती हुई पुकारों, उन मैली बहती हुई आँखों की भूखी नज़रों, सिकुड़ी हुई चमड़ियों में मढ़े हुये हड्डियों के ढाँचों के कम्पनों को देख न तो उसके त्रिपुण्ड-लसित भाल पर एक भी सिकुड़न पड़ती, न उसके सामने खड़ी काली की खिंची हुई भौंहों में एक भी लचक होती, और न उसकी ख़ून में तर लम्बी बाहर को निकली जिह्वा ही एक बार भी काँपती। वह भक्त माता की ओर देखकर उनसे कहता—'तुम भूखे हो, पर माता भी तो भूखी है! मैं उसे प्रसाद चढ़ाने आया हूँ, तुम्हें नहीं! पत्थर की माँ को प्रसादों से तृप्त करने वाला इन्सान जीती-जागती माताओं को ठोकरें लगाता मन्दिर में घुस जाता!

"उन्हीं मर-भूखों की भीड़ में गन्दगियों से घिरा हुआ एक मरणासन्न युवक एक कोने में पड़ा हुआ कराह रहा था। उसके काले शरीर की सिकुड़ी हुई चमड़ी पर मक्खियाँ भनभना रही थीं। उसमें उन्हें हाँकने की भी शक्ति न थी। उसकी आँखें पथराई हुई थीं। पुतलियाँ स्थिर हो गई थीं। दोनों कोनों में मोटे-मोटे आँसू यों ही बहे जा रहे थे। ओठों के झुके हुये कोने से लार का तार बँधा था। दाढ़ी-मूछों के बाल बेढंगे तौर पर बढ़े हुये थे। गालों की हड्डियाँ नुकीली हो ऊपर उठ आई थीं। रह-रहकर उसे हिचकी आ रही थी। जब हिचकी आती, तो उसका शरीर काँप जाता।

"उसे देखकर मेरा रोम-रोम काँप उठा। मेरी आत्मा चीत्कार कर उठी। उसके पास जा, झुककर मैंने उसका हाथ पकड़ा, तो एक सूखी

टहनी की तरह वह उठ गया, और उसके शरीर में किसी प्रकार की हरकत न हुई, जैसे हाथ का उसके शरीर से कोई सम्बन्ध ही न रह गया हो। धँसे हुये पेट में साँस रह-रहकर धुक-सी कर जाती। बस, यही जीवन का लक्षण शेष था उसमे। मैंने दोनो हाथ उसके कन्धो में लगाकर उसे उठाया, और पास की धर्मशाला मे, जहाँ मै ठहरा था, उसे ले आया।

"दो दिन के उपचार और सेवा-सुश्रुषा के बाद उसने आँखे खोलीं। उसकी झलकती हुई गड्ढो मे धँसी आँखो से आश्चर्य-चकित निकलती हुई नज़रें बता रही थीं कि सहसा कुछ अनहोनी-सी घटना घट गई है उसके जीवन मे। चारो ओर आँखे घुमा उसने मुझ पर टिका दीं। उन आँखो मे एक प्रश्न था—कौन हो तुम? क्यो तुमने मुझे मृत्यु की अँधेरी घाटी से निकाल प्रकाशपूर्ण जीवन के पर्वत पर ला खड़ा किया?

"मेरे मुँह से कुछ निकलने वाला ही था कि उसकी आँखे मारे गुस्से के काँप गईं। उसने होंठ बिचकाते हुये, जैसे नफ़रत से भरकर, मुँह फेर सिर को चारपाई की पाटी पर पटक दिया।

"क्षण भर को मै विचलित-सा हो उठा। मैने सोचा था कि जब वह अपने जीवन-दाता को अपने सामने देखेगा, तो उसकी आँखों में कृतज्ञता भर जायगी। पर मुझे देखने को मिला उसमें गुस्सा, नफ़रत और स्वय अपने जीवन के प्रति भयंकर क्षोभ। दो दिन पहले का मृत्यु के द्वार पर स्थिर पड़ा हुआ साधारण मानव आज सहसा जीवन की तरह जटिल हो एक जिज्ञासा की वस्तु बन गया। मैंने उसके सिरहाने बैठ, उसके सिर को अपनी गोद में ले देखा, ललाट पर पाटी की चोट से हड्डी के ऊपर का चमड़ा छिल गया था। वहाँ से खून

के बदले पानी की तरह एक पदार्थ बह रहा था। उसकी बन्द आँखों के कोनों से जमे हुये आँसू निकलने का व्यर्थ प्रयास कर रहे थे।

"उसके जख्म को पानी से धो, मैंने हाथ में पट्टी ले ऊपर बाँधना चाहा कि उसने अपने हाथ में मेरी कलाई पकड़ ली, और अपनी डबडबाई आँखे खोलकर बोला—'यह क्या कर रहे हो तुम ?'

" 'तुमने अपना सिर पाटी पर पटक दिया। ललाट पर चोट ···!'

" 'चोट !' एक विकृत, कमज़ोर हँसी हँसकर वह बीच ही में बोल पड़ा—'इस मामूली चोट पर इतनी अनुकम्पा ! काश, मेरे दिल की बड़ी चोट का तुमको पता होता तो तुम मुझे मृत्यु की सुखकर गोद में छीनकर जीवन की दलदल में ला पटकने की दया न करते !'

" 'दिल की चोट !' मेरे मुँह से सहसा निकल गया।

" 'हाँ, दिल की चोट ! वह चोट, जो एक पापी के दिल को पश्चात्ताप के फौलादी पंजे बन नोच लेती है ! मै पापी हूँ, महापापी ! मेरा दिल उस चोट से नुच गया है। मुझे कोई नही बचा सकता ! मै खुद बचना नही चाहता ! देखो, देखो, मेरा पाप लपटे बन मेरी आँखो के सामने सहस्रमुखी हो लपलपा रहा है। ये लपटे वही तो है, जिनमे बंगाल की एक अन्नपूर्णा जलकर राख हो गई ! मै भी इन्ही लपटो मे जलकर राख हो जाऊँगा !' कहते-कहते उसका स्वर काँपकर कुण्ठित हो गया।

"मुझे आश्चर्य हो रहा था कि बोलने की इतनी शक्ति कहाँ से आ गई उसमे। उसे किसी भी प्रकार छेड़ना ख़तरनाक समझ मै चुप ही रहा।

"थोड़ी देर बाद···अपने ही आप वह फिर बोला—'मेरा गला सूख रहा है। मुझे थोड़ा पानी दो। मरने के पहले मुझे कुछ कहना है। मेरी बातों को तुम सूरज की किरणो की तरह देश के कोने-कोने मे

फैला देना ! सम्भव है उसके प्रकाश से मुझ-जैसे अन्धो की आँखे खुल जायँ, और देश की अन्नपूर्णाओ के बलिदान रुक जायँ !'

"मैने 'रिस्टोरेटिव' दवा पानी मे मिलाकर उसे दी। पीकर उसने आँखे मूँद लीं। उसके चेहरे की झुर्रियो में कितने ही बल पड़ गये। फिर जैसे अतीत के अन्धकार मे टटोल कर स्मृतियों की धुँधली किरणो को पकड़ता हुआ बोला—'दामोदर के तट पर तीरगाँछी गाँव के आसमान पर एक बार एक ऐसी तारिका चमकी कि उसकी चमक को देखकर गाँव के नवयुवको की आँखे चौधियाँ गईं। वह तारिका अन्नदा थी, अपने विधुर, गरीब बाप की एकलौती कन्या। उसकी बड़ी-बड़ी गुलाबी आँखो मे वह जादू था जो हर देखने वाले नवयुवक को एक ऐसे पाप की ओर खीचता, जिससे बढ़कर दुनिया मे कोई पुण्य ही दिखाई न देता। चलती तो ज़मीन पर पाँव के चिन्ह तक न पड़ते। उसके नन्हे-नन्हे पाँव सफेद कबूतरों से फुदकते मालूम पड़ते। और तलवे ऐसे थे, जैसे वह गुलाब की पँखुरियो के ढेर उनसे कुचल कर आ रही हो। जिस ओर वह अपनी लम्बी, सीप-सी, बोझिल पलके उठा देती, नौजवानो की दुनिया मे भूकम्प-सा आ जाता। उनके दिलों मे बर्छियाँ चुभ जातीं। वे कलेजा थाम कर "आह-आह" करने लगते।

" 'हर नवयुवक अपने दिल की अँधेरी बस्ती में उस तारिका के प्रकाश से उँजेला करने के मनसूबे गाँठ रहा था। अन्नदा इतनी भोली थी कि जो भी उसके सामने आ जाता, उसे देखकर वह मुस्करा देती। उसकी यही मुस्कान नवयुवको में द्वन्द का कारण बन जाती। हर युवक यही सोचता कि अन्नदा उसे चाहती है। यही बात जब एक युवक दूसरे से कहता, तो दूसरा युवक उसे ललकार देता। देखते-

ही-देखते दो मनचले आपस में गुँथ जाते। किसी का सिर टूटता, तो किसी का टखना उतर जाता।

" 'एक शाम की बात है। अन्नदा गाँव के तालाब पर घड़े में पानी भर रही थी। कमर पर पानी भरा घड़ा उठाकर जब वह चली, तो पास के नारियल के वृक्षों के झुण्ड के पीछे से निकल कर नन्दन उसे सुनाकर बंगला का एक लोक-गीत गाने लगा। उसका मतलब था—

'ऐ गोरी!

इतना बड़ा घड़ा न उठाया कर!<br>
तेरी पतली कमर लचक जायगी,<br>
ऐ गोरी!'

" 'गीत सुनकर अन्नदा अपने स्वभाव के अनुसार उसकी ओर देखकर मुस्करा दी। नन्दन को जैसे उसके गीत का पुरस्कार मिल गया। वह आगे बढ़कर अन्नदा की राह रोक खड़ा हो गया। अन्नदा ठिठक कर चारो ओर आँखे फाड़-फाड़कर लगी देखने।

' "अन्नदा!" बोला नन्दन पलकें मलकाते ऐसे स्वर में, जैसे उसके गले से बोल ही न फूट रहा हो।

" 'सहमी हुई हिरनी की तरह आँखें नचाकर देखा एक बार अन्नदा ने उसे। फिर बदन चुराकर, सिकुड़ी-सी चाहा उसने निकल जाना नन्दन की बगल से कि नन्दन ने पकड़ लिया उसका हाथ। अन्नदा की साँस फूल गई। उसने दाँत पीसते एक झटका दे छुड़ा लिया अपना हाथ। फिर बोली आँखे तरेर कर—"अब की जो हाथ लगाया, तो तोड़ दूँगी तुम्हारे हाथ!'

" 'नन्दन ने देखे उसके नन्हें-मुन्ने, नाजुक हाथ। फिर अपने पुष्ट, और सख्त हाथो को देखता मुस्करा उठा स्वभावतः उस के भोले-

पन पर। उसकी वह मुस्कान व्यंग्य की ज़हर-सी भीन गई अन्नदा की रग-रग मे। पास पड़े कंकड़ को पैर की उँगलियो से उठा, हाथ मे ले, फेक मारा ज़ोर से नन्दन को। एक हाथ ललाठ की चोट पर रखकर नन्दन ने झुककर उठा लिया वह कंकड़, जैसे उठा रहा हो वह कोई फूल। बिफरती हुई अन्नदा ने देखा, ललाट से ख़ून की धार निकल कर एक मोटी लाल रेखा खीचती बही जा रही थी नन्दन के कुर्ते पर। गुस्से में ज़ोरो में हाँफती हुई चली गई वह।

" 'ललाट से हाथ हटाकर देखा नन्दन ने ख़ून का रंग। फिर देखा जाती हुई आग की पुतली अन्नदा को। उसे लगा, जैसे सौन्दर्य और यौवन की बस्ती मे एक दिलकश ज्वालामुखी फूट पड़ा हो। मुस्करा उठी उसकी आँखे उस युवक की आँखो की तरह, जो आग के खेल को जीवन का खेल समझता है। उसने कंकड़ को उन्हीं मुस्कराती आँखो से एक बार देख कुर्ते की जेब रख लिया। तभी पीछे की झाड़ी मे खड़खड़ाहट हुई। फिर सुनाई दी ज़ोर की खिलखिलाहट। मुड़कर देखा, तो आँखो में प्रतिद्वन्द्विता का रंग भरे हँस रहा था मधु व्यंग्य की कड़वी हँसी। आग लग गई नन्दन के तन-बदन में। आँखों से शोले बरसाता लपका वह मधु की ओर।

" 'हूँ! चले थे प्रेम जताने हज़रत! मुँह देखा है अपना आईने में? अब जाइये, चोट को सहलाइये, और कंकड़ को होंठो से लगा बुझाइये अपनी मुहब्बत की प्यास! फिर कभी···" बात पूरी भी न हो पाई थी कि नन्दन ने दाँत पीसते हुये वह घूँसा मधु के मुँह पर मारा कि उसका जबड़ा झूल गया। बेचारा मुँह थामे 'आह-आह' करता बैठ गया वही। थूक दिया नन्दन ने उसके मुँह पर, और चल दिया नफ़रत की नज़र से उसे देख अपनी राह।

" 'इस घटना की ख़बर जब गाँव में फैली, तो जितने नवयुवक अन्नदा के प्रति अपने हृदय मे प्रेम पाले हुये थे उसी तरह दुबक गये, जैसे शेर की दहाड़ सुन जगल के जानवर दुबक जाते हैं। लेकिन मधु ? मधु तो जैसे घायल शेर हो रहा था। प्रतिद्वन्द्विता की जो आग उसके दिल मे जल उठी थी, वह दिन-पर-दिन लहकती ही गई। वह गॉव का युवक जर्मादार था। अपने नाना के मामूली तरके पर गुजर करने वाले नन्दन का इतना साहस कि वह ललकारे मधु को! शरीर कमज़ोर हुआ तो क्या ? धन-बल तो है उसके पास। तोड़ेगा वह नन्दन की इस्पाती गर्दन चाँदी के हथौड़े से !

" 'अन्नदा के बाप ने जब यह सुनी, तो वह होठो मे ही मुस्कराया, जैसे मिल गई हो उसे कोई चिर-इच्छित वस्तु। घर मे जा अन्नदा को पुकार वह एक अन्वेषक दृष्टि से उसे देखता बोल पड़ा—"क्यो, अन्नदा, सच है यह कि तुझे राह मे मधु ने छेड़ा, और उसे नन्दन ने वह घूँसा मारा कि उसका जबड़ा झूल गया ?"

" 'क्या सुन रही है अन्नदा ? छेड़ता तो रहता है मधु हमेशा लेकिन उस दिन तो ऐसा नहीं हुआ कुछ। छेड़ा था उस दिन नन्दन ने ही उसे। फिर यह कैसी ख़बर फैल गई गॉव मे ? सोच ही रही थी वह कि कह उठा उसका बाप—"नन्दन बड़ा भला लड़का है, अन्नदा ! अगर वह मौके पर न होता, तो ?"

" 'उँह। बड़ा भला लड़का है नन्दन ! लफंगा, बदमाश ! न जाने कैसे-कैसे भद्दे गीत गाता है वह उसे देख कर। और उस दिन तो उसने उसका हाथ भी पकड़ लिया था। बदमाश, लफंगा ! काली माई अगर उसके हाथो मे बल दे देती, तो तोड़ देती वह उसके हाथ, हाँ, तोड़ देती उसके हाथ ! जी में तो आया कि कह दे वह सब कुछ कि बोल पड़ा उसका बाप— 'मुझे तो जँच गया है वह। मेरे बाद

वह तेरी रक्षा कर सकेगा। कह तो मै जाऊँ उसके नाना के यहाँ आज ."

" 'ह ! यह क्या कह रहे है बापू ! वह व्याह करेगी नन्दन से ? उस लफंगे, मुसण्डे से ? नही, नही ! अकचका कर आँखे उठाईं उसने बापू पर। मुस्कराते हुये, सिर हिलाते हुये हट गया उसका बाप। ··

" 'उस दिन अपनी टूटी कलाई पर रेशमी रूमाल लपेटे लौट आया बंगा। मधु ने उत्सुक हो पूछा उससे– "क्यो, तोड़ आये न गर्दन नन्दन की ?"

" 'बगा ने झूलती कलाई ऊपर उठा सिर झुका दिया। लौट आया था चाँदी का तीर इस्पात से टकरा, अपनी नोक गोठिल कर।

" 'गुस्से से भर गया मधु। दुतकार दिया उसने बंगा को कुत्ते की तरह। चाँदी का दास चला गया कुत्ते की तरह पूँछ दुबकाये। और चाँदी का मालिक घूरता रहा उसे शिकारी की तरह।

" 'अब क्या करे मधु ? हार-पर-हार खा रहा है वह। धन कुछ काम नही आ रहा है उसका। ज़द पर नही बैठ रहा है निशाना। फिर ? सोचता रहा मधु। याद आई उसे बचपन की सुनी एक कहानी। एक था दैत्य। उसके पास था एक हीरामन सुग्गा। हिरामन सुग्गे मे बसती थी जान दैत्य की। सामने से लड़ने की हिम्मत नही थी किसी मे उससे। एक राजकुमार को मालूम हो गया एक दिन उसके जीवन का रहस्य। पकड़ लिया उसने हीरामन सुग्गा। तड़प-तड़प कर बेजान हो गया बेचारा दैत्य। मधु भी पकड़ लेगा नन्दन का हीरामन सुग्गा। तड़प-तड़प कर मर जायगा नन्दन। चुटकी बजाकर हँस पड़ा मधु। नन्दन के जीवन का रहस्य जो मालूम हो गया उसको !···

" 'मुस्कराता हुआ गया था अन्नदा का बाप नन्दन के नाना के यहाँ। शाम को लौट आया वह हँसता हुआ। आते ही बोला बेटी

स—"अन्नदा, आज भोजन ज़रा अच्छा बनाना। नानी आयेगी नन्दन की।"

" 'नानी आयेगी नन्दन की! क्या मतलब इसका? कहीं बापू··· अकचका कर बोली वह—"क्या करने आयेगी वह?" फिर लगी पैर के अँगूठे से धरती कुरेदने सिर झुका कर।

" 'बाप अपनी आँखों की मुस्कराहट छिपाकर बोला—"आयेगी तेरे हाथ का बनाया भोजन करने, और लायेगी तेरे लिये मिठाइयाँ। ले, यह पैसे! जल्दी खरीद ला सामान। बहुत थक गया हूँ मैं।" जेब से पैसे निकाल देने लगा वह।

" 'अच्छा, तो बात यहाँ तक पहुँच गई! अब, अब क्या होगा? क्यो नहीं कह दिया उसने पहले ही कि नहीं ब्याह करेगी वह उस लफंगे से? कैसे-कैसे भद्दे-भद्दे गीत गाता है वह उसे देखकर। उँह! न जाने कैसा मन हो गया अन्नदा का। खड़ी रही वह वैसे ही।

" 'शर्मा रही है अन्नदा। हँसकर बोला बाप—"अरे, क्यों नहीं लेती ये पैसे? और कोई है यहाँ कुछ करने वाला? ले, जल्दी कर!"

" 'अब चुप नहीं रहेगी अन्नदा। बिना बोले काम नही चलने का अब। हृदय का सारा साहस बटोर कर बोल पड़ी वह—"बापू, वह··नन्दन लफंगा है। मुझे देखकर भद्दे-भद्दे गीत गाता है। एक दिन···"

" 'हो-हो कर ज़ोर से हँस पड़ा बाप। आगे नहीं कुछ कह सकी अन्नदा। झुँझलाहट-सी हो गई उसे। पैर पटक कर मुड़ी हट जाने को वहाँ से कि घूमकर सामने खड़ा हो गया बाप। बोला हंसकर ही—"पगली! बस इतनी-सी बात से चिढ़ी है तू! नेक है नन्दन। मैं जानता हूँ उसे। भला बता न तू ही कि वह गाता है भद्दे-भद्दे गीत

और किसी लड़की को सुनाकर ? तुझे चिढ़ाता है वह, बात जो नहीं करती तू उससे ।" कहकर दे दिये उसने पैसे अन्नदा की बंधी मुट्ठी खोलकर, और चला गया हुक्का-चिलम ले बाहर ।

" 'हाँ यह बात तो है । और किसी लड़की को नहीं छेड़ता वह । बापू सच कह रहा है । नेक है नन्दन । च-च ! वह नाहक ही उसे समझ बैठी थी लफंगा · पर · पर क्यों चिढ़ाता है वह ? गाँव भर में वह ही इतनी सस्ती है क्या ? अच्छा, चखायेगी वह मज़ा उसे चिढाने का । बाँस की डोलची उठा चल पड़ी वह सामान खरीदने ।

" जब अन्नदा बाज़ार पहुँची, तो मछलियाँ बिक चुकी थी । एक दो मछुओं से, जो बैठ बिक्री का हिसाब सहेज रहे थे, उसने पूछा कि शायद बचा हो कुछ उनके पास । मगर उनके पास कुछ भी शेष न था । निराश लौट पड़ी वह ।

" 'बाज़ार के एक कोने में खड़ा था नन्दन रूमाल मे बंधी मछलियाँ लटकाये । देखा उसने अन्नदा को । खाली डोलची हाथ में झुलाते लौट रही थी वह । पीछे-पीछे चल पड़ा वह उसके । जब उसके घर के पास से वह गुज़रने लगी, तो ठीक उसके पीछे जा ज़ोर से चिल्ला पड़ा—"अन्नदा !"

" 'सकपका कर ठिठक पड़ी वह । उसके सामने आ, ज़रा झुक कर बोला नन्दन—"चल, नानी बुला रही है तुझे !"

" 'दाँतो से निचला होठ चबाती, हाँफती-सी बगल से आगे बढ़ी अन्नदा कि पकड़ लिया उसका हाथ नन्दन ने ।

" 'उसकी पकड़ से अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न करती बोल पड़ी अन्नदा—"छोड़-छोड़ !"

" 'पर न छोड़ा नन्दन ने । हाथ पकड़े ही घसीटता-सा अपने घर की दालान में ला छोड़ा उसने ।

"गुस्से से भरी कलाई की टूटी चूड़ियाँ देखती फट पड़ी अन्नदा—"बदमाश ! लफंगा ! तोड़ दी मेरी चूड़ियाँ ! कितना कहकर बापू से खरीदवाया था इन्हे !"

" 'नन्दन ने देखा, अन्नदा की बरफ-सी सफेद कलाई से काँच के गड़ जाने से ख़ून बह रहा था। उसका सारा मज़ाक छू-मन्तर हो गया। उसकी कलाई की ओर हाथ बढ़ाता बोला वह—"च-च ! मैंने यह नहीं चाहा था। मुझे · " उसका हाथ उसकी कलाई पर पड़ा ही था कि झाड़ दिया अन्नदा ने "फिर ? फिर हाथ बढ़ाता है तू ?"

" 'एक ओर बैठ गया नन्दन। उसे दुःख हो रहा था कि नाहक उसने चोट पहुँचा दी अन्नदा को। अब वह उससे सन्धि-वार्ता करना चाहता था। यो ही सामने अपने बूढ़े बैलो को देखता अपने ही से बोला वह—"इन डाँगरो को लेकर खेत पर जाने को तो जी नहीं चाहता। बहुत दिनो से लालसा लगी है एक जोड़ी उम्दा बैल खरीदने की। पाँच सौ रुपये जमा किये हैं मैंने बड़ी मुश्किल से, बड़ी मुश्किल से। धान भी आया है अब की ख़ूब। अगली फसल तक खरीद लूँगा बैलो की जोड़ी। फिर बराबर कन्धे वाले उम्दा बैलो की जोड़ी अपनी गर्दनो की घंटियाँ 'टुन-टुन' बजाती, झूमती हुई चलेगी, 'और उसके पीछे मै चलूँगा कन्धे पर हल लिये, मूछो पर ताव देते।" भीगी हुई मसो पर यो ही हाथ फेरता देखा नन्दन ने अन्नदा की ओर।

" 'नन्दन की ये बाते अन्नदा को बिलकुल बेमतलब-सी लग रही थी। देखना तक नही चाहती थी वह उसकी ओर। उससे अपना पिंड छुड़ाने के लिये ही बोली वह—कहाँ है नानी ?"

" 'हँसता हुआ बोला वह—"नानी गई है चूहे पकड़ने !" सोचा था कि हँस पड़ेगी अन्नदा उसकी परिहास की बात सुन। पर नहीं हँसी वह। बैठी रही वैसे ही जली-भुनी।

" 'उठकर मछली की पोटली उसकी ओर बढ़ाते बोला नन्दन—"अच्छा, ले ये मछलियाँ, और जा तू अपने घर।"

" ' भरी-भरी तो बैठी ही थी अन्नदा। मछलियों की पोटली ले दे मारी नन्दन के मुँह पर।

" ' "अन्नदा!" चीख-सा पड़ा नन्दन। पर न जाने क्यों चुप हो गया वह। झुककर लगा मछलियाँ बीनने मुस्कराता हुआ एक रहस्य भरी मुस्कान।

" 'हाँफती ही उठ पड़ी अन्नदा। "तुम्हें खूब पहचानती हूँ मैं! हर काम में छिपी रहती है तुम्हारी शरारत!" कहकर बाहर हो गई वह। पुकारता रहा नन्दन अपनी सफाई देने को—"अन्नदा! अन्नदा" पर नहीं सुना अन्नदा ने।

" 'करीब आध घंटे बाद वह और सामान ले घर पहुँची, तो देखा रसोई में रखी थीं धुली मछलियाँ। अकचका कर दौड़ी वह बाप से पूछने। टकरा गई वह दरवाज़े पर हुक्का लिये खड़े बाप से। हँस पड़ा वह। "अरे यों उतावली हो कहाँ भागी जा रही है तू?"

" ' छूटते ही बोल पड़ी वह—"कौन लाया यह मछलियाँ?"

" 'तनिक मुस्कराता बोला बाप—"क्यों? तू ने ही तो भेजवा दिया था नन्दन से। कहता था, अन्नदा और सामान खरीदने चली गई, मुझसे भेजवा दीं मछलियाँ।"

" 'दोनों गाल फुलाकर नाक से कह पड़ी अन्नदा—"हूँ!" और घुस गई फिर रसोई में।

" 'मन-ही-मन खुश होता बाप घर के बाहर आया, तो देखा, बंगा खड़ा है द्वार पर कन्धे पर लट्ठ लिये। उसे देखते ही जैसे हृदय की सारी ख़ुशी घुटने-सी लगी।

" 'कन्धे से लट्ठ उतार धप से ज़मीन पर पटक बोला बंगा—"सरकार ने बुलाया है तुम्हें !"

" 'सहमा हुआ बोला बाप—"अच्छा, जा कह दे, मै कल सुबह ही आ जाऊँगा।"

" 'अपनी दृष्टि कठोर करता बोला बगा—"उहुँ ! अभी बुलाया है सरकार ने।"

" 'अभी बुलाया है सरकार ने ! काँप उठा बाप। पिछले हफ्ते ही तो मिला था वह सरकार से। मालूम होता है नहीं मानी बात उन्होंने उसकी। परेशान करेंगे वह। आशंका प्रबल हो उठी उसकी। बोला वह असयत स्वर मे ही—"अच्छा, अच्छा, मै अभी आता हूँ।"

" 'नज़रें टेढ़ी कर बोला बंगा—" अभी आता हूँ, नहीं ! चलो मेरे साथ !"

" 'पर नानी जो आयेगी नन्दन की। पता नही कितनी देर लगेगी वहाँ। फिर ? फिर ? नहीं है कोई चारा। जाना ही होगा उसे। मुँह लटकाये ही अन्दर जा मरी-सी आवाज़ में बोला वह अन्नदा से—"मै जा रहा हूँ जरा मधु बाबू के यहाँ। बुलाया है उन्होंने। देखना, नन्दन की नानी की ख़ातिर मे कोई कमी न हो।" कहकर गर्दन डाले ही बाहर हो गया।

" 'ख़ौफ़ छा गया अन्नदा की आँखों मे। जानती हैं वह सब। माँ के मर जाने से दिल टूट गया बापू का। दो साल तक कुछ नहीं किया उसने। कर्ज़ लद गया उसके सिर पर। लगान अदा न हो सकी खेतो की। धीरे-धीरे अन्नदा की ही खातिर, टूटा दिल लिये ही, वह बिखरी गृहस्थी संभालने लगा। खेतो मे जो पैदा होती, आधी से अधिक पैदावार ले लेता ज़मींदार सूद के ही मद्दे। जो बच जाता उसी में किसी तरह कतर-ब्योंत कर गुज़र होता उनका। कर्जे और लगान

के रुपये अब भी छाती पर कभी न हटने वाले बोझ की तरह पड़े हैं। अब नहीं मानता जमींदार। उस दिन बुलाया था उसने बापू को। ग़रीबी, दुख, दर्द, गिड़गिड़ाहट, मिन्नत कुछ माने नहीं रखते उसके लिये। 'काली माँ, कैसे मुक्ति मिलेगी इस आफत से?' अपने हृदय की व्यथा से उद्वेलित हो कराह उठी अन्नदा। आँसू उबल आये उसकी आँखो मे।···

" 'सुबह जब अन्नदा जागी, तो देखा, बापू मन मारे बैठा था घर के चबूतरे पर। हुक्का लुढ़क पड़ा था। चिलम की राख बिखरी पड़ी थी। किसी गहरी चिन्ता मे डूबा था वह। शरीर पर मक्खियाँ बैठ रही थीं। उन्हे उड़ाने की सुधि नहीं थी उसे! दुख से कातर हो उठी अन्नदा बापू का वह हृदय विदारक रूप देख कर। काँपते हुये हाथो से उसने हुक्का उठा दीवार के सहारे खड़ा कर दिया। चिलम उठाती बोली वह—"बापू!"

" 'बापू ने झटके से सिर उठाया, जैसे पानी के अन्दर से कोई डूबता व्यक्ति अपना सिर उठाये। देखा, सामने खड़ी है उसकी लक्ष्मी-सी बिटिया। याद हो आईं उसे रात वाली मधु की बातें। काँप गया वह। काँपते ही उठकर अपने काँपते हुये हाथो को सामने कर, शून्य मे निर्जीव-सा देखता अन्नदा के बालो पर हाथ फेरा। फिर डगमगाते पैरो को आगे बढ़ाता काँपती हुई आवाज़ में बोला—"मै···जरा···जा रहा हूँ बाहर। जमींदार के रुपयो का आज ही इन्तजाम करना है। नहीं तो···" कहकर वह लड़खड़ाता ही चल पड़ा। खड़ी-खड़ी, पत्थर की मूर्ति-सी देखती रही अन्नदा। उसकी सफेद पड़ी शून्य आँखों से बहती रही अश्रु-धारा।···

" 'दोपहर को हारा थका लौटा बाप। उसका स्याह पड़ा उदास चेहरा, झुकी हुई पलकें, ललाट पर करवटें लेती हुई झुर्रियाँ देखकर

ही अन्नदा समझ गई कि काम नही बना। कसक उठा उसका हृदय। देख न सकी वह बाप को उस रूप में। आँचल के कोने को मुँह में घुसेड़ आती हुई ज़ोर की रुलाई को रोक उसने पीढ़ी डाल दी बाप के सामने, और लाकर रख दिया लोटे का पानी। कटे पेड़ की तरह धम से गिर पड़ा बाप। चीख-सी निकल गई अन्नदा के मुँह से। उसने सहारा दे बाप को उठाया, और उसे लाकर खटोले पर लेटा दिया। ललाट पर हाथ रखा। तेज़ बुखार मे तप रहा था। अन्नदा की आँखो मे दहशत की परछाइयाँ तैर गईं।

सामने से काली घटा झूमकर उठी, और आकाश पर छा गई। अन्नदा ने एक बार अपनी बेबस, डबडबाई हुई आखे ऊपर उठाईं और चल पड़ी काली माँ के मन्दिर की ओर।

" 'छर्-छर्' बरस पड़े बादल। पानी से लथ-पथ कपड़ो को फड़फड़ाती भागी जा रही थी अन्नदा।

" 'मन्दिर के द्वार खुले थे। अन्दर जा गिर पड़ी अन्नदा काली माता के चरणों पर विक्षिप्त-सी। फड़फड़ा रहे थे उसके होठ। बरस रही थी आँखे। माँ के दोनो चरणो को छाती से चिपका दुख-विह्वल, कातर स्वर में फूट पड़ी वह—"माँ! बचा ले बापू को! टाल दे यह संकट!" न जाने कितनी देर तक रो-रोकर, गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ा कर कहती रही वह ये दो वाक्य। फिर सिसक-सिसक कर रोती रही न जाने कब तक खोई-खोई-सी।

'पैर के खड़ाऊँ चट-चट बजाता, हाथ में पोटली लटकाये जब पुजारी मन्दिर-द्वार पर पहुँचा, तो एक स्त्री को माँ के चरणों में पड़ी देख ठिठक गया। स्नेह-सिक्त स्वर मे बोला वह—"तू कौन है, बेटी?"

" 'अन्नदा ने माँ के चरणों को दोनों हाथों से पकड़े ही सिर घुमाया। उसके आँसुओं से भीगे चेहरे को अपनी सिकुड़ी हुई आँखों से देखता बोल पड़ा पुजारी—"अरे, अन्नदा, तू है बेटी! तू कब से यहाँ है? रो क्यों रही है? ओह, समझा!" एक दृष्टि काली की मूर्ति पर डालकर वह फिर बोला—"उठ, बेटी! तेरी प्रार्थना काली माँ ने सुन ली! तेरे बाप का संकट टल गया!"

" 'संकट टल गया! लगा अन्नदा को, जैसे सहसा बादल फट गये हों और उसकी आँखों के सामने चमकीली धूप फैल गई हो, जैसे जादू के बल से किसी ने उसे काँटों के अम्बार से उठाकर फूलों की सेज पर बैठा दिया हो। वह मारे खुशी के बावली-सी हो, उठकर पुजारी के चरणों पर गिर पड़ी।

" 'झुककर एक हाथ से उसके कन्धे को पकड़ कर उसे पुजारी ने उठाया। हर्ष छलका आ रहा था उसकी आँखों में। रोम रोम फड़क रहे थे खुशी में। सिर का आँचल ठीक करती नाचती आँखों से देखा उसने पुजारी को। फिर बोली— 'पुजारी चाचा!"

" 'बोला पुजारी—"बेटी, मैं मधु बाबू के यहाँ माँ के लिये सन्ध्या की भोग-सामग्री लेने गया था। मेरे ही सामने नन्दन के नाना ने गिन दिये चार सौ पच्चीस रुपये तेरे बाप के नाम पर।"

" 'नन्दन के नाना ने गिन दिये रुपये! ओह, नन्दन!...

" 'काली माँ के चरणों से कुछ फूल उठाकर पुजारी ने अन्नदा को देते हुये कहा—"अच्छा, ले, यह माँ का प्रसाद!"

" 'अन्नदा हाथ में फूल ले, सिर से लगाकर चल पड़ी। मस्तिष्क में गूँज रही थी पुजारी की कही हुई बात, 'नन्दन के नाना ने गिन दिये पूरे चार सौ पच्चीस!' उसे याद आई उस दिन की बात, नन्दन कह रहा

था—'पाँच सौ रुपये जमा किये हैं मैंने बड़ी मुश्किल से, बड़ी मुश्किल से ! अगली फसल तक खरीद लूँगा बैलों की जोड़ी। फिर ...' ओह ! यह क्या किया नन्दन ने ? अपनी कितने दिनों की लालसा पर तरजीह दी उसने हमारी जरूरत को ! बापू सच ही तो कह रहा था, 'नेक है नन्दन !' फिर मस्तिष्क में उभर आई तालाब वाली घटना। मार दिया था कंकड़ उसने उसके सिर में। ललाट से ख़ून की धारा बह चली थी उसके कुरते को भिगोती। फिर भी कुछ नहीं बोला वह। बेचारा नन्दन ! ओह, बड़ा नेक है नन्दन ! उस दिन मछलियों की पोटली दे मारी उसने उसके मुँह पर...हँसी आ गई ज़ोर से अन्नदा को। विचारों का तार टूटा, तो देखा, अपने घर का रास्ता छोड़ आ गई है वह नन्दन के घर के सामने। अब ? क्या वह यहाँ तक आकर नेक नन्दन से, अपने नन्दन से मिले बिना जा सकती है ? उँहूँ ! पैर जो बढ़े जा रहे हैं अपने ही आप उसके घर की ओर। तो क्यों न मिल ले वह उससे। कह देगी नानी ने बुलाया था उसे।

" 'दरवाज़े पर जा झिझकती हुई बोली वह—"नानी !"

" 'दरवाज़ा खोल नन्दन ने अन्नदा को देखा। आँखों से ख़ुशी बरसाता बोला वह—"ओह ! तुम ! कैसे रास्ता भूल गईं ?"

" 'अन्नदा की आँखें टिक गईं नन्दन के चिकने, चमकीले ललाट पर। चोट का निशान चमक रहा था वहाँ दूज की चाँद की तरह। दालान में जा आँखें मलकाती बोली वह—"नानी ने मुझे बुलाया था।"

" 'आँखें फैला, सटे हुये होंठों को अन्दर मोड़, सिर हिलाकर बोला नन्दन—"नानी तो तेरे यहाँ ही गई हैं। बापू की तबियत ख़राब है न !"

" 'पकड़ी गई अन्नदा। अब क्या करे वह? सिर झुकाकर, मुस्कराती हुई तिरछी नज़र से एक बार नन्दन की ओर देखकर बोली वह—"अच्छा, तो फिर मै जाती हूँ।" कहकर मुड़ी वह दरवाज़े की ओर।

" 'द्वार पर आ खड़ा हुआ नन्दन। दोनों हाथो को फैला दरवाज़ा रोककर, बनकर बोला वह—"आज फिर शरारत सूझ रही है मुझे!" कहकर उसने हाथ बढ़ा दिया अन्नदा के हाथ की ओर। ले लिया अन्नदा ने उसका हाथ अपने हाथ में सिकुड़ती हुई। और अपने हाथ का फूल उसके हाथ में छोड़, शरीर चुराती-सी एक ओर से बाहर हो गई। नन्दन द्वार पर खड़े बार-बार चूम रहा था उन फूलो को, और देख रहा था कि जाती हुई अन्नदा के पैर धरती पर नही पड़ रहे थे। कहीं गिर न पड़े वह।

" 'ओह! थोड़ा और··पानी···दो! फिर · मेरे···गले···मे··· शब्द अटक ··रहे · है!'

मैने फिर रेस्टोरेटिव मिला उसे पानी दिया। पानी पीकर उसने एक लम्बी साँस ली। गले के तार खड़खड़ा उठे। उसने खाँसकर गला साफ़ किया। फिर बोला—'हीरामन सुग्गे के घोसले की ओर हाथ बढ़ाया ही था मधु ने कि उड़ गया वह। आ बैठा वह राक्षस के दिल के खुले पिंजड़े में। बन्द कर दिया द्वार राक्षस ने सदा के लिये। अब गाता रहता है रात-दिन पिंजड़े का पंछी प्रेम के गीत। मगन हो-हो झूम उठता है पिजड़ेवाला सुनकर वे रस-भरे गीत। किसमें साहस है कि वह पिंजड़े की ओर हाथ बढ़ाये, और पंछी को किसी तरह छेड़े?

" 'एक जोड़ की दो कड़ियाँ एक-दूसरे से गले लिपट गईं'। दो कड़ियों की जंजीर से दो कुल बँध गये हमेशा के लिये। नन्दन के परिश्रम से धान के खेतो मे हरी मुस्कान छायी रहती; और अन्नदा की सुव्यवस्था से घर में उज्ज्वल चाँदनी छिटकी रहती। आनन्द की बाँसुरी बजती रहती खेतो मे, खुशियो की रागिनी झूमती रहती घर मे। बरसता रहता चहुँओर सुख सावन की रिमझिम-सा।

"प्रेम की जल-परियो के पंखो पर बैठे समय की लहरो से किलोले करते, संसार-धारा मे हँसते-खेलते बहे जा रहे थे नन्दन और अन्नदा। नानी, नाना और बापू की आँखो के सामने जैसे चौबीसो घंटे उज्ज्वल चाँदनी मे चाँदी के हंसो का एक जोड़ा उड़ा करता। वे देख-देखकर निहाल हो जाते!

" 'सतत प्रवाहिनी गंगा एक-ब-एक सूख गईं', यह सुनकर किसी को जितना आश्चर्य होगा, उतना ही आश्चर्य हुआ यह सुनकर कि शस्य-श्यामला भूमि बंगाल मे घोर अकाल पड़ गया। भोले-भाले गाँव के किसान क्या जाने दाँव-पेंच? शहरो के मोटे-मोटे व्यापारियो के एजेएटों ने पहले ही खींच लिया था गाँवो का अनाज, और छोड़ दिया था उन्हे भूखो तड़प-तड़प कर मरने को। विपत्ति के टूटने का समय निश्चित नही, और न यही ज्ञात होता है कि वह किस दिशा से आयेगी। वह जब एक-ब-एक भहरा कर सिर पर टूट पड़ती है, तो आदमी घबरा-सा जाता है। बेचारे गाँव के किसानो की भी यही हालत हुई। एक दिन अकचका कर उन्होने देखा कि उनके बखार मे एक दाना भी नही रह गया। अगली फसल अभी खेतों में खड़ी है। थोड़े दिनो तक इधर-उधर खरीद कर काम चल जायगा उनका। यही सब समझा-बुझाकर एजेन्टो ने उनका घर मूस लिया। घर खाली हो जाने पर बेचारे किसान इधर-उधर अन्न की खोज में भटकने लगे।

एक का चार-चार, आठ-आठ देकर कुछ दिन तक उनका काम चला। उनके पास इतना रुपया तो था नहीं कि कुछ दिन के लिये अनाज खरीद कर रख लेते। आखिर एक दिन वह भी आया जब उनके पास न धन रह गया, न अन्न। छा गये आकाश पर दुर्दिन के काले-काले मेघ। लुटे हुये किसान हाय-हाय कर उठे! मच गया चारो ओर हाहाकार। भुखमरो की टोलियाँ डोलने लगी गावों में।

" 'नन्दन के खेतो की मुस्कान फीकी पड़ गई। घर की चाँदनी में दुर्दिन के धब्बे पड़ गये। आनन्द की बाँसुरी टूट गई। खुशियों की रागिनी रो उठी। दुख की घिर आईं काली-काली बदलियाँ।

" 'जल-परियो के पंख टूट गये। समय की लहरें विकराल रूप धारण कर गर्जन करने लगी। संसार-धारा क्षुब्ध हो उठी। एक दूसरे से चिपके डूबने उतराने लगे नन्दन और अन्नदा। नाना, नानी और बापू ने देखा आकाश की घनी अँधियारी मे हंसों के जोड़े के टूटे हुये पंख फड़फड़ा रहे हैं। रो उठे वे।

" 'देखा मधु ने उनकी दुर्दशा। प्रतिद्वन्द्विता की बुझती हुई आग में भड़क उठे शोले। क्रूर अट्टहास कर उठा वह। छितरा देगा अब वह अन्न के दाने। भूखा सुग्गा आ जायगा स्वयं चुगने। पकड़ लेगा वह उसे। तड़प-तड़प कर मर जायगा राक्षस।

" 'फाके पर फाके होने लगे। अन्नदा का गुलाबी चेहरा पीला पड़ने लगा। नाना, नानी और बापू भूख की मार से गिर पड़े। चलने-फिरने तक की ताक़त न रही उनमे। नन्दन ने अपनी आँखो से देखा उनकी दुर्दशा, और आह करके रह गया वह। आज उसका बस चलता, तो पाताल तोड़कर लाता वह अन्न! उड़ने न देता वह अन्नदा के गालो की लाली, तड़पने न देता वह नाना, नानी और बापू को! बार-बार वह मसलता अपनी छाती और बाहुओं को

हाथों से। आह, कितना मजबूर हो गया है वह, जैसे किसी ने उसे लाकर ऐसे रेगिस्तान में खड़ा कर दिया है, जहाँ तड़प-तड़प कर मरने के सिवा कोई चारा नहीं। दोनो हाथो से आँखो को मूँद फूट-फूटकर रो पड़ता वह।

" 'बूढ़ी हड्डियो मे कहाँ थी इतनी ताक़त कि फाको की मार बरदाश्त कर सके? तड़प-तड़पकर कुत्ते-बिल्लियो की मौत मर गये नाना, नानी और बापू। नही कर सका कुछ नन्दन। पत्थर की मूर्ति बन गया वह। अपनी कौड़ी-सी सफ़ेद, स्थिर आँखो से देखा उसने अन्नदा को। अनाथ बच्ची-सी दौड़कर चिपट गई अन्नदा उसकी छाती से। मोटे-मोटे आँसू ढरक चले उसकी आँखो से। सीने से उसे चिपकाये देखता रहा शून्य मे नन्दन अपलक आँखो से। ग़रीबी, बेबसी और मजबूरियाँ मृत्यु की परछाइयाँ बन तैर गई उसकी आँखो मे। निर्जीव-सा दीवार का सहारा लिये बैठ गया वह वही। उसकी गोद मे लुढ़की अन्नदा सिसक-सिसक कर रोती रही।

'बिगड़ी है कुछ ऐसी कि बनाये नही बनती,
इससे है ज़ाहिर कि यही हुक्मे-खुदा है!'

" 'भोले किसान! तुझे क्या मालूम कि यह भगवान का हुक्म नहीं हो सकता! यह उस इन्सान का ज़ुल्म है, जो तुझे भूखो मरता देख अपनी फूली तोंद पर सन्तोष से हाथ फेरता है, जो तेरी झोपड़ी में आग लगाकर अपने महल में आराम की नींद सोता है!

" 'भगवान् के नाम पर तू सब्र से मर सकता है, पर भगवान के नाम पर तू इस दुनिया मे सुख से जी नहीं सकता! जीने के लिये तुझे भगवान् को भूलकर दूसरों से माल छीनना होगा, दूसरो की चोरी करनी होगी, दूसरो पर डाका डालना होगा! छीनना! चोरी! डाका! हाँ! हाँ! नन्दन अभी तेरी बाँहों मे कुछ ताक़त है, तू दूसरों से छीन

सकता है ! उठ ! नहीं तो जिस तरह तेरा नाना, नानी और बापू तड़पकर बेदाना-पानी मर गये, उसी तरह तू भी मर जायगा, उसी तरह अन्नदा · "नही ! नही !" झटके से सिर मोड़ उसने सिसकती हुई अन्नदा को देखा। उसकी सफेद आँखो में ख़ून की लाली दौड़ गई। शरीर में उसने कुछ ताकत महसूस की। धीरे से अन्नदा को एक ओर सरका कर मुट्ठियाँ बाँधे उठ खड़ा हुआ।···

" 'रात का अन्धकार आकाश पर छाये काले-काले बादलो से और भी भयंकर हो रहा था। जोरो की हवा साँय-साँय करती चक्करदार गलियो मे घरो की दीवारो से टकरा रही थी। रह-रहकर बिजली कड़क कर कौंध उठती। अन्धकार जैसे भक से जलकर बुझ जाता। बेजान इन्सान और उसके बच्चे अधमरे कुत्ते, बिल्लियो की तरह पड़े-पड़े जहाँ-तहाँ कराह रहे थे। एक लम्बी छाया, जिसकी दोनो आँखे बिल्ली की आँखो की तरह अन्धकार मे चमक रही थी, इधर-उधर देखते मधु की कोठी की ओर लम्बे-लम्बे क़दम रखते बढ़ी जा रही थी।···

" 'भयभीत आँखो से सामने की कोठी की दीवार पर चढ़ती एक काली छाया को देखकर मधु धीरे से उठा। दबे पाँवो सोये हुये बंगा के पास बरामदे मे जा झुककर उसके कधे को हिलाते धीमे से सहमी हुई आवाज़ में बोला—"बंगा ! बंगा।"

" 'बंगा ने सकपका कर आँखे खोल दी। बोला मधु—"बगा, देख, सामवे दीवार पर ··"

" 'आँखे मोड़ जोर से चीखने वाला था बंगा कि मधु ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया। दबी हुई आवाज़ में बोला बंगा—"बन्दूक ! बन्दूक, सरकार !"

" 'बगल में पड़ी लट्ठ उठाते मधु बोला—"बन्दूक की ज़रूरत नहीं है। ले यह ! हाँ, जरा साधकर हाथ मारना !"

" 'लुक-छिपकर दबे पाँवों हाथ में लट्ठ सँभाले बंगा बढ़ा दीवार की ओर। देखा, एक आदमी पानी गिरने वाले मोटे पाइप पर छिपकली की तरह रेंग रहा था। साध कर उसने लट्ठ चला दिया। छाया एक बार काँपकर तड़पी, और ज़मीन पर आ रही।

" 'बंगा चिल्लाया—"सरकार ! सरकार !"

" 'हाथ की चोर बत्ती जलाकर मधु लपका। प्रकाश का गोला छाया के मुँह पर पड़ा कि झट से सिर पीछे कर चीख पड़ा वह— "नन्दन ?"

" 'लट्ठ छूटकर बंगा के हाथ से गिर पड़ा। काँपती नज़र से एक बार उसने नन्दन की ओर देखा। बेहिसब हरकत पड़ा था वह। सँभल कर उसने फिर लट्ठ उठा लिया। बढ़ा फिर मारने को वह कि एक रहस्य-भरी क्रूर हँसी हँसते बीच में आ पड़ा मधु। बोला—"बस, बस, बंगा ! आज नन्दन आया है, कल अन्नदा ··ऊँह ! जाने भी दे इसे ! यह तो खुद मरेगा। हाँ, जानता है, यह क्यों आया था ? अन्न के लिये, अन्न के लिये।" और ज़ोर से एक अट्टहास कर बोला वह फिर—"इसे अन्न चाहिये, बंगा, अन्न !" ले ले एक पसेरी चावल, और उठा ले नन्दन को कन्धे पर। पहुँचा आ इसके घर !"

" 'नहीं कुछ समझ सका बंगा। ज़मीन पर धप से लट्ठ का सिरा पटक कर बोला—'सरकार, इसी ने मेरी कलाई ··"

" 'हँसकर बोला मधु—"अरे, जाने भी दे ! और, हाँ, सुन ! अन्नदा से कहना···" बंगा के कान के पास मुँह ले जाकर कुछ बुदबुदाया मधु। होंठों में ही शरारत-भरी हँसी हँसकर हाथ से गर्दन खुजलाने लगा बंगा।

" 'नन्दन के घर के दरवाजे खुले पड़े थे। बंगा कन्धे पर नन्दन को लटकाये एक हाथ में चावल का पोटला लिये अन्दर हुआ।

दालान में किसी नरम चीज से टकरा कर गिरते-गिरते बचा। झुककर हाथ से टटोला, तो झन्न से चूड़ियाँ बज उठीं · आवाज़ आई—"आ गये, अच्छे ?"

" 'उठकर बोला बंगा कृत्रिम सहानुभूति की आवाज़ मे—' हाँ, अन्नदा; यह रहा तुम्हारा नन्दन !"

" 'आवाज़ पहचान कर बौखलाई-सी उठकर बोली अन्नदा—"बंगा ! तुम·· तुम यहाँ कैसे ? कहाँ हैं वह ?" कहकर लपकी अन्नदा बंगा की ओर।

" 'बंगा ने उसे एक हाथ से रोककर कहा—"घबराओ नहीं, अन्नदा ! खटोला लाओ। बेचारा नन्दन दीवार से गिर पड़ा। गहरी चोट लगी है इसे। यह देखो मेरे कन्धे पर लटक रहा है। जल्दी खटोला लाओ !"

" 'पैर तले से धरती खिसक गई अन्नदा के। बोली वह हकबकाई-सी—"अयँ ! यह क्या कह रहे हो, बंगा ? लाओ, लाओ उन्हें !" टोकर नन्दन के लटके पैरों को पकड़ना चाहा कि बंगा गिरती-पड़ती अन्नदा को अपने पोटले वाले हाथ से सहारा देता आ खड़ा हुआ बरामदे में। पास ही पड़े खटोले पर नन्दन को कन्धे से उतार धीरे से लेटा दिया। अन्नदा हाँफती हुई उसके कन्धों को झकझोरती बावली-सी पुकार उठी—"अच्छे ! अच्छे !"

" 'न बोला नन्दन। बेहोश था वह। उसकी छाती पर सिर पटक बिलख-बिलख कर फूट पड़ी अन्नदा।

" 'बगल में बैठा बंगा अपने ही आप बक रहा था—"किसी का कुछ ठिकाना नहीं है इस दुनिया में। कोई सुनेगा, तो क्या उसे विश्वास होगा कि नन्दन मधु बाबू की दीवार फाँद रहा था चोरी करने के लिये !"···

" 'सिर उठाकर झटके से बंगा की ओर मोड़कर बोल उठी अन्नदा—"बंगा यह क्या कह रहा है तू ? मेरा अच्छे···"

" बीच ही मे बोल पड़ा बंगा—"हाँ, अन्नदा, मै ठीक कह रहा हूँ। वह तो कहो कि दीवार पर चढ़ न सका वह। गिर पड़ा बेचारा। वक्त पर पहुँच कर मधु बाबू ने जो नन्दन को देखा, तो बड़ा दुःख हुआ उन्हे। कहते थे—'क्या ज़रूरत थी नन्दन को चोरी करने की ? क्या माँगने से मै उसे कुछ दे न देता ?' दूसरा कोई होता, तो उसे या तो वही ख़त्म कर देते, या भेजवा देते बड़े घर की हवा खाने को। मगर वह तो नन्दन था न, तेरा अच्छे ! भला कैसे ऐसा कुछ कर सकते थे वह उसके साथ। ले, यह चावल दिया है उन्होने। फिर ज़रूरत पड़े, तो माँग ले आना उनसे। बड़े दयालु, बड़े अच्छे हैं मेरे मधु बाबू !"

" 'बड़े दयालु बड़े अच्छे हैं मधु बाबू ! चोर है उसका अच्छे ! ओह, यह सब क्या सुन रही है अन्नदा ! नहीं, नही, ऐसा नहीं हो सकता। उसका अच्छे चोर नही हो सकता ! मधु···मधु · उसीं ने तो एक बार उन्हें उजाड़ देने की ठानी थी। अब···अब यह सहानुभूति क्यो ? यह दया क्यो ? नही, नही. यह झूठ है। इसमें भी उसकी कुछ बदमाशी होगी। याद आ गई उसे उस दिन की बात। बापू पूछ रहा था उससे—"क्यों, अन्नदा, सच है यह कि तुझे राह मे मधु ने छेड़ा और उसे नन्दन ने वह घूँसा मारा कि उसका जबड़ा झूल गया ?" और नन्दन ने भी तो उससे कितनी ही बार कहा था कि उसी के कारण उसने मधु से शत्रुता मोल ले ली। जान का गाहक है वह उसकी। ओह, अब आया समझ मे ! तो यह रहस्य है इस सहानुभूति का, इस दया का ! छिः छिः ! ऐसी नही है अन्नदा ! नन्दन के साथ भूखों मरेगी वह, पर नही लेगी वह मधु का एहसान !

कड़क कर बोली वह—"ले जा तू यह चावल ! नहीं चाहिये हमें कुछ ! बड़े बने हैं तुम्हारे मधु बाबू ! जा, जा !"

" 'उठकर एक गाल मुस्कराता चल पड़ा बंगा । छोड़ दिया वहीं चावल का पोटला । काँटे का चारा था वह । 'देखे, भूख से तड़पती मछली कब तक मुँह नहीं मारती है उस पर,' सोच रहा था वह ।

" 'क्या करती अन्नदा, बेबस अन्नदा ! रोती, बिलखती, तड़पती नन्दन की छाती पर सिर रखे ज़ोफ मे आ गई ।...

" 'सुबह की शीतल हवा ने अपने कोमल करो से नन्दन को सहला दिया । ज़बान लड़खड़ा रही थी । कमज़ोरी के मारे आँखे तिलमिला रही थी ओठों पर सूखी ज़बान फेर कर किसी तरह पुकारा— "अन्नदा ! अन्नदा !"

" 'नहीं आई कोई आवाज़ । हाथ ऊपर उठा सिरहाने करना चाहा, पर कमज़ोरी के कारण वह छाती पर गिर पड़ा । चौंक पड़ी अन्नदा । नन्दन का मुँह हाथो में ले बोल पड़ी—अच्छे ! अच्छे !"

" 'लड़खड़ाई आवाज़ मे बोला नन्दन—"पा..."

" 'अन्नदा ने पानी ला उसे उठाकर पिलाया । पेट को ज़ोर से हाथ से दबाते आह-आह कर गिर पड़ा नन्दन अन्नदा की गोद मे । अन्नदा की आँखो से चू पड़े बेबसी के आँसू ।

" 'मुँह खोलकर हाँफते हुये बोला टूटी आवाज़ में नन्दन— "अन्नदा,...मै . रात.. गया.. था अन्न छीनने, पर ..पर.. ज़ालिम ने . ओह ! कमज़ोर हो गया हूँ न ! ..हाँ, मै ..यहाँ तक...कैसे आया ?"

" 'रुद्ध स्वर में बोली अन्नदा सिसकती हुई—"तुम्हे यहाँ बंगा लाया था ।"

"'आँख फाड़कर बोल उठा नन्दन—"बंगा! शायद उसी ने···" ज़ोर लगाकर बोलने के कारण जोफ़-सा आ गया उसे। लटक गई उसकी गर्दन अन्नदा के कन्धे पर। अन्नदा ने अपना काँपता हुआ हाथ रखा उसके माथे पर। पसीने से तर हो रहा था वह। काँपती हुई अँगुलियों से उसने उसका पसीना पोछ, उसका सिर एक ओर कर खटोले पर रख दिया। बेबसी की तस्वीर बनी उसे एक क्षण देखती रही। बंगा की बाते उसके दिमाग़ मे गूँज उठी, 'ले, यह चावल दिया है उन्होने!' चावल, चावल! क्यो लौटा दिया उसने? चावल! इसी चावल के बिना तो उसके नाना, नानी और बापू··· ओह! और अब नन्दन भी ··नहीं-नहीं! वह ऐसा नहीं होने देगी! वह · वह बचा लेगी नन्दन को। शून्यता-भरी आँखो से सामने देखती, वह हाथो की मुट्ठियाँ बाँध उठ खड़ी हुई। आगे बढ़ी। पैर काँप गये। मुड़कर देखा, नन्दन बेहोश पड़ा था। नहीं, नहीं! अब · अब··· उसने फिर आगे को पैर उठाया। पैर चावल के पोटले पर जा पड़ा। अकचका कर उसने देखा, चावल! झुकी उसे उठाने को। लगा, जैसे उस चावल के पोटले से मधु का हाथ एक सर्प के फन की तरह फुँफकारता हुआ उठा। हाथ खींच लिया अन्नदा ने। नाच गई धरती उसके आँखों के सामने। टूट पड़ा आकाश उसके सिर पर।··· सहसा 'अन्नदा! अन्नदा! अन्नदा · ' कितनी ही आवाजे एक साथ आ टकराईं अन्नदा के कानो से। स्थिर आँखों को फेर कर उसने देखा, छोटे-बड़े कितने ही जीवित कंकालो की एक टोली भूखी आँखो से उसकी ओर देखती चिल्ला रही थी—"अन्नदा! अन्नदा!"··· अन्नदा की आँखे और भी फैल गईं। साँसे और भी फूलने लगी। फिर कितने ही एक साथ चिल्ला पड़े—"अन्नदा, मधु बाबू ने कहा है कि अन्नदा जितना भी चावल चाहेगी, उसे वह देगे!" कह-कर घेर लिया अन्नदा को चारो ओर से।

" 'भीड़ से अन्नदा के सामने आ बगा बोला—"हाँ, हाँ, मै ठीक कह रहा हूँ। अन्नदा चाहे, तो तुम सब लोगों को भी चावल दिला सकती है ! मधु बाबू" ··

" 'बीच ही मे दाँत पीसती चीख पड़ी अन्नदा—"चुप ! शैतान !"

" 'बंगा सहम कर पीछे को हट गया। भीड़ के कुछ औरत-मर्द अन्नदा के पैरो से लिपट कर बिलख कर बोल पड़े—"ऐसा न कहो, अन्नदा ! देखो नन्दन को ! देखो अपने को ! देखो हम सब को ! अगर तुमने ख्याल न किया, तो हम सब भूख से तड़प-तड़प कर मर जायँगे, हम सब मर जायँगे, अन्नदा !" कहकर उन्होने अपनी कौड़ी-सी आँखो को निकाल कर अन्नदा के मुँह की ओर देखा। भीड़ चिल्ला रही थी—"अन्नदा ! अन्नदा !"···

" 'अन्नदा पत्थर की मूर्ति-सी खड़ी मुँह बाये, आँखे फाड़े सामने शून्य में निश्चल-सी देख रही थी। उसके कानो के परदे फटे जा रहे थे। कुछ मायें अपने बचो के हाथ थाम पुकार उठी—"अन्नदा ! नन्दन के लिये नहीं, अपने लिये नही, हमारे लिये नही, तो इन मरभूखे बच्चो के लिये तो तू मधु से चावल दिला दे ! देख, इनके हड्डी के ढाँचे, देख, इनके धँसे हुये पेट, देख, इनकी निकली हुई आँखें ! ये तुझसे चीख-चीख कर एक मुट्ठी अन्न माँग रहे हैं, अन्नदा ! अन्नदा, क्या तू इन्हें भी पैरो से ठुकरा देगी ?" बच्चे अपने अँगुली-से पतले-पतले हाथ उठाकर 'भूख-भूख !' चिल्ला उठे।

" 'भूख ! भूख ! भूख ! अन्नदा का मस्तिष्क जैसे 'भूख' की गूँज से फटने लगा। उसे लगा, जैसे भूखे इन्सान और उनके भूखे बच्चे चीख-चीखकर कह रहे हों—'अन्नदा, तू अन्नपूर्णा है, तेरे रहते हम तड़प कर मर जाये ! उसका चेहरा एक-ब-एक गम्भीर हो, भयंकर हो

उठा। आँखें और भी चौड़ी हो गईं। दाँत सट गये। नथुने फड़कने लगे। साँसे धौंकनी-सी चलने लगीं। वैसे ही उसने एक बार नन्दन की ओर देखा, और आगे को कदम उठाया। भीड़ चिल्ला उठी—"अन्नदा की जय!"

" 'धरती पर प्रलय के कदम रखती कंकालों के आगे-आगे अन्नदा वज्र की तरह चल पड़ी।···

" 'मधु की कोठी के दरवाज़े पर भीड़ रुक गई। बंगा ने अन्नदा के आगे आ हाथ से साथ चलने को इशारा किया। अन्नदा वैसे ही बंगा के पीछे हो ली।

" 'बंगा ने कमरे मे प्रवेश कर कहा—"सरकार!"

मधु ने पलंग पर बैठे ही सामने देखा, अन्नदा खड़ी थी। उसे लगा, जैसे गुलाब का एक सूखा फूल हवा के बवंडर मे चक्कर खाता उसके सामने गिर पड़ा हो। वह मुस्कराता हुआ उठा। बाँयी आँख दवाकर बंगा को इशारा किया। बंगा मुड़ा। उसके पीछे अन्नदा भी मुड़ी कि बढ़कर मधु ने उसका हाथ पकड़ लिया। बंगा ने झट बाहर से दरवाजे बन्द कर दिये। हटते-हटते उसने सुना कमरा एक पैशाचिक अट्टहास से काँप उठा।

'बाहर आ उसने भीड़ के सामने खड़े हो कहा—"अन्नदा इस वक्त थक गई है। उसने कहा है कि शाम को वह अपने हाथों से ही अन्न बाँटेगी। उसी वक्त तुम लोग आना।"

" 'भीड़ हट गई। बंगा नन्दन के घर की ओर चल पड़ा।

"नन्दन के घर आ, वह उसके खटोले के पास खड़ा हो गया। नन्दन के होंठ काँप रहे थे। डूबी-डूबी कमज़ोर आवाज़ निकल रही थी—"अन्नदा···अन्नदा··"

" 'ज़ोर से हँस पड़ा बंगा। न जाने कैसे आँखें खुल गईं नन्दन की। उसने सामने देखा बंगा को। उसकी ज्योतिहीन आँखों में जैसे शरीर का बचा-खुचा रक्त चढ़ आया।

" 'हँसता हुआ ही बंगा बोला—"हूँ! अन्नदा! अन्नदा! अन्नदा तो इस वक्त मधु बाबू के पहलू ···"

" 'चीख पड़ा न जाने किस शक्ति से नन्दन—"बंगा!" और उठ पड़ा एक प्रेत की तरह दोनों हाथों की उँगलियों को पंजों की तरह मोड़े। सहम कर बंगा पीछे हटा कि कदम बढ़ाते ही लुढ़क पड़ा नन्दन। फूट गया उसका सिर। फिर क्षीण-सी एक आवाज़ निकली उसके मुँह से—"अ · न्न ··दा!" ··

" 'बंगा ने झुककर देखा, नन्दन ठण्डा हो गया था। बंगा को काटो, तो ख़ून नहीं। वह दहशत-भरी निगाहों से चारों ओर देखता चोर की तरह बाहर हो, लुकता-छिपता भाग गया।···

" 'लुटी हुई अन्नदा सफ़ेद दामन पर एक बड़ा-सा काला दाग़ लगाये मधु की कोठी से बेहाल-सी लड़खड़ाती निकली। उसका सारा शरीर काँप रहा था। पसीने से तर चेहरे पर लम्बे-लम्बे बिखरे बाल सट गये थे। आँखों की पलकें स्याह हो झुक गई थीं। तन-बदन की सुधि नहीं थी उसे। कपड़े अस्त-व्यस्त हो रहे थे।

" 'गाँव के मरभूखों ने देखा, अन्नदा गिरती-पड़ती अपने घर की ओर भागी जा रही थी। उन्होंने चिल्लाते हुये उसका पीछा किया—"अन्नदा! अन्नदा"···

" 'अपने घर के दरवाजे की चौखट से टकराकर अन्नदा गिर पड़ी। सिर फूट गया। ख़ून की धारें बह निकलीं। उसने उठने की कोशिश की। फिर लुढ़क गई। ज़मीन पर हाथ फैलाये वह शरीर को

घिसटती आगे बढ़ी। मुँह से घुटी हुई आवाज़ निकल रही थी—
"अच्छे···अच्छे···"

" 'लोग उसकी ओर लपके। उसे उठाने को कुछ ने हाथ बढ़ाया कि अन्नदा खून से लथपथ अपनी पलकों को उठाकर चीखती हुई-सी बोली—' छोड़ दो मुझे !" लोग अवाक् ठिठक गये।

"घसिटती-घसिटती अन्नदा किसी तरह नन्दन के शव तक पहुँची। ज़ोर लगाकर उसने सिर उठाया। सिर नन्दन की छाती पर गिर पड़ा। अन्नदा ने ऐंठती बाहों को नन्दन के गले की ओर बढ़ाया। एक डूबती हुई आवाज़ आई—"अच्छे !" और फिर सब-कुछ शान्त।

" 'मरभूखों के हड्डियों के ढाँचों में जैसे बिजली दौड़ गई। उन्होंने एक दूसरे की आँखों की ओर देखा। एक चिल्ला उठा—
"हमें धोखा हुआ ! हमारे ही कारण अन्नदा मधु के पापों का शिकार हो गई ! हम अन्नदा की इज्ज़त का बदला मधु से लेंगे !"

" 'कई चीख उठे—"दोज़खी कुत्ता !"

" 'उनकी धँसी हुई आँखों से चिनगारियाँ फूट पड़ीं। वे भूतों की तरह चीखते हुये मधु की कोठी की ओर बढ़े।'

" 'मधु की कोठी के सामने चीख-पुकारों का शोर हो उठा।

" 'हड़बड़ाया हुआ बंगा मधु के कमरे में आ थर-थर काँपता हुआ बोल पड़ा—"भागिये ! सरकार, भागिये ! नन्दन मर गया। अन्नदा मर गई। गाँव वाले पागल हो रहे हैं। ये आपकी जान लेने आ रहे हैं। कोठी का फाटक टूट चुका है। आप जल्दी कीजिये ! पीछे के दरवाजे से"···

" 'मधु की आँखों में खौफ का सन्नाटा छा गया। शरीर का सारा रक्त जैसे जम गया। वह बंगा का मुँह ताकने लगा। बंगा ने उसका हाथ पकड़ उठाया। बाहर जोरों का शोर हुआ। बंगा मधु को लिये पीछे के दरवाजे से बाहर हो गया।···

" 'मधु और बंगा जान बचाकर भाग तो आये, पर मधु के पापों की जिस ज्वाला में तीरगाँछी गाँव की अन्नदा, नहीं-नहीं, अन्नपूर्णा जल मरी, उस ज्वाला ने उनका पीछा न छोड़ा। एक हफ्ता हुआ बंगा उसी ज्वाला में जलकर भस्म हो गया। और मधु···मधु भी उसी ज्वाला मे जल रहा है। देखिये···देखिये! ये मधु के पापो की लपटे·· मधु को·· हाँ·· हाँ · मुझे मै ही हूँ वह पापी मधु···' कहकर उसने ज़ोर से अपने कलेजे पर दोनो हाथो से घूँसा मारा। मै कुछ कहूँ-कहूँ कि उसके मुँह से ख़ून निकल आया। गर्दन लटक गई। आँखे उलट गईं।

" 'मित्र, यही है मेरे उस चित्र की कहानी। निर्लेप ने एक आह भर कर कहा।

मैं न जाने कैसा भारी दिल लिये चुपचाप उठ गया। सिर लटकाये ही वहाँ से हट गया।

दूसरे दिन समाचार-पत्रो में निर्लेप के उस चित्र की कापी छपी थी। चित्र में अन्नपूर्णा लपटों में खड़ी जल रही थी। उसके गले को दबोचने के लिये एक राक्षसी पंजा बढ़ा आ रहा था। उसके उड़ते हुये बालो मे गुँथी हुई धान की बालियाँ और हाथ मे लटके धान के पौदे झुलस रहे थे। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। लपटो के नीचे असंख्य नर-नारियों और बच्चों के काले-काले कंकाल अपने पतले-पतले हाथ उठाये चीख रहे थे। नीचे लिखा था—"तू अन्नपूर्णा माँ रमा है, और हम भूखों मरें!"

अधिक देर तक मैं उस चित्र को न देख सका। मैं सोच रहा था, 'निर्लेप का यह चित्र लोग देखेंगे। काश, इस चित्र की कहानी भी लोग निर्लेप के मुँह से सुन सकते!'

नरोत्तमप्रसाद नागर

रोटी का वह एक चौथाई टुकड़ा लाल ख़ून में डूबा एक ओर जा पड़ा था ··

और चूल्हे की आग ख़ून के छींटों से बुझ चुकी थी।

# दया तेरी....!

कम्यूनिस्टों की बात जाने दीजिये। उनसे अगर पूछियेगा तो वे यही कहेंगे—जिनके पास पैसा है, वे और कुछ भले ही हो जायें, आदमी नहीं हो सकते। आदमी तो वही हैं जिनके पास पैसा नहीं है, जैसे कि वे स्वयं!

लेकिन, सच पूछा जाये तो जिनके पास पैसा है, वे आदमी भी होते हैं और हृदय नाम की वस्तु भी अपने पास रखते हैं। यह बात अवश्य है कि उनका हृदय कभी-कभी पिघलना भूल जाता है—पिघलता भी है तो जरा विचित्र ढंग से।

युद्ध-काल में एक ही बात होती है—मृत्यु का ताण्डव। कुछ कीजिये, मृत्यु से छुटकारा नही। युद्ध के मोरचे पर भी मरण, युद्ध के मोरचे से दूर, घर की चहारदीवारी के भीतर भी मरण। अन्तर इतना ही है कि युद्ध के मोरचे पर मृत्यु का आगमन आकस्मिक और आनन-फानन होता है, और घर के मोरचे पर धीरे-धीरे—तिल-तिल करके।

भूख की मार, गोली और बमों की तरह, भीषण और आकस्मिक चाहे न हो, लेकिन दुःखदायी अधिक होती है। सभी को वह परेशान करती है—जो मरता है उसे भी और जो देखता है उसे भी।

भूख से मरते हुये नर-कंकालों को देखकर हृदय विक्षुब्ध हो उठता है और एक ही बात बार-बार उभर कर मन को कचोटती है—"भूख

की मार से मरने से तो यह कही अच्छा है कि गोली की मार से अपना काम तमाम कर लिया जाये। तिल-तिल करके कुत्तों की भाँति मरने वाले लोगो को भी अगर··"

सम्पूर्ण करुणा का अभिनय करता हुआ हृदय वाक्य को पूरा कर सन्तोष का अनुभव करता है—"सचमुच, अगर कोई ऐसा कर सके तो सहज ही इन्हे मुक्ति मिल जाये।"

लेकिन नहीं, मुक्ति ऐसी नही जो गोली की मार के सहारे सहज ही मिल जाये। जिस चीज़ को हम आँखो की ओट करना चाहते हैं पूरे प्रतिशोध के साथ उसी का ताण्डव हमारी आँखों के सामने होने लगता है—भूख की मार के दृश्य बाजारो मे गलियो मे—ठीक हमारे घरो के सामने दिखाई पड़ने लगते है।

और तभी लोगो के हृदय मरोड़ खाना और पिघलना शुरू करते हैं। पैसे वालो की आदमियत बाहर आती है, थैलियो के मुँह खुलते हैं और ·

विचित्र दृश्य प्रस्तुत था, एक साहब थे जो दान करने मे जितने अग्रणी थे, उतना ही राग-रंग मे भी। प्रत्येक चुस्की के साथ वह आह भरते थे, फिर दान की घोषणा करते थे। यह तय करना कठिन था कि किन लोगो की सूची मे उनका नाम सबसे पहले रखा जाये—दान देने वालो की, अथवा पाने वालो की !

पूछा तो ग्रामोफोन के रिकार्ड-ऐसी आवाज़ में कहने लगे—"आप भी विचित्र बात करते हैं। भूख के दृश्य इतने भीषण हैं कि उनकी वेदना को भुलाने के लिये हमे यह सब करना पड़ता है। अगर हम इतना भी न करें तो पागल हो जाये।'

परमात्मा न करे कि आप पागल हों। पागल हो गये तो फिर रिलीफ सोसाइटी का काम कैसे चलेगा !

लेकिन मेरा ध्यान तुरन्त ही दूसरी ओर चला गया। आँखों के सामने एक दूसरा ही चित्र खिंचा हुआ था—कराची के एक सेठ का। भूख की मार ने उन्हे भी परेशान किया था और उनका हृदय पानी बनकर बह गया था।

हृदय उनका बहुत कोमल था और ट्रैजेडी यह थी कि इतने कोमल हृदय को लेकर उन्हे इस दुनिया मे जीना पड़ रहा था। उन्होने देखा और अनुभव किया कि आदमी तो अपने हृदय की वेदना को व्यक्त भी कर सकता है, लेकिन पशु-पक्षी तो कुछ कर भी नही सकते। उनकी मूक वेदना···!

सेठ जी का हृदय व्यथित हो उठा—शायद पागल होने की हद तक व्यथित हो उठा। चैक बुक उन्होने उठाई और पाँच सौ का एक चैक काट दिया—**बेजुबान कुत्तों को भूख की मार से बचाने के लिये !**

बेजुबान कुत्ते··· और मानव ···दोनो में अन्तर ही क्या है। एक दुम हिलाता है, दूसरा दाँत निपोरता है ?

फिर युधिष्ठिर ने भी तो अपने कुत्ते का साथ दिया था। स्वर्ग तक मे उसे अपने साथ ले गया था। युधिष्ठिर की वह परम्परा ···!

कुत्ता और मानव···मानव और कुत्ता ···दोनों जन्म-जन्म के साथी।

एक दूसरा चित्र आँखों के सामने घूम गया। शिवपुर, बंगाल, का एक दृश्य। एक सम्पन्न परिवार के घर का अगवाड़ा। कूड़े के ढेर पर उच्छिष्ट भात का अंश। उसके लिये एक भूखे लड़के और कुत्ते में संघर्ष। लड़का बुरी तरह घायल। अन्त में लड़के को अस्पताल में पहुँचाया गया और कुत्ता वहीं, घर के आस-पास, मँडराता रहा।

बेचारा भूखा और बेज़ुबान कुत्ता—मानव का पुराना साथी !

भूख की मार के दृश्यो का अन्त नहीं। एक-एक कर आँखों के सामने मँडराने लगे—असम्बद्ध और तारताम्यहीन—आज के जीवन की तरह विशृंखल और उदभ्रान्त !

भूख की मार से त्रस्त एक स्त्री और उसका बच्चा। अपने बच्चे की वेदना को न सह सकने पर एक उजड़े हुये स्थान पर उसे छोड़ गई—उजड़े हुये स्थान पर शायद इसलिये कि कही कोई यह न देख ले, कि माँ अपने हृदय के टुकड़े को अपने से अलग कर रही है !

बच्चे को तकलीफ न हो, इसलिये कोमल पत्तो और घास-फूस का बिछौना बनाकर बच्चे को उस पर लिटा दिया। कुछ देर खड़ी होकर देखती रही, बच्चा रोता तो नही है। लेकिन बच्चा नही रोया। वह खेलता रहा।

स्त्री दूर हटती जाती थी और घूम-घूमकर देखती जाती थी। बच्चा पूर्ववत् खेल रहा था और खेलता रहा। रोया भी तो उस समय जब वह उसकी आवाज़ की पहुँच से बाहर हो चुकी थी।

अपने बच्चे को सूने जंगल में छोड़कर वह चली गई और, कराची के कोमल हृदय सेठ इस पर अगर प्रसन्नता का नहीं तो सन्तोष का अनुभव अवश्य कर सकते हैं कि उनके मूक पशु-पक्षियो के लिये 'एक आहार' उपलब्ध हो गया।

कोमल माँस के इस लोथड़े के चारो ओर गिद्ध, कौवे, कुत्त मँडराने लगे। कुछ बन्दरों की भी उस पर दृष्टि पड़ी। बन्दरो में अगर सोचने की शक्ति होती हो तो उन्होने अवश्य सोचा होगा—"यह तो अपनी ही जाति का मालूम होता है। केवल एक दुम की कसर है। शेष जो कुछ है, वह हमारे जैसा ही है।"

बन्दरों ने बालक को देखा और उसके चारों ओर घेरा बनाकर बैठ गये। गिद्ध, कौवे, कुत्ते पास आने का साहस न कर सके। संयोगवश उधर से कुछ लोग गुज़रे। उन्होंने जब यह देखा तो बन्दरों को हटाकर बालक को उठा लिया।

बालक मोटा ताज़ा न होने पर भी सुन्दर था। देखने से मालूम होता था कि उसका रंग अच्छा—ऊँची जाति का—ख़ून बह रहा है। आयु छः सात मास की होगी। उसे तुरन्त एक वकील ने पालने के लिये ले लिया।

लेकिन सात दिन भी न बीते होंगे कि एक स्त्री रोती हुई वकील साहब के घर के सामने आकर खड़ी हो गई। वह अपने बच्चे की माँग करने लगी।

गत कई दिन से यही वह कर रही थी। प्रत्येक घर के सामने खड़ी हो जाती, अपने बच्चे की माँग करती और फूट-फूट कर रोने लगती।

अन्त में खोज पूरी हुई। बच्चे को लेकर वकील साहब बाहर निकले। वह आगे बढ़ी। झपट कर बच्चे को छीन लिया और तेज़ी से वापिस हो चली।

बच्चे को हृदय से लगाये कुछ ही दूर गई होगी कि फिर वापिस लौट आई। कहने लगी—"मैं तो भूखो मर ही रही हूँ। बच्चे का मरना मुझसे नहीं देखा जायगा। यह लो, इसे अपने पास ही रख लो। कौन जाने··!"

कहते-कहते उसका गला रुँध गया और उसकी आँखों के आगे अँधेरा-सा छा गया। ठीक वैसा ही अँधेरा एक अन्य बस्ती पर—सभी बस्तियों पर—छाता जा रहा था। चित्र उभर कर आँखों के सामने आते हैं और सर्वग्रासी अंधकार की सृष्टि कर विलीन हो जाते हैं।

एक गाँव के लोगों से जब कुछ नही बना तो उन्होने कुछ युवतियो को छाँट कर कुछ पुरुषो के साथ 'पैसे वालों की बस्ती' की ओर रवाना कर दिया। पुलिस को इसका पता चला और लड़कियों का व्यापार करने के अपराध में उनके साथी पुरुषो को मय लड़कियों के, गिरफ्तार कर लिया।

लड़कियों से जब बयान लिया गया तो उन्होने कहा—"हम क्या करती। भूख की मार से जब सारा गाँव परेशान हो गया तो हम ऐसे लोगो के हाथ बिकने के लिये तैयार हो गईं जो हमें भरपेट खाना दे सके।"

एक ओर पुलिस लड़कियो का बयान लिख रही थी और दूसरी ओर स्त्रियो का एक दल सहायता की आशा से बड़े साहब के बंगले पर जमा हो रहा था। बड़े साहब उस दिन कहीं गये हुये थे। काफी प्रतीक्षा करने पर भी जब बड़े साहब के दर्शन नहीं हुये तो औरतों का यह दल बाज़ार की ओर मुड़ गया।

भूख ने इन औरतों को बुरी तरह त्रस्त कर दिया था। जो दूकानें सामने दिखाई दीं, उन्हीं पर टूट पड़ी। इसके बाद वे चावल की दूकानों की ओर बढ़ीं। किन्तु पुलिस ने उन्हें तितर-बितर कर दिया। डडो की मार उन पर पड़ी और

फिर वही शून्य—डंडों की मार ने जैसे कुछ भी नहीं छोड़ा है। लूट-मार के दृश्यो ने हृदय मे कुछ आशा का संचार किया था। उनसे पता चलता था कि भूख की यह मार ने उन्हें एकदम निर्जीव नहीं कर दिया है। किन्तु कहाँ, यह लूट मार तो जैसे एक अपवाद है। भूख ने इतना पगु बना दिया है कि डाक्टरो की मदद भी कारगर नहीं होती।

लूट-मार के नहीं, दूसरे ही दृश्य आँखों के सामने आते हैं। लोग चलते-चलते सड़कों पर भूख से गिर पड़ते हैं। प्रतिदिन लाशें उठाई जाती हैं और उठाने पर भी जैसे उनमें कोई कमी नहीं आती। ऐसा मालूम होता है। मानो धरती ने लाशों को उगलना शुरू कर दिया है। एक हटती है, दस उसकी जगह पैदा हो जाती हैं।

भोजन की खोज में इधर-उधर भटकने के बाद एक आदमी कलक्टर की अदालत की सीढ़ियों पर गिर कर मर गया था। उसके हाथ कुछ ऊपर को उठे हुये थे—ऐसा मालूम होता था मानो न्याय की दुहाई दे रहा हो।

कलक्टर साहब ने उसकी ओर देखा और मुँह बिचका कर लाश को तुरत उठाकर ले जाने का आदेश देते हुये कहा—"कम्बख्त को यहीं आकर मरना था !"

जिस वक्त उसकी लाश हटाई जा रही थी, न जाने कहाँ से—शायद धरती फोड़ कर—उसकी स्त्री प्रकट हो गई। स्त्री के हाथों में कपड़े में लिपटा हुआ एक बण्डल-सा था। बण्डल को आगे बढ़ाते हुये चीख कर बोली—"इसे भी ले जाओ !"

बण्डल में उसका मृत बालक था।

एक दूसरी स्त्री प्रतिदिन कई मील चल कर एक अन्य-क्षेत्र से अपने मृतप्राय पति के लिये जौ की लप्सी लेने आती थी। एक ओबरसियर की स्त्री ने यह समाचार पाकर आत्महत्या कर ली कि उसके मायके में सब लोग भूखे मर रहे हैं। इससे पूर्व कि मौत का हाथ उसके मायके वालों का सफाया करे, उसने स्वयं अपना अन्त कर लिया।

एक परिवार में दो भाई तीन दिन से भूखे थे। चौथे दिन उनके भाग्य जागे और उन्हें आधा सेर आटा मिल गया। लेकिन ऐसा

प्रतीत होता है कि विधाता उनके इस सौभाग्य को सहन नही कर सके और उन्होने अपना कूट चक्र चलाना शुरू कर दिया।

अपने सौभाग्य पर प्रसन्न होकर बड़ा भाई आटा लेकर रोटी बनाने बैठा। छोटा भाई भी, खुशी-खुशी, कोई चीज़ लेने ज़रा बाहर चला गया। जब वह बाहर से लौटकर आया तो उसने देखा—बड़ा भाई अध पकी रोटी का तीन चौथाई भाग उदरस्थ कर चुका है।

इस पर दोनो मे झगड़ा हुआ। क्रोधित भूखा भाई इसे सहन नहीं कर सका और एक पैने गँड़ासे से उस पर वार किया। बड़ा भाई वहीं, उसी समय, ठण्डा हो गया। धरती उसके लहू से लाल हो उठी थी और रोटी का वह एक चौथाई टुकड़ा लाल ख़ून में डूबा एक ओर जा पड़ा था। चूल्हे की आग ख़ून के छींटो से बुझ चुकी थी।

बड़े भाई की मृत्यु और छोटे भाई के गले मे फाँसी का फंदा

जीवन को निश्चित करने वाले इन चित्रो का जैसे कोई अन्त नही है। शैतान की आँत की तरह उनका बिस्तार बढ़ता ही जाता है।

सीधी-सपाट सड़क पर एक दूध वाला दूध लिये जा रहा था। न जाने किस भूखे की नज़र उसे लगी कि उसने ठोकर खाई और उसका दूध सड़क पर बिखर गया। खुली सड़क पर दूध की नदी बहती देख चिथड़े लपेटे, अस्थि-पंजर-शेष, बगल में बच्चो को लटकाये आधी दरजन के करीब औरते वहाँ दौड़ आईं और अपने चिथड़ो की सहायता से धूल मिला वह दूध बच्चो के मुँह मे चुआने लगीं। न जाने कितने दिनों बाद उन्हें यह स्वर्गीय अमृत मिला था!

लेकिन ऐसे अवसर रोज़-रोज़ नही आते। रोज़-रोज़ के चित्रो में तो ऐसे माता-पिता ही अधिक सामने आते हैं जो, अपने बालको के

लिये कोई प्रबन्ध न कर सकने पर, उन्हें भगवान के भरोसे छोड़ देते हैं—या फिर उन्हे सीधा भगवान के यहाँ भेज देते हैं।

ऐसे ही एक पिता का दृश्य आँखों के सामने प्रस्तुत है। खाने का प्रबन्ध न कर सकने के कारण उसने अपने तीन साला पुत्र की हत्या कर डाली। उसके परिवार को तीन दिन मे भोजन नहीं मिला था। अदालत मे उस पर मुकदमा चला और लड़के की हत्या करने के अपराध में आजन्म कारावास की उसे सज़ा हो गई।

पिता के विरुद्ध गवाही दी उसकी अपनी लड़की ने—छः वर्ष की जिसकी आयु थी और अपने छोटे भाई को पिता के हाथों मौत के घाट उतारते जिसने देखा था।

दुःखद परिस्थितियो का ध्यान रखते हुये अदालत ने पिता पर विशेष दया करने की शिफारिश की थी। लेकिन···

दु खद परिस्थितियाँ और अदालत की सिफ़ारिश—ये दोनों ही विलीन हो जाते हैं एक दूसरे दृश्य के सामने। चारो ओर से निराश होकर एक व्यक्ति माँ काली के मन्दिर मे पहुँचता है। कौन जाने, उसके हृदय मे यह विश्वास—डूबते के लिये तिनके के सहारे की तरह—जगा हो कि प्रार्थना करने पर माँ काली उसके कष्टों को दूर कर देगी।

और ऐसा ही होता भी है। माँ काली का संकेत पाकर वह बाहर निकलता है और गले में फंदा डालकर एक पेड़ से लटक जाता है।

गले मे फंदा डालते समय अगर पुलिस ने उसे देख लिया होता तो वह पकड़ा जाता, अदालत में उस पर मुकदमा चलता, आत्महत्या के अपराध में उसे सज़ा होती और सम्भव है, दुःखद परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुये उसके लिये भी अदालत विशेष दया की सिफारिश करती!

फिर वही शून्य। अंधकार में प्रकाश की सृष्टि न कर दया की यह सिफारिश उसे घनीभूत ही करती है। चित्र आँखों के सामने आते हैं और जाते हैं--ऐसा प्रतीत होता है कि उनका कभी अन्त न होगा।

और सबसे अन्त में उभर आते हैं वह महानुभाव जो एक ओर भूखो के लिये दान करते हैं, दूसरी ओर राग-रंग में लिप्त रहते हैं और पूछने पर उत्तर देते हैं—'आप भी विचित्र बाते करते हैं। भूख के दृश्य इतने भीषण हैं कि उनकी वेदना को भुलाने के लिये हमें यह सब करना पड़ता है। अगर हम इतना भी न करें तो पागल हो जाये!"

प्रबोधकुमार सान्याल

# अङ्गार

आठ बरस से दिल्ली में मै नौकरी कर रहा हूँ। कलकत्ता से कम सम्पर्क है। किसी साल कलकत्ते एकआध बार आता हूँ। घूम-फिर कर, सिनेमा देखकर फिर वापस चला जाता हूँ। नहीं तो आजकल कहाँ आना जाना होता है।

तीन बरस पहले फरीदपुर से शोभना ने मुझे चिट्ठी लिखी थी, 'छोटे भैया', तुमने ज़रूर ही सुना होगा कि क़रीब छै महीने हुये मेरा भाग फूट गया! बच्चे को लेकर कुछ दिन ससुराल में थी, लेकिन वहाँ रहना नही हुआ! तुम्हारे बहनोई जो कुछ सौ-डेढ़-सौ रुपया छोड़ गये थे, वह भी ख़र्च हो गया। अब नहीं चलता। ममेरे भाई होने पर भी तुमको हमेशा से सगे भाई की तरह मानती आ रही हूँ। जिस तरह भी हो, बच्चे को आदमी न बनाने से मेरे लिये कही बैठने की जगह नहीं रहेगी। इधर लड़ाई की वजह से सब चीज़ो के दाम खूब बढ़ गये हैं। बुटू पास करके नौकरी खोज रहा है पर अभी कही कुछ हुआ नहीं। माँ सोच-सोचकर परेशान है। स्कूल की फीस न दे सकने से हारू का पढ़ना बन्द हो गया है। बाबा के सब काग़ज़ कम्पनी से भुनाकर ख़तम हो गये। ऐसी हालत में अगर तुम दया करके हर महीने दस रुपये दे सको तो बड़ी मदद हो!

दिल्ली की इस नौकरी की ख़बर पहले फूफा ने ही दी थी। इसलिये शोभना की चिट्ठी पाकर स्वर्गीय फूफा के प्रति मेरी आन्तरिक

कृतज्ञता हृदयावेग से द्रवित हो उठी। उसी दिन मैंने पच्चीस रुपये भेज दिये और शोभना को लिख दिया कि तेरा बच्चा जब तक कमाने न लगे, तब तक हर महीने मैं पन्द्रह रुपये भेजूँगा।

इसी से शोभना, बुआ, बूटू, हारू—सबके साथ चिट्ठी पत्री मे घनिष्ठता हो गई। पूजा के अवसर पर और नये वर्ष के आरम्भ में भी मै कुछ न कुछ रुपया उन्हे देता। तीन बरस से यही चला आता था।

इसी बीच मे युद्ध की गति के साथ-साथ बंगाल की कैसी अवस्था हो गई। शोभना वगैरह अपने संसार को किसी तरह चलाते हैं, उसकी ठीक तरह से ख़बर मैंने नहीं ली। और ज़रूरत भी नहीं हुई। बीच में बीमारी के डर से जब कलकत्ते से बहुत से लोग इधर-उधर भागे, उसी समय शोभना की चिट्ठी से सिर्फ़ यह मालूम हुआ कि फ़रीदपुर मे चीज़ों का भाव खूब चढ़ गया। बहुत लोग भागे है—इत्यादि। लेकिन रुपया मै बराबर भेजता हूँ। नियमित रूप से प्राप्ति स्वीकार और चिट्ठी-पत्री भी आती है। किसी तरह शोभना के दिन कटे जा रहे हे। किन्तु प्रायः छः मास पहले मासिक पन्द्रह रुपया भेजने के कुछ दिन बाद रुपये वापस आ गये। मालूम हुआ कि फ़रीदपुर के पते पर बुआ वगैरह कोई नहीं है।

वे लोग कहाँ गये, कुछ पता नहीं चलता। चिट्ठी भेजी, उसका जवाब नहीं मिला, कुछ दिन बाद फिर एक बार मनीआर्डर से रुपये भेजे किन्तु वे रुपये यथा समय वापस आ गये। बात कुछ समझ में न आने पर चुप हो गया। सोचा रुपये की ज़रूरत होने पर वे लोग अपने आप लिखेंगे। हमारा पता तो लोगों को मालूम है।

लेकिन आज प्रायः तीन बरस बाद हठात् कलकत्ता जाने का उस दिन सुयोग्य हुआ। हमारे डिपार्टमेन्ट के साहब निरीक्षण के लिये

कलकत्ते जा रहे थे। मुझे भी साथ जाना पड़ा। सोचा यह अच्छा मौका है। तीन सप्ताह में सोमवार की छुट्टी लेकर शनीचर को फ़रीदपुर चला जाऊँगा। दो दिन में मुलाकात कर वापिस चला आऊँगा। मेरे मनमे एक बड़ा कौतूहल था। जिसके वर्तमान या भविष्य मे रहने के ठिकाने की कोई उम्मीद नही, वही दरिद्र बुआ और शोभना पन्द्रह रुपये महीने के प्रति इस तरह कैसे उदासीन हो गई। सुना कि फरीदपुर शहर मे इस बीच कालरा फैला है। तो क्या उनमे से कोई नहीं बचा? मनमे कितनी दुर्भावनाये उठी।

साहब के साथ कलकत्ते आया और पचगुने दाम देकर होटल मे ठहरा। आकर देखा कि इस विराट नगरी के एक तरफ कंगाली फैली हुई है, और दूसरी तरफ युद्ध की सफलता का जबरदस्त आयोजन है। देश के सब लोग कहते है, 'दुर्भिक्ष' है। सरकार कहती है, यह दुर्भिक्ष नही है, खाने की चीजो का अभाव है।' दोनो मे कितना फ़रक है, इस आलोचना को बिलकुल स्थगित रखकर लगभग एक सप्ताह तक मै अपने काम मे डूबा रहा। इस बीच और किसी तरफ सोच ही नही सका। इसी तरह चलता रहा। किन्तु सियालदह बाज़ार के पास छोटी बुआ के मझले लड़के से अचानक मुलाकात होने पर फिर ख्याल हो आया। टाट के एक फूलदार थैले मे पाँच सेर के लगभग चावल और बाये हाथ में साग लिये शाम को रास्ता पार कर रहा था। सामना होते ही वह चौंककर रुक गया। मैने पूछा—'क्यो रे टूनू!

वह चौंका नही, मालूम पड़ता था कि वह अब किसी से चौंकता नहीं। एकमात्र अपने अवसन्न नेत्र उठाकर उसने शान्त कण्ठ से कहा—कब आये छोटे भैया। उसका हाथ पकड़ कर मै बोला—'तुम लोगों का क्या हाल है?'

'हाल ?'—कहकर उसने रास्ते की ओर देखा। उसकी दोनों आँखे क़साईखाने की मौत के घाट उतरने वाली रोगी गायों की तरह हो रही थी। मानो इस शताब्दी के अपमान से वे आँखे भरी हों। मुँह घुमाकर बोला—'हाल क्या ? कुछ नही। मैने मुस्करा कर पूछा—'तेरा चेहरा कैसा हो गया है ? पच्चीस बरस की उमर नही। अभी से बुड्ढा हो गया ?

मेरे मुँह की तरफ देखकर टूनू बोला—'बंगाल मे रहने पर तुम भी ऐसे ही हो जाते छोटे भैया !'

बात में अभिमान था, ईर्षा थी, हताशा थी। मैंने पूछा—'मालूम होता ह चावल खरीदा है।'

टूनू ने कहा—'नही, आफिस से कन्ट्रोल के भाव से मिलता है। चार आदमी है, पर सप्ताह मे छः सेर से अधिक नही मिलते। अभी जाऊँगा तो खाना बनेगा। आप तो अच्छे हैं। अच्छा चलूँ। लड़ाई रुकने पर अगर बचे रहे तो फिर मुलाकात होगी।'

मैंने पूछा—'शोभना आदि का कुछ हाल मालूम है ? क्या वह लोग फरीदपुर में नहीं हैं ?'

'न' कह ज़रा रुककर टूनू फिर बोला—'मेरे मुँह से उनका हाल मत सुनिये छोटे भैया।'

'क्यो ? वह लोग कहाँ रहते हैं ?'

'बहूबाज़ार मे तीन सौ तेरह एफ नम्बर में।' क्यो, क्या एक बार जा सकते हैं ? तो अभी आया।' कहकर टूनू बोझ लादने वाले जानवर की तरह थके पैरो से निर्बाध चलने लगा।

टूनू की आँख, मुँह और कण्ठ स्वर में मैने जो निरुत्साह देखा, उससे शोभना आदि से मिलने जाने की तबीयत मर गई। कलकत्ते मे आकर वह लोग शहर के बाहर किसी कोने कृतरे में अगर किराये पर घर लेकर रहती तो कुछ बात थी। लेकिन बहूबाज़ार मे घर का किराया भी तो कम नहीं है। पहले ही एक बात मेरे मनमे हुई—शायद टूनू को एक अच्छी नौकरी मिल गई हो।

आजकल अन्न दुर्लभ है, पर नौकरी दुर्लभ नही है। जो लोग सदा के बुद्धू थे वह आजकल एकाएक चालाक हो गये है। जिन लोगो की ज़िन्दगी में एक सौ रुपया से अधिक पाने की कल्पना भी नही था वे लड़ाई की चीज़ो के ठेके से लखपती हो गये और कुछ लोग तो अकाल मे चावल की बेइमानी से हज़ारो के आदमी बन गये। सम्भव है, टूनू से बच्चे ने भी लड़ाई के जुये मे भाग्य पलट दिया हो। इस लड़ाई में क्या सम्भव नही है?

उन लोगो का हालचाल मालूम करे या नहीं इसी ऊँच-नीच में और काम के भार से और भी कितने ही दिन बीत गये। सहसा दफ्तर के साहब ने ख़बर दी कि कल दिल्ली चलना होगा। यहाँ का काम हो गया।

मेरी भी यहाँ रहने की तबीयत नही थी। हमारे होटल के नीचे रात भर कितने ही कंगालो की चीख-पुकार सुनते-सुनते बिना नीद के दुःस्वप्न देखते किसी तरह दिन काट दिये, पर अब मुश्किल था। कलकत्ता दुर्गन्ध से भर उठा था फिर भी यहाँ से जाने के पहले बुआ का हाल-चाल बिना लिये जाने के विचार से मन बेचैन होने लगा। खासकर जाने के दिन के पहले वाले दिन को चलने का सामान ठीक करने की छुट्टी मिली थी। एक सुयोग मिला था।

बहूबाज़ार के ठिकाने का पता लगाने में मुझे देर नहीं लगी। मनमे सोचा था कि वे लोग किसी हालत मे क्यो न हो, सहसा पहुँच कर उन्हे चौंका दूँगा। पर घर देखकर मै ही भौंचक हो गया। सामने एक गंजीवाले का कमरा था, उसके पास लोहे का कारखाना था, उधर बिसाती की दूकान थी, भीतर गहने की आढ़त थी। नीचे के आँगन मे जाकर देखा कि नीचे के तले मे बहुत से लोग तेज़ी से ज़री का जाल बुन रहे थे। ऊपर की मंज़िल पर बहुत आदमी दिखाई दिये। यह मेस है यह समझने में देर नही लगी। सन्देह से एक बार घर का नम्बर मिलाया। ऊँहूँ! मेरी भूल नही हुई। टूनू का बताया यही नम्बर है।

इधर-उधर से दो-चार लोगो को पकड़ कर जब अच्छी खासी गड़बड़ मची, उसी वक्त देखा कि बारह-तेरह बरस की एक लड़की कौतूहल के साथ ऊपर की मंज़िल की सीढ़ी पार कर मेस की ओर जा रही है और उसे देखकर चार, पाँच लोग ऊपर से तरह-तरह से हाथ का इशारा कर रहे हैं। उसे देखते ही मै पहचान गया कि वह बुआ की छोटी लड़की है। फौरन पुकारा—'मीनू!' मीनू ने घूमकर देखा। मैंने पूछा—'मुझे पहचाना?'

"नहीं!"

'तेरी माँ कहाँ है?'

'अन्दर!'

मैं बोला—'मुझे रास्ता तो बता। यहाँ तो पूरा गोरखधन्धा है। आ, उतर आ, मीनू उतर आई, पूछा—'आप कौन हैं?'

'मुँह झौसी कह कर मैंने उसका हाथ पकड़ लिया, कहा—'अन्दर चल, तेरी माँ के पास बताऊँगा मै कौन हूँ! मुँहझौसी, मुझे बिलकुल भूल गई है!'

मुझे देखकर ऊपर की मंज़िल वाले ज़रा हट गये। अच्छी तरह समझ गया कि मेरे हाथ मे दबा मीनू का हाथ बेचैनी से अधीर हो रहा था। ऊपर चढ़ने मे वह रुक-सी रही थी। उसे यह अच्छा नही लग रहा था। उसकी ओर एक बार देखकर मैंने खुद ही उसका हाथ छोड़ दिया। तब मीनू ने कहा—'उस चौबच्चा के पास गली के भीतर सीधा चले जाइये। सब लोग उधर हैं।'

यह कहकर वह ऊपर चली गई। उसकी आँख और मुँह पर अजीब उद्भ्रान्त भाव था। यही वह मीनू है। बदन पर एक पतला सस्ता कपड़ा, चेहरे पर दरिद्रता का रूखा दुबलापन—किन्तु इसी में उसके सर्वाङ्ग से यौवन के चिन्ह प्रकट हो रहे थे। मैंने एक विषएण निःश्वास छोड़कर भीतर पैर रखा। विस्मय से चौंक देखने का मेरा उत्साह नहीं रह गया। एक पतले टेढे-मेढ़े रास्ते से अन्दर जाकर मैंने पुकारा—'बुआ!' कौन! भीतर से स्त्री के कण्ठ ने उत्तर दिया और तभी एक स्त्री बाहर आ गई। बोली—'किसकी तलाश में हैं!

औरत अपरिचित थी। काला रंग, नाक में फूल, मुँह में पान की लाली हाथ में काँच की चूड़ियाँ। इस तरह की औरतें बहूबाज़ार मे बहुत हैं। मैंने पूछा—'तुम कौन हो—और आगे बढ़ा! उसने जवाब दिया—'मैं यहाँ की आढ़त की मालकिन हूँ।'

इसी समय एक लड़का बाहर आया। देखते ही मैंने पहचान लिया कि वह हारू है। हँसकर मैने कहा—'अरे हारू पहचानता है! तेरी माँ कहाँ है? पता नही, उसने मुझे पहचाना या नहीं, लेकिन हँसकर बोला—'अन्दर आइये, माँ खाना पका रही हैं।' आगे बढ़कर मैंने कहा—तेरी दीदी कहाँ है? दीदी अभी आती होंगी, बाहर गई हैं। आप आइये न?'

बारह बज गये थे लेकिन अभी तक इस घर का खाना नही ख़त्म हुआ था। दरिद्रता के साथ असभ्यता और अशिक्षा मिलकर घर का क्या हाल कर देती है, इससे पहले ऐसा कभी मैंने नही देखा था। गन्दगी और सीत की दुर्गन्ध पहले ही मेरी नाक मे भर गई थी। इधर नाली, उधर नल, एक तरफ झाड़ू, दूसरी तरफ हाँडी, कोयला और जली लकड़ियों का ढेर था। फटा टाट टाँगकर पाखाना और नल के बीच में आबरू ढाँकने की कोशिश की गई थी। बुआ के समान शुद्धाचारिणी महिला ने किस तरह आकर इस नरक कुण्ड मे आश्रय लिया, इसका मुझे बिलकुल विश्वास नही हो रहा था। मेरा हृदय घोर अशान्ति से भर उठा। रसोई की जगह बुआ आकर मिली। सहसा विस्मय से भर कर देखा कि वे चटाई पर एक कलई की कटोरी मुँह से लगाये चाय पी रही हैं। मुझे देखकर बोलीं—अरे, नलिनाक्ष है क्या? कब आया?'

पर मै तो उनको चाय पीते देखकर पल भर के लिये स्तम्भित हो गया। बुआ निष्ठा से रहने वाली हिन्दू घर की विधवा थी। जिन्हें, स्नान, ध्यान, पूजा, गंगास्नान, दान आदि में लगी एक बड़े परिवार की महान प्रतिपालिका के रूप मे चिर दिन से देखता आ रहा था। पर तीन वर्ष में उनका यह परिवर्तन, माँस के रसोई घर में कलई की कटोरी मे वहीं बैठी चाय पी रही है?

मैंने कहा—'बुआ प्रणाम करने के लिये पैर छूने देगी?'

पैर बढ़ाती हुई बुआ बोलीं—'कलकत्ते में आये हमें कई महीने हो गये। तुम्हें खबर ही न दे सके और भैया आजकल कौन किसकी खबर रखता है? चारो ओर हाहाकार मचा हुआ है।'

मैं ज़रा परेशान होकर बोला—'बुआ, आपके माहवारी रुपये मैं नियमित रूप से भेजता रहा। पर आज छः महीने हो रहे हैं आप लोगों की कोई खोज ख़बर नहीं है।

'ख़बर तो अब हम किसी को देते नहीं नलिनाक्ष।'

बुआ का कण्ठ-स्वर जैसे उदासीन और अवहेलना से भरा पाया। कभी मैं उनके अत्यन्त स्नेह का पात्र था। किन्तु आज वह मेरे इस अप्रत्याशित आ जाने से खुश नहीं हुईं, यह उनकी आँख और मुँह देखते ही समझ गया।

'हाँ जी दीदी!' कहते-कहते वह पहले वाली औरत आकर हँसती हुई खड़ी हो गई। बुआ ने मुँह उठाया। उसने फिर कहा—तुम बाज़ार जाओगी या मैं ही चली जाऊँ। बहूबाज़ार में आज ताजी बड़ी-बड़ी मछलियाँ आई हैं—खूब फड़फड़ा रही है।'

उसकी लार भरी जीभ की ओर देखकर बुआ का मुँह बिल्कुल विवर्ण हो गया। वे बोली; 'विनोदवाला, तुम इस वक्त जाओ।'

ऐसे उत्साहजनक समाचार से निरुत्साहित होकर म्लान मुख किये विनोदवाला वहाँ से चली गई। बुआ बोली—'नलिनाक्ष, तुम्हें क्या बहुत जल्दी है?'

'कुछ खास तो नहीं है।' कहकर मैं हँसा—'आज के दिन मैं आपके यहाँ ही रहूँगा। यह सोचकर आया हूँ।'

'अच्छा ही तो है। पर मालूम है भाई कि खाने-पीने की भी तकलीफ है—कहते-कहते बुआ ने चाय पीकर कटोरी रख दी। मेरे रहने की बात से उनमें कुछ आनन्द या उत्साह नहीं दिखाई पड़ा।
मैंने पूछा—'शोभना कहाँ है बुआ?'

'वह अभी आती होगी। शायद उस घर में गई है।'

थोड़ा असन्तोष दिखाकर मै बोला—'आजकल क्या वह अकेली घर के बाहर जाती है?'

बुआ बोली—'नहीं तो! फिर भी बीच-बीच में दूकान से नमक, तेल तो लाती ही है। विनोदबाला साथ चली जाती है।

बुआ ने अपनी बात की जिम्मेदारी नहीं समझी। किन्तु एक विचित्र मनोविकार से मेरा सर झुक गया। मैने पूछा—'शोभना का लड़का कहाँ है? कितना बड़ा हुआ?'

बुआ ने जवाब दिया—'उसके चचेरे जेठ ने लड़के को हमारे पास नहीं छोड़ा। अपने लड़के को वे ले गये।'

'यह क्या बुआ? इतना सा बच्चा माँ को छोड़कर रह सकेगा? और शोभना क्या रह सकेगी?'

'क्यों नहीं, भला बताओ तो? रुपये का दो सेर भी तो दूध नहीं मिलता। बच्चे को क्या खिलायेंगे? अपनी ही हाँडी कितने ही दिन नही चढ़ती। बीमार पड़ने पर दवा नहीं। साड़ी के गोटे का दाम बारह चौदह रुपया है। बाज़ार में चावल मिलता नही। और कितने दिनों मुँह बन्द किये सहते रहें नलिनाक्ष? क्या भीख नहीं माँगी। वह भी किया। रात को निकल मान खोकर हाथ फैलाया!'—कहते-कहते बुआ ने साँस छोड़ी। फिर बोली—'कही किसी ने हमारे खाने-पीने की ख़बर न ली नलिनाक्ष!'

बड़े आर्त्त कण्ठ से मैं बोला—'बुआ, टूनू वगैरह का भी यही हाल है। आज सभी मरने को बैठे हैं, इसी से कोई किसी की ख़बर नही ले पाता है। टूनू से ही आपका पता लगा।

बुआ अभी बैठी थीं, इसीलिये इतना ध्यान नहीं दिया। इस बार उनके उठकर खड़े होते ही उनके तार-तार कपड़ों को देखकर मुँह फेर लिया। वे बोलीं—इस घर का पता और किसी को मत बताना भाई।'

इसी समय मीनू आकर दरवाजे के पास हँसती चंचल मुँह लिये खड़ी हो गई और बोली—'माँ, माँ, सुनती हो? यह लो एक धेला हरीश बाबू ने दिया है।'

मीनू के सर के बाल बिखरे और बदन पर का कपड़ा झिरझिरा था। मुँह लाल और गले की आवाज़ उत्तेजना से काँप रही थी। अत्यन्त अधीर भाव से वह फिर बोली—'जोगिन मास्टर ने कहा है—जानती हो क्या? आज रात को जाने से आठ आने दे सकेंगे।'

बुआ ने अलक्ष्य भाव से एकबार मेरे मुँह की ओर देख झमक कर कहा—'दूर हो यहाँ से हरामज़ादी। झाड़ू से तेरा मुँह तोड़ दूँगी।'

मानो एक फुसकार से मीनू डर-सी गई। माँ का मिज़ाज़ देखकर सामने से हटने का उपक्रम करती हुई बोली—'तुमने ही तो कहा था न?'

उधर से हारू चीख उठा—'फिर झूठ बात कहती है मीनू? अभी तुझसे किसने जाने को कहा था? माँ ने तुझसे रात को कहा था न?'

बुआ ने घबराये हुये कहा—'नलिनाक्ष, तुम तो बड़े अचानक आ गये भाई, इस वक्त बड़ी गड़बड़ है, तुम कमरे में बैठो।'

धीरे-धीरे मै कमरे के भीतर जाकर तख्त पर मैले बिछौने पर बैठ गया। गले में बार-बार जाने क्या उठ रहा था। उसका प्रवृत्त स्वरूप

मैं किसी भी तरह न समझा सकूँगा। मैं इसी परिवार का आदमी हूँ, इन्ही लोगो में से एक इसी आत्मीय परिवार में मेरा जन्म हुआ और आज मनमे हो रहा है कि मै यहाँ के लिये नया, अपरिचित और बिना बुलाया आदमी हूँ। जो मेरी बुआ थी, बहिन थी, जिन्हे हमेशा से अपना कहकर जानता आया— यह लोग वह नही हैं, यह बहूबाज़ार की विनोदबाला के सहवासी हैं। यह पहले के उस सम्भ्रान्त परिवार की प्रेत मूर्तियाँ हैं।

खिड़की खुली है, यह ख़याल न रहा। बहूबाज़ार के रास्ते का एक हिस्सा यहाँ से दिखाई पड़ रहा था। वहाँ असख्य गाड़ी और सवारियों का ताँता—ट्राम, बस, मोटर, बैलगाड़ी और पल्टन की रेलपेल के बीच मौत के मुँह मे जाने वाले अकाल-पीड़ितो का आर्त्त स्वर सुनाई पड़ रहा था। टूटी-फूटी गिरस्ती को घेरे कगाल बैठे थे, परित्यक्त शिशुओं का कंकाल मृत्यु की आशा मे गो-गों कर रहा था। वे औरतो की खुली छातियो पर अन्तिम भूख की बची प्रार्थना के समान रास्ते की नाली मे पड़े थे।

खिड़की बन्द कर मुँह फेरने ही वाला था कि हारू और मीनू का रोना सुनाई पड़ा. बुआ लकड़ी का एक चैला लेकर हटात् उन्हे मारने लगीं। उठकर यह कहने की इच्छा हुई कि उन लोगो का कोई अपराध नही है। निरपराध को अपराधी बनाने का जो षडयन्त्र तैयार हुआ है उसमे ये सब आ फँसे हैं। किन्तु उठकर बाहर जाने के पहले ही कल कंठ की हंसी सुनाई पड़ी। वह हँसी और पास आ गई। कमरे के पास विनोदबाला के साथ शोभना को आते देखा, मेरे बुलाते ही वह मानो आतंकित हो उठी। कमरे के पास आकर बोली—'मेरे छोटे भैया! तुम्हें कैसे पता लगा?' मैंने कहा—'ऐसे ही ढूँढकर चला आया। तू कैसी है?' इस समय शोभना ने अपनी ही आँखो में अपना

मुँह देखा। घबड़ाकर बोली—'मुझे उम्मीद नहीं थी कि तुम मेरा ठिकाना खोज सकोगे।' मैं बोला—'लेकिन मुझे देखकर तुम खुश तो नहीं हुईं!'

शोभना चुप रही। मैंने फिर कहा—'इतने दिन बाद तुझ से मुलाकात हुई। कितने देश घूमे। दिल्ली मे कैसा था, यही सब बात-चीत करने आया। तूने अपने लडके को भेज दिया, रह सकेगी?'

'न रह सकने से कैसे चलेगा, छोटे भैया?'

इधर-उधर देखकर मैं बोला—'लेकिन यह घर तो ऐसा अच्छा नही है। तुम यहाँ कैसे रहते हो, शोभा?'

'यहाँ हमे किराया नहीं देना पड़ता।'

आश्चर्य से मैंने कहा—'किराया नहीं देना पड़ता? ऐसा दयालु कौन है रे?'

शोभना ने कहा—'यह जिसका घर है उस भले आदमी ने हमारी अवस्था पर दया करके रहने दिया है।

'आजकल के बाज़ार मे ऐसी दया दुर्लभ है।'

शोभना ने कहा—'उनके कोई नही है। अकेले रहते हैं, इसीलिये—शायद विनोदबाला ने आड़ से हाथ का इशारा करके बुलाथा। उस तरफ मुँह उठाकर शोभना चली गई। पाँच मिनट बाद जब फिर वह आयी तो देखा कि जाल की तरह पतली साड़ी उतार कर शोभना एक मोटी पाड़दार धोती पहन आई है। मै बोला—'शोभना तूने मकान बदल दिया। मुझे लिख सकती थी।'

'जानबूझ कर पता नहीं दिया, छोटे भैया।'

'लेकिन माहवारी रुपया लेना क्यों बन्द कर दिया रे?'

ज़रा रुककर शोभना बोली—'लड़के ही के लिये तुम्हारे आगे हाथ फैला के लेकिन अब, अब वह लड़का तो नहीं है। अब वह हमारा नहीं है। इसीलिये रुपया लेना बन्द कर दिया।,

मैंने पूछा—'तुम लोगो का कैसे चलता है?'

शोभना ने कहा—'तुम आज आये हो, आज ही चले जाओगे, फिर यह बात क्यों! सुनना चाहते हो, छोटे भैया?'

चुप रह गया। यह बात सुनने का मेरा अधिकार नहीं है। खोदकर जानने की ज़रूरत नही। बोला टून्नू कहाँ है?'

'वह लोहे के कारखाने में नौकरी करता है। पच्चीस रुपये पाता है। हर हफ्ते कुछ दाल चावल ले आता है और आजकल नशा करना सीखा है। हर रोज़ घर भी नहीं आता।'

मैंने कहा—'यह क्या? टून्नू सा अच्छा लड़का और वह ऐसा हो गया? हारू का लिखना पढ़ना भी तो बन्द है। वह आजकल क्या करता है?'

शोभना ने सिर झुकाकर कहा—'इसी रास्ते के मोड़ वाली चाय की दूकान में हारू को काम मिल गया था, लेकिन एक दिन बहुत सी खाने की चीज़ें चोरी जाने से उसकी नौकरी छूट गयी। आजकल खाली बैठा है।'

इस बार स्वभावतः बात शोभना पर आकर रुक गई। लेकिन मैं अस्थिर हो उठा। घुमा फिराकर बोला—'पर शोभना, एक बात मुझे अच्छी नही लगती। कुछ भी हो मीनू अब थोड़ी बड़ी हो गई है, उसको जब-तब बाहर जाने देना अच्छा नहीं। घर में तरह-तरह के लोग रहते हैं। समझती है, न?'

बाहर जूते की चरमर सुनाई पड़ी, देखा, अधमैला कुरता पहने एक आदमी एकदोने मे खाने की चीजे हाथ में लिये भीतर आया। सिर पर छोटे-छोटे बाल, बिदरी दाढ़ी-मूछे। उम्र ज्यादा नहीं होगी। आकर बोला—'विनोद कहाँ गई? मेरे कमरे मे एक लोटा पानी दे दो। हाय भाग्य! खाने का दोना हाथ मे दिखाई पड़ने से खैरियत नहीं। कुत्तो की तरह आदमी औरत पीछे लग जाते हैं, मानो झपट्टा मारकर छीन लेंगे। पके आम का छिलका नाली मे से निकाल कर चूसते हुए देख आया हूँ अच्छा, पानी ले आयी? दो? इस अकाल में चार अवस्था देखी। समझी विनोद! अगर दो दाने चावल मिल जायें तो पहले तो झोली लेकर भीख। उसके बाद कहीं से थोड़ा सा भात मिल जाय तो टूटी कलई की थाली अगर कोई थोड़ा-सा माँड़ दे दे तो उसके बाद हाथ मे हाँडी। और अब, सिर्फ रोना। कहीं कुछ नही मिलता। अरे, मिलेगा कहाँ से? गृहस्थ ही तो माँड़ पी रहे है। चलो दो कचौड़ी चबाकर पड़ रहे।' कहते-कहते वह आदमी भीतर की ओर चला गया।

मेरी जिज्ञासु दृष्टि देखकर शोभना बोली—'यह यहाँ के किसी स्कूल मे मास्टर थे, आजकल नौकरी नहीं है। रसोई घर के पास उस कोठरी में रहते हैं।

अकेले रहते हैं या घर बार के साथ!'

'नहीं, जब कमाते थे तब उनके सभी थे। उसके बाद बड़ी लड़की कहीं चली गई। स्त्री ने आत्महत्या कर ली। दो लड़के मामा के घर हैं। छोटे भैया, बता सकते हो, और कितने दिनों इस क़दर जिन्दा रहना होगा? यह लड़ाई क्या कभी रुकेगी नहीं?

जवाब देना मेरी सामर्थ्य के बाहर था। सान्त्वना देने का भी कुछ नही। शोभना की तरफ नज़र गड़ाकर देखा। उसकी आँख के नीचे

काले दाग, सिर के बाल रूखे और विवर्ण, पतले-पतले हाथों में नसें उठी हुई रक्तहीन और कान्तिहीन मुख, मानो उसके तमाम बदन पर मानो युद्ध के दाग़ हों ! मानो देशव्यापी अकाल के अपमानजनक चिन्ह उसने आँख और मुँह पर रख छोड़े थे। उसकी बात और कण्ठस्वर मे मानो आत्मद्रोह की चिनगारियाँ दिखाई पड़ी। पहले की शान्त और चरित्रवती शोभना—मेरी छुटी बहिन—आज मानो असन्तुष्ट अग्नि शिखा की तरह लपलपा रही हो। मेरी कोई भी सान्त्वना कोई उपदेश सुनने के लिये तैयार नही। लेकिन मेरे अतृप्त कौतूहल ने मुझे किसी तरह चुप न रहने दिया। बोला—'शोभा, यह तो मानती है कि हमारे सामने चरम परीक्षा के दिन है। चारो ओर इस ध्वंस के चक्कर मे हमे रखना ही पड़ेगा, जैसे भी हो अपना मान, सम्भ्रम बचा कर—।'

मान-सम्भ्रम ? शोभना मानो आर्त्तनाद कर उठी—'कैसा मान-सम्भ्रम, छोटे भैया ? इससे पहले सब कुछ हृदय की अग्नि से सहते थे, अब तो पेट की आग में सब खाक हा गया। कौन कहता है कि प्राण से मान बड़ा है ? भूखे अगर तिल-तिल कर मर जाये, यदि पेट पापी की ज्वाला मे भगवान से मुँह मोड़कर आत्महत्या कर ले, अगर तुम्हारी भूख से मरी माँ बहिनों की लाशो को चाण्डाल घसीट कर बाहर करे, क्या तब तुम्हारा मान सम्भ्रम बचा रहेगा ? जिन्होने हमें नही बचने दिया, जिन्होने मुँह का कौर छीनकर हमें मारा, जिन्होंने हमारे कलेजे का ख़ून चूसकर पिया उनका कौन-सा मान सम्भ्रम बढ़ गया। जाओ, घर घर जाकर पता लगाओ। कंगालो की बात छोड़ो। गृहस्थों के घर में जाकर देखो। कितनी माताओ के लाल दो दाने के लिये मर मिटे। कितनी बहन, मौसी, बुआ और भावज पर्दे में बैठकर एक कपड़े के लिये आँसू बहा रही हैं। अँधेरे में गमछा और बिछौने की फटी चादर लपेट कर कितने ही स्त्री-पुरुष दिन बिता रहे हैं जानते

हो ? बासी माँड़ को नमक से खाकर कितनी लज्जावती स्त्रियाँ ज़िन्दा रह रही हैं, सुना है ? मान सम्भ्रम अपने लिये ही क्या रह गया, छोटे भैया ?'

सप्रतिभ लज्जावती निरीह शोभना को इतने दिनों से देखता आ रहा हूँ। उसके मुख की इस उत्तेजना से मानो मेरा सिर झुक गया। मैं बोला—'लेकिन कन्ट्रोल की दूकान में अनाज-कपड़ा सभी तो मिलता है। तुम्हें वैसी कोई सुविधा नहीं ?

शोभना ने मेरे मुँह की तरफ एक बार देखा। ताकते-ताकते उसके गले में पके माँड़ के फेन की तरह वमन वेग में जैसे हँसी फूट पड़ी। सूखे मुँह पर सहसा हँसी की यन्त्रणा फूट पड़ी। शोभना हा-हा कर हँसने लगी। वह हँसी वीभत्स, उन्मत्त, निर्लज्ज और अपमानजनक भी थी। मेरा निर्बोध कौतूहल स्तब्ध हो गया बुआ से मार खाकर मीनू और हारू खिड़की पर झुके फूट-फूटकर रो रहे थे। सहसा उनकी तरफ देखकर शोभना चिल्ला कर बोली—'क्यों, रो क्यों रहे हो ?' सामने से हट आओ।

विनोदबाला जाने कहाँ थी, वहीं से गला फाड़कर बोली—'मौसी ने उनको मारा है। उस घर के हरीश बाबू से मीनू पैसा लाई थी न। शायद हारू ने यह कह दिया है। इसीलिये—'

लगा कि शोभना के सिर पर आग रख दी गई हो धमककर बोली—'ज़रा सुनूँ तो तुमने उन्हें क्यों मारा ?'

बुआ नल के पास से बोलीं—'मारेंगे नहीं। दोनों कलंक की बातें कर रहे थे। इसलिये खूब पीटा। अच्छा किया।'

'लेकिन उन्हें मारकर क्या कलंक मिटा सकोगी ?'

बुआ चिल्ला उठी—'तेरी बात बहुत हो चुकी शोभा। शरीर की आग ऐसी क्यो है?' दिन-रात इतना बड़बड़ाती रहती है। अभागी तू ही है। मान खो दिया, उसमें क्या मेरा दोष है?' अपने पेट के बच्चो को मै मारूँगी। ख़ून करूंगी। जो मनमे आयेगा करूंगी। बीच मे बोलने वाली तू कौन?'

शोभना गरज उठी—'पेट की लड़की तुम्हारे पेट के लिये खाना जुटाती है। उसमे तुम्हे शरम नही? मार मारकर मीनू के बदन पर निशान कर दिये। यही तुम्हारी समझ है?—एक शङ्क ही तो रह गई है, उसके बाद घर का खर्च कहाँ से चलेगा? तुम्हे शरम नही आती?'

हाँ, मै सरे बाज़ार पोल खोल दूंगी शोभा! यह कहकर बुआ बढ़ आयीं। ज़ोर से बोली—'नलिनाक्ष बैठा है, इसीलिये चुप रही थी, कहूँ? फरीदपुर के घर से बैठे-बैठे, विनोदबाला का पता किसने लगाया? तूने गाड़ी का किराया किससे लिया था?'

शोभना और भी ज़ोर से बोली—'तो अब मै कहती हूँ। मास्टर को इस घर मे किसने लाकर रखा! हरीश, जोगेन वगैरह के पास मीनू को किसने भेजा! मुझे किरानी बगान के घर मे कौन पहुँचाया। जवाब दो! बोलो? होटल की पावरोटी और हड्डी का टुकड़ा चुरा लाने के लिये तुम हारू से नहीं कहा था? टूनू ने क्यों आना छोड़ दिया था?

'मुँह संभाल कर बोल शोभा!'

इसी समय विनोदबाला झगड़ा मिटाने के लिये बीच में आ खड़ी हुई। माँ और बेटी का यह अद्भुत अविश्वासनीय अधःपतन देखकर मैं और स्थिर न रह सका। उठकर बाहर चला आया। बोला—

'बुआ, आप स्नान करने जायें। शोभा, भाई तू ही चुप रह। इस दशा के लिये किसे दोष देगी। तेरा, हमारा, बुआ का—हारू, मीनू, विनोदबाला, मास्टर साहब और हरीश के दल का—किसी का भी दोष नहीं है; लेकिन जिनका अपराध है, वे हमारी पहुँच के बाहर हैं, शोभा! होगा। अभी तो मै चलता हूँ। फिर कभी आऊंगा।'

शोभना ने रोकर कहा—'छोटे भैया, अब तुम मत आना।'

मैने एक बार हँसने की कोशिश की और कहा—'पगली कहीं की!'

बुआ बोली—'इस गड़बड़ मे तुम्हें कुछ खाने-पीने को भी नही पूछा, भैया नलिनाक्ष! बुरा न मानना।

विनोदबाला ने कहा—'चलो बहुत हो गया। अब नहा धोकर तैयार होओ, गलेबाज़ी करने मे तो पेट भरता नहीं। जिससे पेट भरे वह करो। मैं क्या पहले से जानती थी कि तुम भले घर की हो, नहीं तो इतनी परेशानी मे हाथ नही डालती।'

अपमानित मुख से पल भर के लिये विनोदबाला की ओर आँख उठाकर आग बरसाते हुये मै चुपचाप बाहर चला आया। पातालपुरी के सुरंगलोक की दम घोटने वाली गन्दी हवा से मुक्ति लेकर मै सड़क पर चारो ओर फैले हुये मरने वालो के आर्त्तनाद में आ खड़ा हुआ। यह कहीं अच्छा है। इन अनगिनत भूखो का रोना चारो ओर व्याप्त रहने पर भी एक विचित्र दयाहीन, करुण उदासीन भाव इसको ठेल कर भी रहता है। लेकिन जहाँ तुच्छ मन की अपवित्रता है, वहाँ अकाल पीड़ित भूखो का मार्मिक आर्त्तनाद है, जहाँ निरुपाय अनीति की गुफ़ा में रहकर पीड़ित मानव-आत्मा हीनता के अन्न पर पलती है, उसकी चरम वीभत्सता का रूप देखकर आतंक से दम घुटने लगता है।

लेकिन ये लोग कौन हैं ? उसी फरीदपुर के घर में फूल और साग भाजी से घिरे घर मे रहनेवाली आचारवती, मातृरूपिणी बुआ, ताजे खिले फूल की तरह लजीली बहन शोभा, बँधी हुई कली तरह निष्पाप और निष्कलंक हारू; टूनू और मीनू—क्या ये वही लोग हैं ? किस तरह से एक सुखी परिवार नीति भ्रष्ट हो गया ? मौत से पहले उन लोगो के मनुष्यत्व की अपमृत्यु कैसे हो गई। कौन दयाहीन दस्युता इनके लिये उत्तरदायी है ? इन कई महीनो का रुपया तो मै अनायास ही खर्च कर सकता हूँ। इन लोगो को इस अवस्था में छोड़कर चुपचाप दिल्ली नही जा सकता।। शाम को तमाम दूकानो से घूम-घूमकर कुछ खाने का सामान जमा किया। दस गुना दाम देकर चावल और पचगुना दाम देकर बाकी खाने की चीजे़ इधर-उधर से खरीदने लगा। खरीदते खरीदते अँधेरा हो गया। यह सावन का अँधेरा पाख था। बूँदा-बाँदी करके वारिश हो रही थी। हल्के उँजाले में कलकत्ते की सड़के पार करते हुये एक गाड़ी में सामान रखकर फिर शोभना के यहाँ चला। अपनी उदारता का कोई गर्व नहीं था। इसके विपरीत खाने के तमाम सामान से घृणा हो रही थी। आज भोजन ने जीवन के सब प्रश्नो को दबा दिया है, यह समझ कर ही खाने के प्रति इतनी घृणा हो आई। यह सब सामान लोगों ने नीचे तलो में छिपाकर रखा था। आज वही मानो सिर पर चढ़कर अपनी जाति च्युति का बदला सबसे ऊपर होकर ले रहा है। दुर्गम रास्ते पार कर इसीलिये बहूबाज़ार के घर के दरवाजे पर आ हाज़िर हुआ। बड़ी मेहनत के बाद दो हीन लोगों की मदद से उसे सँकरे रास्ते के एक किनारे लगा रखा।

तीन महीने के खाने लायक़ सामान ख़रीद लाया था। सामान सँभाल कर लोगों को बिदा किया।

अन्दर कहीं एक मिट्टी के तेल का चिराग़ जल रहा था। उसी की रोशनी की एक किरण मेरे शरीर पर आकर पड़ रही थी। नल के

पास स्त्री के कंठ के साथ मिली हुई स्कूल मास्टर की आवाज़ सुनाई पड़ी। उसके सिवा, मृत्युपुरी के समान सब निस्तब्ध था। मैं कई क़दम आगे बढ़ा, पुकारा, मीनू! हारू!'

कोई जवाब नहीं। दोपहर को जिस कमरे में मैं बैठा था वह भीतर से बन्द था। मैं समझा कि थक कर बुआ वग़ैरह सो गई हैं, मैंने फिर पुकारा।

बाहर से शायद मेरी आवाज़ पहचानी नहीं गई, अन्दर से शोभना ने जवाब में कहा—'अरे दिन रात तुम्हारी इतनी आवाज़ ही किस लिये है? मीनू उस घर में गई है। आज उसे नहीं पाओगे। जा अभागे, चमार!

मैंने कहा—'अरे शोभा मैं हूँ। मैं हूँ, छोटा भैया, और कोई नहीं है। दरवाजा खोल।

'छोटे भैया!'

शोभना फौरन दरवाज़ा खोलकर मेरे पैर के पास बैठ गई। रुँधे हुये गले से बोली—'छोटे भैया' पेट की आग में हम नरककुण्ड में उतर आये हैं। माफ़ करो तुम्हारी आवाज़ मैं पहचान नहीं पाई।'

शोभना का हाथ पकड़ कर मैंने उठाया। बोला—'चुप रहो रोओ मत। तुम अकेली ही नहीं हो। लाखों परिवार इसी तरह मर रहे हैं। हिम्मत हारने से काम नहीं चलेगा। इसी तरह इस अवस्था को पार करना होगा, शोभा। सुन, कल ही मैं दिल्ली जा रहा हूँ। इसीलिये हड़बड़ी में तेरे लिये कुछ दाल चावल खरीद लाया हूँ। उसे उठाकर रख ले।'

'दाल चावल लाये हो?'

दुर्बल शरीर की उत्तेजना में शोभना सिहर उठी। क्षुधा तृप्ति की कल्पना से एक तरह का विकृत, उग्र और असक्त उल्लास उसके

कंठस्वर में काँपने लगा। रुँधे गले से बोली—'तुमने बचा लिया, छोटे भैया! तुम्हारा ऋण मैं किसी दिन नहीं चुका पाऊँगी।' यह कह मेरी छाती पर सिर रखकर चिर दिन की मेरी बहन फूट-फूटकर रोने लगी।

मै बोला——'उसके साथ नये कपड़ो की एक पोटली है, उसको पहले अलग कर लो, शोभा।' और तब असीम तृप्ति से कपड़ो की पोटली उठाकर घर के अन्दर चौकी के नीचे रख आई। बोली—याद है, कोरा कपड़ा पहन कर लोगो के सामने आना हमारे लिये कितनी शरम की बात थी? दूकान से दाल चावल आने पर तो छिपा देती, ताकि कोई यह न समझता कि हमारे यहाँ खाने को कुछ नही था। याद है, छोटे भैया?

मैं हटाकर बोला—'सब याद है, रे।

शोभाना ने करुण कण्ठ से कहा—'छोटे भैया, तुम बता सकते हो कि यह अकाल कब ख़त्म होगा। सब कहते हैं कि नया धान होने पर फिर हमें भूखा नहीं रहना पड़ेगा।

उसका आर्त्त कण्ठ सुनकर मैं चुप रह गया, क्योंकि सरकारी नौकर होने पर भी भीतरी बाते मुझे बिल्कुल भी न मालूम थी। शोभना ने फिर कहा—'फरीदपुर का वह बड़ा-सा खेत तुम्हें याद है? याद करो। उस खेत मे आमन के धान की सुनहली बालियाँ पक गई होंगी। हवा में उनके सिरे आनन्द से झूम रहे होंगे। हरेक खेत में किसानों का झुण्ड गाते हुए उस धान को काटता होगा। उस लक्ष्मी को गठरी में बाँधकर वे घर लाते होगे। याद आता है?'

शोभना की स्वप्निल आँखे शायद सुनहरे बंगाल के खेतों पर एक बार आई। लेकिन मै मिट्टी के तेल की रोशनी मे इस नरककुण्ड के सिवाय और कुछ न देख सका। केवल साँस छोड़कर बोला—'खूब याद है।'

लेकिन छोटे भैया, यह क्या सुन रही हूँ! शोभना ने मेरे मुँह की ओर घूमकर देखा। डरी हुई आँखे उठाकर फिर बोली—'लम्बे-लम्बे कागज़ खोलकर क्या वह लोग हमारी फटी छाती का ख़ून फिर चूस लेंगे? नये अनाज़ के बाद क्या फिर हमारा घर कंगाली के रोने से भर जायगा, क्या तुम बता सकते हो?'

कुछ जवाब देने ही वाला था कि सहसा बाहर किसी के पैर की आवाज़ पा शोभना ने आतंक से चौंककर अंधकार की ओर देखा, उसके बाद काँपते हुये अधीर गले से बोली—'छोटे भैया, अब तुम जाओ। बहुत रात हो गयी है। ज़रूर नौ बज गये होंगे। मुझे याद नहीं रहा। ज़रूर नौ बज गये होंगे। अब तुम जाओ छोटे भैया।'

'यह सब ठीक से रख लो।'

रखूँगी ठीक से रखूँगी—दाल चावल का एक-एक दाना गिन-गिन कर रखूँगी लेकिन अब तुम जाओ छोटे भैया। रोशनी दिखाये देती हूँ। ज़रा भी देरी मत करो। मेरे अच्छे छोटे भैया!'

शोभना, चंचल, उद्दाम होकर एक तरह से जैसे ही मुझे खींचकर बाहर करने लगी, वैसे ही एक आदमी चावल दाल के गट्ठर से ठोकर खाकर भीतर आ खड़ा हुआ। बिल्कुल शरीर पर गिरता हुआ बोला—ओह नया आदमी देखता हूँ! दाल चावल लाकर बिल्कुल नगद कारबार!'

उसके बदन पर एक ख़ाकी कमीज़, सारे शरीर मे नशे की बदबू! मैंने पूछा—'तुम कौन?'

मैं कारखाने का भूत हूँ, सर, यह कहकर एकाएक शोभना का हाथ पकड़कर कमरे की तरफ़ खींचता हुआ बोला—'चलो एक बात है।'

बात कुछ नहीं है, छोड़ो, कहकर शोभना ने अपना हाथ छुड़ा लिया।

'अच्छा!' उस आदमी ने भौंह टेढ़ी कर कहा—'कल रुपया पेशगी दिया था या नही?'

रुँधे गले से शोभना बोली—'कहे देती हूँ घर से निकल जाओ।'

'वाह!' निकलने ही के लिये शायद डेढ़ मील से पैदल आया हूँ! अच्छी बात बता रही है, पगली।'

चीख़कर शोभना बोली—'कहती हूँ, जल्दी निकल जाओ, चले जाओ, कमरे से दूर हो जाओ।'

आदमी ने शायद तख्त के ऊपर बैठने की कोशिश की। हँसकर बोला—'मालूम पड़ता है आज फिर ख़याल हो गया।'

शोभना आर्त्तनाद कर उठी—'छोटे भैया, तुम खड़े-खड़े यह सब देख रहे हो? इस अपमान का क्या कोई प्रतिकार नहीं? ठहरो, आज ख़ून करूँगी।'

कहते-कहते वह झपटकर रसोई घर की तरफ़ चली गई। इस बार वह आदमी उठकर बाहर गया, बोला—'महाशय, इस तरह यह औरत कई बार ख़ून कर चुकी है। समझे? असल में लड़की ख़राब नहीं है, लेकिन ऊँचे ख़याल की है। और फिर आप जानते हैं सर, हम लोग ठहरे ज़रूरी काम-काज के आदमी। लोहा लक्कड़ से कार करते हैं। औरतों का मिज़ाज, फ़िज़ाज़ इतना नहीं समझते। यह लोग समझती हैं कि बाबू मार्का लोगों को तरह-तरह से चकमा दे सकती हैं।

इसी समय एक लोटा हाथ में लिये शोभना पागल की तरह झपटी हुई आई। बुआ घबड़ाकर दौड़ीं, हारू लपकता हुआ आया। वह आदमी शान्त स्वर में बोला—'अच्छा, अच्छा, ख़ून नहीं करना होगा। शायद आज ख़याल का भूत सिर पर चढ़ा है। अच्छा तो चला जाता हूँ।'

विनोदबाला और बुआ ने दौड़कर शोभना को पकड़ लिया। वह आदमी फिर स्थिर स्वर मे बोला 'अच्छा यही ठीक है। उस रात की तरह आज विनोद के घर रहूँगा। लेकिन आधी रात को मुझे पुकार कर ज़रूर बुला लेना, नहीं तो मुझे किसी तरह नींद नहीं आयेगी, कहे देता हूँ। अच्छा ठीक। और नहीं तो कल ढ़ाई सेर चावल ही दे जाऊँगा। विनोद क्या तेरे घर चलें। कहते हुये विनोद-बाला का हाथ खींचकर स्कूल मास्टर के कमरे की तरफ़ चला गया। शोभना सहसा मेरे पैर पर लोटकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। बोली—'कब, छोटे भैया, यह राक्षसी लड़ाई रुकेगी, तुम बता जाओ! बता जाओ, कब इस अपमान का अन्त होगा? हमारी मौत के और कितने दिन हैं?'

आहिस्ता-आहिस्ता मैंने पैर छुड़ा लिया। शोभना के हृदय का ख़ून फिर उबल पड़ा बोली—'तुम जहाँ जा रहे हो, वहाँ अगर आदमी रहते हों तो उनसे कह देना, हम इस लड़ाई को नहीं रोक रहे हैं, हम अकाल नहीं लाये, हमने पाप नहीं किया, हम मरना नहीं चाहते।'

शोभना के रोने से सब रोने लगे। मैं निरुत्तर और अन्धे की तरह टटोलते-टटोलते बाहर रास्ते पर आ गया। अन्धकार में कहीं कुछ दिखाई नहीं देता था केवल अन्धकार, अनन्त अन्धकार। मनमें

केवल आया, अँगारे की आग जल-जलकर जिस तरह निस्तेज हो जाती है उसी तरह इस महा नगरी के भूख से थके कँगले चारों ओर रास्तों पर, नाले-नालियों में पड़े हुये मृत्यु की पदध्वनि कान खोले सुन रहे हैं।

श्रीमती कमला त्रिवेणी शंकर

उसकी भोली आँखों ने उस कलुषित निमंत्रण पर जाने कितने आँसू गिराये।

# अपराध

"माँ !···भूख लगी है, माँ !" एक साथ कई बच्चे बोल उठे ।

चूल्हे पर चढ़ी पतीली में मुश्किल से पाव भर चावल डेढ़ सेर पानी में उबल-उबल कर पक रहा है। अलका बैठी बच्चों को बहला रही है।

बड़ी लड़की शैवाल कुछ और निकट आकर बोली—" माँ, बर्तन ले आऊँ ?"

"अरे, पक तो जाने दे !···बाबू जी को आ जाने दे !" अलका खीझकर बोली—"बड़ी जल्दी पड़ी है तुझे ही !"

लड़की सकुचा गई। अपने सूखे होंठों को जीभ से भिगोती हुई बोली—"अपने लिये नहीं, माँ, दीनू, रतन, विभूति इन लोगों के लिये ! देखो न, वे भूख से चिल्ला रहे हैं सब !"

माँ बोली नहीं, चुपचाप चूल्हे की आँच ठीक करने लगी। फिर छोटे बच्चे को उठाकर दूध पिलाने लगी। बाकी बच्चे माँ की गम्भीर आकृति देखकर फिर साहस न कर सके कुछ माँगने का।

अलका बैठी सोच रही थी—'दिनों-दिन मैं चिड़चिड़ी होती जा रही हूँ। बच्चों से या 'उन' से कभी भी सीधे मुँह बात नहीं करती। वह भी डरे-डरे-से रहते हैं। घर में आते ही जैसे भागने की फिक्र लग जाती है उन्हें। ये बच्चे बेचारे मेरे सामने सहमे-सहमे-से रहते हैं। अभी शैवाल को डाँट दिया मैंने। आखिर उस बेचारी ने कहा ही क्या था ? परसों सुबह खिचड़ी बनी थी। उसके बाद आज भी शाम

होने को आई। कच्चे-पक्के बेरों पर बच्चे दो दिन से रह रहे हैं। और आज मिला भी तो डेढ़ पाव चावल! फूल का इतना बड़ा लोटा बदले में गया!'

छींके पर टँगे बचाये हुये आध पाव चावल की ओर दृष्टि डाल कर उसने पतीली का ढक्कन खोला। चावल गलकर सूख रहा था। उसमें लोटे का पानी डालकर उसने करछली से चलाकर पतला किया। फिर तीनों छोटे बच्चो से बोली—"कटोरियाँ उठा लाओ!"

बच्चे प्रसन्न होकर उठे। कटोरियाँ उठा लाये। अलका ने एक-एक करछुल तीनो कटोरियों में देकर कहा—"शैवाल!···आ तू भी ले जा!"

शैवाल रूठी बैठी थी। लेकिन भूख की ज्वाला ने इस समय अभिमान को पराजित कर दिया। उठी, फिर ठमक कर बोली—"बाबू जी को आ जाने दो, माँ!"

"अच्छा!"

पाँच साल का विभूति कटोरी बढ़ाकर बोला—"थोड़ा और, माँ!"

दूसरे ने भी कटोरी आगे बढ़ाई। अलका ने ज़रा-ज़रा-सा देकर कहा—"बस, आज यही!·· कल फिर बनेगा!"

बच्चे उँगलियाँ चाटते हुये उठ आये। चावल के इस पतले खाद्य ने तृप्ति के स्थान पर भूख की ज्वाला जैसे बढ़ा दी थी, पर 'कल फिर बनेगा' माँ द्वारा दी हुई यह आशा कम तृप्तिदायक न थी।

जब उदय लौटा, तब शाम हो चुकी थी। अँधेरा धीरे-धीरे बढ़ रहा था। अमरूद और बेर के दोनों पेड़ जैसे आँगन में विकराल दैत्य से खड़े उसको डरा रहे थे। चुपचाप नीचे पड़ी चारपाई पर लेटकर उदय ने पुकारा—"शैवाल!···शैवाल!"

अलका आकर खड़ी हो गई। पति के उतरे हुये शुष्क मुख पर दृष्टि डालकर बोली—"क्या हुआ !"

"मिला नहीं कुछ !" उदय ने मरी-सी आवाज़ में कहा।

हताश-सी होकर अलका ने कहा—"क्या कुछ भी नहीं !"

"नहीं !"

क्षण भर अलका खड़ी सोचती रही। फिर चटाई बिछाकर बोली—"अच्छा उठो, कुछ खालो ! दिन भर से वैसे ही हो।"

उदय उठ बैठा, और आतुरता के साथ हाथ-मुँह धोकर चटाई पर आ बैठा। पर थाली की ओर दृष्टि पड़ते ही उसकी भृकुटी तन गई। बोला—"क्या खाऊँगा मैं ! यही !"

"करूँ क्या ! इतना भी तो उधार लेकर ही बना सकी हूँ ! शाक-सब्ज़ी भी तो कोई यों ही नहीं उखाड़ने देता !"—अलका यथा-शीघ्र अपने स्वर को कोमल बनाकर बोली।

उदय ने दो मिनट में थाली खालीकर दी। बोला—"और लाओ थोड़ा ! आज दिन में पानी भी पीने को नहीं मिला। दौड़ते-दौड़ते बुरा हाल हो गया।"

शैवाल धीरे से उठी, और उसने बाकी भात लाकर पिता की थाली में डाल दिया।

और उस दिन भूखी माँ ने बेटी की ओर और भूखी बेटी ने माँ की ओर दृष्टि डालकर आँखे छिपा लीं।

चारपाई पर पड़ा उदय अख़बार उलटता रहा। भयानक अकाल ! कपड़े नहीं मिलते, अन्न नहीं मिलता, दवा नहीं मिलती ! मरे हुये को कफ़न भी नहीं नसीब होता ! कैसा कोप है तुम्हारा, माँ काली बङ्ग-वासियों के ऊपर से एकबारगी कैसे तुम्हारी दया, ममता उठ गई, माँ ! कहाँ गई तुम्हारे दिव्य नेत्रों की वह ज्योति, जिससे

प्रत्येक पल दीन-दुखियों के लिये वात्सल्य की वर्षा करके सबको अभय-दान दिया करती थी !

नीचे चटाई पर पड़ी अलका ने ध्यान भंग किया—"मुन्ना का बुखार फिर बढ़ गया ! और राधा का पेट फूल आया है ! क्या होगा !"

उदय ने अख़बार मोड़कर कहा—"क्या खाया है दोनों ने !"

"दो दिन बेर पर रहकर आज यही चावल खाया है ।" अलका ने काँपते हुये बच्चे को छाती से चिपका लिया ।

"पथ्य-कुपथ्य का विचार तो रखती नहीं तुम ! बच्चे को कुछ उढ़ा दो । सर्दी लग रही होगी ।"

पति की बातो से अलका मर्माहत हो उठी । बोली—"सब जान-सुनकर भी तुम अनजान बनते हो !·· सालो हो गये किसी ने तृप्ति से पेट भर भोजन नही किया ! मेरे दो बच्चे इस महामारी की भेंट हो गये ! पथ्य-कुपथ्य सोचने का समय हमारा नही है । दिन एक से जा रहे हैं । आगे भी जो होगा, वह मालूम है । खेत बाढ़ में गये । घर में पैसा नहीं है । बर्तन-भाँड़े भी बिकते-बिकते अब समाप्ति पर आ गये हैं । दवा का अभाव है । अन्न का अभाव है । बच्चे भूख से तड़पते हैं । मै माँ होकर क्या उन्हें इसी तरह तड़प-तड़प कर मरते देखूँ !" अलका की आँखों से आँसू की धारें बह निकलीं ।

उदय ने अपनी चादर उतार कर बच्चे पर डाल दी । फिर बोला—"घर-घर तो यही हाल है ! जा रहा हूँ । देखूं, शायद कोई प्रबन्ध दवा का कर सकूँ !"

"अभी कितनी दूर है !"

"अब नहीं चला जाता, माँ !" चौदह वर्ष की शैवाल छोटे भाई को उतार कर बैठ गई !

"अम्माँ !···भूख !···अम्माँ !"

थकी अलका पेड़ की छाया मे बैठकर बोली—"सच, भाई, अब तो नहीं चला जाता !"

उदय भी बैठ गया। उसके पैर भी कम अशक्त नहीं हुये थे। भूखी जर्जर देह की टाँगे शरीर का ही बोझ ढोने में असमर्थ थीं। ऊपर से फटे-पुराने कपड़ों का गट्ठर, टीन का एक बक्स, लोटा डोर, डोल्ची, आखिर घर छोड़ने पर भी ये चीजे तो सब जगह के लिये ज़रूरी हैं। साथ में गाँव के बीस-पच्चीस आदमी और हैं। उनकी भी स्त्रियाँ हैं, बच्चे हैं, माँये हैं। पिछले सप्ताह शहर से चार आदमी आये थे। गाँवो की हालत देखी, रिपोर्ट ली, खास-खास जगहों के बीमारों के चित्र लिये, टूटे-फूटे घर नदी-नाले, उजड़े हुये खेत, सब कुछ देख गये। जाते समय बतला गये कि शहर में अन्न-क्षेत्र खोले गये हैं। वहाँ मुफ्त भोजन मिलता है। वस्त्र भी कभी-कभी बाँटे जाते हैं। मुफ्त दवा दी जाती है। हज़ारों आदमी काम कर रहे हैं! जीविका न सही, जीवन-रक्षा का उपाय तो निकल ही आया है।

गाँव वालों ने जैसे स्वर्ग द्वार खुला पाया। जो समर्थ थे, वे पहले गये। जो बाल-बच्चे वाले थे, वे अपनी टूटी-फूटी गृहस्थी सँभाल कर घरों में ताले डालकर चल पड़े।

दिन ढलते सभी शहर के निकट आ गये। जो पहले कलकत्ते देख चुके थे, वे शीघ्रता से क्षेत्रों की खोज में बढ़े। जिन्होंने प्रथम बार ही इस महानगरी का दर्शन किया था, उनकी आँखे सचमुच चौंधियाँ गईं। आँखो ने थोड़ी देर पेट को भी धोखा दिया। ऊँचे-ऊंचे गगन-चुम्बी भवन बिजली के लट्टुओं के प्रकाश से झलमला रहे थे। मोटरें गाड़ियाँ, ट्रामें चल रही थीं। रेडियो बज रहे थे। बड़ी-बड़ी दूकानें सजी थीं। मिठाई, बिस्कुट, केक, पेस्ट्री, तमाम चीजें भरी पड़ी थीं।

बच्चे मुँह में पानी भर-भर कर माताओं से उलझते—"माँ, भूख !"

अलका पीछे रह गई थी। उसका छोटा बच्चा दिन में धूप खाने से इस वक्त ऐंठ-सा रहा था। बखार कम हो गया था। मुँह से झाग निकल रही थी।

दिनेश के पेट मे मरोड़ उठ रही थी। नल के नीचे खड़े होकर उसने अब तक तीन जगह पानी पिया था। और पानी की कै पर कै आ रही थी। शैवाल मुश्किल से उसे संभाल पा रही थी। बाक़ी तीनो बच्चे कभी माँ से कभी बहन से 'भूख ! भूख !' की रट लगा रहे थे। झुँझला उठी अलका। बोली—"भगवान, उठा लो ! किन आँखों से देखूँ !" आँखे बचा मिठाई की दूकान देखकर शैवाल बढ़ी। कहा—"कुछ मिठाई दो···"

याचक के शब्द पूरे नहीं हुये कि मिठाई वाले ने मुस्करा कर कहा—"किसके लिये ! अपने लिये !"

"नहीं इन बच्चों के लिये !" शैवाल सकुचाती हुई बोली।

"न, न, तुझे दूँगा ! ऊपर आ जा !" और वह मुस्कराया।

उसकी मुस्कान विष-सी लगी। शैवाल बच्चो का हाथ पकड़ फिर बढ़ गई माँ के निकट। उसकी भोली आँखों ने उस कलुषित निमंत्रण पर जाने कितने आँसू गिराये।

अलका चारों ओर देखकर निष्प्राण सी हो गई। नर-कंकालो का समूह भव्य अट्टालिकाओं के नीचे फुट-पाथ पर बैठा एक रोटी, एक मुट्ठी भात के लिये चीत्कार कर रहा था। एक बच्चे की प्राण-रक्षा के लिये एक बच्चे का क्रय-विक्रय माताये वज्र-हृदया बनकर कर रही थीं।

उसने अपने नन्हें-से बच्चे को हृदय से लगा लिया। हाय, भगवान्! मातृत्व का यह कौन-सा रूप दिखा रहे हो तुम? मातायें मुट्ठी भर अन्न के लिये बच्चों का क्रय-विक्रय कर रही है! युवतियाँ खुले बाज़ार बिक रही हैं!'

उसी सड़क के एक ओर वह बैठ गई। चिथड़ों पर रोगी बच्चे सुला दिये गये।

उदय काफी रात गये वापस आया—खाली हाथ। पाँव के घुटने फूट गये थे। क्षेत्र बन्द थे इस समय। कहीं भी क्षुधा-निवृत्ति का साधन नहीं मिल सका।

पति के फूटे घुटनों पर हाथ फेरती हुई अलका बैठी रही, बैठी रही। भिखारिन बनकर आज उसके नारी-हृदय और मातृ-हृदय दोनों हाहाकार कर उठे। उच्छृंखल मन दो क्षण के लिये अतीत की ओर दौड़ा। थोड़ी-सी ज़मीन किस प्रकार उर्वरा होकर धान से उसका प्रकोष्ठ भर देती थी! मोटे वस्त्र, मोटे अन्न पाकर भी परिवार सन्तुष्ट रहता था और आज। वे दिन स्वप्न हो गये। छोटे बच्चे ने हाथ पाँव डुलाये, आँखे उल्टीं। एक क्षण में जीभ बाहर निकल कर लटपटाने लगी। अतीत के स्वप्न भग हुये। पति को जगाकर अलका बच्चे को गोद में उठाकर रो उठी। कुछ क्षण में ही उसकी नन्हीं-सी आत्मा माता-पिता को चिन्ता मुक्त कर जाने किस ओर उड़ चली।

महीने भर से ऊपर हो चुका। वस्त्र तार-तार हो रहे हैं। शहर आने के बाद से अलका अपने दो बच्चों को खो चुकी है, लेकिन अब भी उसके चार बच्चे शेष हैं। बड़ी लड़की शैवाल किसी प्रकार अपने शरीर का सौदा कर कुछ ला देती है। कभी-कभी उदय भीड़ में घँस कर

थोड़ा-सा अन्न संग्रह कर पाता है। शेष बच्चे माता के साथ इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। सन्ध्या को वे माँ काली के मन्दिर के सामने आ टिकते हैं।

अलका की कातर प्रार्थना मन्दिर के विशाल प्राँगण में टकरा कर लौट आती है। सम्भतः महानिद्रा मे सोई महामाया तक उसकी पुकार पहुँचने मे अभी देर है।

आज कई दिनो बाद लौटी थी शैवाल। ज्वर से तप रही थी। चौदह वर्ष की वह अधखिली नवयुवती माँ के निकट गिर कर, तड़प कर रो उठी—"माँ! ··माँ! मेरी माँ! एक बार मुझे मन्दिर मे चल! अब बचूगी नहीं माँ! अपने अपराधो की क्षमा देवी माँ से एक बार माँग लूँ!"

अलका गोद मे उसकी पीड़ित देह लेकर बैठ गई। बिलख कर बोली—"हाय! कौन कहता है मेरी बेटी ने पाप किया है, अपराध किया है! मेरी बच्ची दाने-दाने की पुकार पर बलिदान हुई। माँ, मेरी निरपराध बच्ची को क्षमा करो! ··क्षमा करो माँ!"

शैवाल की गर्दन माँ के वक्ष पर टिक गई। क्षीण स्वर में वह बोली—"माँ, अब नही सहा जाता! ··दो कौड़ी का मूल्य भी आज मेरा नही रह गया है! मैंने · मैने विष खाया है!"

नीले पड़ते होठो पर हिचकियाँ मृत्यु का रूप लेकर नृत्य करने लगीं। अलका बेटी के शव पर लोट गई।

भूमि ने मानो अपनी एक निधि को महानिद्रा में सुलाकर शान्ति की साँस ली!

उस भयानक रात मे शीत से काँपता हुआ उदय अब भी क्षुधा-पीड़ितो के शिविर-द्वार पर टकटकी बाँधे बैठा था। उसकी आँखो मे भूखे बच्चे मानव-कंकाल के रूप मे नाच रहे थे।

कुमारी विपुला
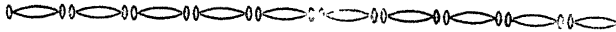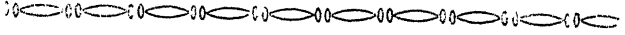
# अमावस्या

जब प्रभात हुआ और एक चिड़िया आकर मकान में चहकने लगी, तब सदैव के समान आज भी वे लोग जल्दी-जल्दी तैयार होने लगे। झटपट स्नान करके सुमन ने स्टोव पर चाय चढ़ाई और उसके बाद प्याले धोकर उन्हें मेज़ पर सजाने लगी। उसकी साथिन डा० शान्ता बाई हलवा बना रही थी और वह प्रायः बनकर तैयार हो गया था।

उसका मित्र और सहपाठी जयन्त देसाई स्नान करने के अनन्तर भीगे बालों में कंघा करते हुये कह रहा था—"सुमन अगर तुम अच्छी चाय न बना सको तो रहने दो। अपनी चाय मैं स्वयं आकर बनाऊँगा।"

उसकी बात सुनकर सुमन हँसने लगी किन्तु वाक्पटु शान्ता से न रहा गया बोली—'क्यों जयन्त भाई, आपकी 'अच्छी' की परिभाषा क्या है, यह तो बता दीजिये पहले!" सुमन्त मराठे कुछ दूर पर बैठा सन्ध्योपासना में मग्न था। पूजा समाप्त करके उसने तत्काल शान्ता की बात का उत्तर दिया—" 'अच्छी' की परिभाषा है, खूब मिठास! सुमन इसके प्याले में दो चम्मच शक्कर ज्यादा डाल देना, बस ठीक हो जायेगी चाय। जल्दी करो ईश्वर, कब तक नहाओगे।"

"कब तक क्या? वैसे होता तो आज पूर्णमासी के दिन हम गंगा स्नान करते और काली मन्दिर जाकर दर्शन-पूजन करते, किन्तु जब

यह सौभाग्य हमें नहीं प्राप्त है तो क्या साधारण रूप से अच्छी तरह स्नान भी न करें।" ईश्वर की ओर से राघवेन्द्र ने उत्तर दिया। वह अभी स्नानागार से स्नान करके निकला था।

"लड़कों क्या तुम तैयार नहीं हुये अभी तक ?" डाक्टर कुडेलकर ने वहाँ प्रवेश करते हुये कहा। वे बहुत शीघ्रता में थे और अभी-अभी कैम्पवेल अस्पताल में अपनी रात की ड्यूटी समाप्त करके आ रहे थे। उनकी मुखाकृति बहुत गम्भीर, शान्त और भव्य थी, वे एक वयस्क और अनुभवी पुरुष थे।

उन्हे देखते ही वातावरण में एक गर्मी सी आ गई। आदरपूर्वक अभिवादन करने के अनन्तर वे सब लोग बोले—"अब हम लोग प्रायः तैयार ही हैं सर। केवल चाय पी लें।

डाक्टर कुडेलकर ने पूछा—"तुम लोग कल रात किस समय वापस लौटे थे।" "करीब दो बजे के बाद।" लेकिन सर हम लोगो ने तो फिर भी कुछ न कुछ आराम कर लिया है, आपको तो तीन दिनों से एक भी दिन, घटा भर समय भी विश्राम करने के लिये नहीं मिला है। आज आप कुछ देर विश्राम कर लें!" सुमन्त ने कहा।

डाक्टर ने उपेक्षा पूर्वक कुछ मुस्करा कर कहा—"विश्राम तो हमें जीवन भर करना है, पर सुमन्त आज के मरे फिर जीवित नहीं होंगे। आज बंगाल में जो भीषण अग्नि धधक रही है, उसमें से लपटों के स्थान पर कंकाल उठ रहे हैं, स्त्रियो का सतीत्व भस्म हो रहा है और एक प्राचीन संस्कृति का गौरव, महिमा, आनन्द सब कुछ भस्मीभूत हो रहा है।

डाक्टर के इन शब्दों मे न जाने कौन सा भाव था, देखते-देखते समस्त व्यक्तियो का मुख मंडल गम्भीर हो उठा। शंकित और उदास दृष्टि से उन्होंने एक दूसरे की ओर देखकर अपना सिर झुका लिया।

वे सब मेज़ के पास इकट्ठे हुये और नीरव भाव से चाय पीकर उठ खड़े हुये। उनका चेहरा पूर्ववत् उदास था और मनमें वेदना थी।

ये सब पूना के मेडिकल कालेज के छात्र थे जो डाक्टर कुंडलकर की अध्यक्षता मे बंगाल के अकाल-पीड़ितों की सहायता करने के लिये 'टूर' पर आये थे अपने भ्रमण कार्य में सरकारी मदद प्राप्त हो सके, इसके लिये वे कलकत्ते मे ठहर कर कुछ आवश्यक परिचय पत्रा के आने का मार्ग देख रहे थे। कलकत्ता आये उन्हे चार दिन हो चुके थे. लेकिन उन्हें अभी तक वे कागज़-पत्र प्राप्त नहीं हुये थे।

---

वे छहो सहपाठी और मित्र तीन दलो मे विभक्त होकर काम मे जुट गये। वे विशाल कलकत्ता नगरी के मुहल्ले-मुहल्ले मे घूमने लगे। हाहाकारों की गाथा की एक गूंज, देश के हँसते-मुस्कराते जीवनो के ऊपर मृत्यु की काली छाया। भूख मलेरिया, दस्त—युद्ध पीड़ित मनुष्य के स्वास्थ्य पर अकाल, और व्याधियो या प्रबल आक्रमण—काल का विकट प्रहार।

सड़को के किनारे मनुष्य कीड़ो की तरह पड़े हुये थे। उनके तन पर न वस्त्र थे और न शरीर में छाल। उनका पेट भूख से सिकुड़ गया था, पैर लड़खड़ा रहे थे, हाथों में शक्ति न थी। वे कंकाल-मनुष्यता के भयानक शत्रु, वे प्रतीक से बने, सड़कों के किनारे गलियों मं. गंगा तट पर, पुल के ऊपर, रेलवे लाइनो के नीचे मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुये घूम रहे थे। अनेक दिवसो के निरन्तर बढ़ते जाने वाले कष्टों और अनाथो के समान चारो ओर से ठोकरें खा-खाकर वे एकदम निराश लुटे पथिक से मृत्यु के आगमन की प्रतीक्षा करते हुये, व्याकुल और

त्रस्त भाव से केवल आकाश की ओर देख रहे थे, जैसे उनके लिये और कही भी स्थान नही था, भागने और बचकर जाने का कोई पथ नही था। सड़को पर नर-कंकाल चलते-चलते सहसा लुढक पड़ते थे और फिर लाख प्रयत्न करने पर भी न उठते थे। चारो ओर नरक की-सी दुर्गन्धि उठ रही थी।

अर्ध-मृत भुखमरो से भरी हुई एक गाड़ी जा चुकी थी, वह शीघ्र ही पुनः वापस लौटने वाली थी। किन्तु सुमन और शान्ता उसकी राह न देखकर एक सड़क पर पैदल ही आगे बढ़ रही थी।

सहसा सामने से एक बूढ़ा लाठी टेकता हुआ आया और सुमन के सामने खड़ा होकर करुण स्वर में कहने लगा—"माँ कुछ भिक्षा दो। चार दिनो से मैंने कुछ नही खाया है, भूख से आँते जल रही हैं माँ।"

ठिठक कर सुमन खड़ी हो गई और उस जीर्ण-शीर्ण कलेवर वृद्ध की ओर एकटक देखने लगी। वह देखने में इतना दुर्बल प्रतीत होता था कि जान पड़ता था कि अभी गिर पड़ेगा। उसकी आँखों मे गहरा अंधकार भरा हुआ था, निराशा और मनुष्यों की निष्ठुरता ने उसकी आत्मा को दबा दिया था। सुमन को कुछ भी न बोलते देख वह फिर बोला—"न जाने कितने लोगो से भिक्षा माँग चुका हूँ, किन्तु माँ मैने न मालूम कितने पातक किये हैं कि माँगने पर भीख नही मिलती। मेरी जवान लड़की भूख से तड़प-तड़प कर मर गई, उसके भाई से जब उसकी दुर्दशा न देखी गई तो वह भी किसी मोटर के नीचे जा दबा और उसकी वह वह देखो माँ सड़क के उस किनारे दम तोड़ रही है—पापो का अंत नहीं है, और भी न जाने क्या देखना शेष है मेरे लिये।"

उसकी आँखों से आँसू बरसने लगे। सुमन निर्वाक् भाव से उसकी ओर कुछ क्षणों तक देखती रही फिर बोली—"तुम्हारी यह हालत कैसे हो गई?"

"दैव की इच्छा है माँ—इसका लेख और उसकी मर्जी। वृद्ध ने रोते-रोते अपना कपाल पीटकर कहा और शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देखने लगा।

निरुत्तर भाव से सुमन चुप हो गई। उसे अपनी भूल ज्ञात हो गई किन्तु वह कर ही क्या सकती थी, विवश थी। उसके पास दवाओं का 'बेग' तो था किन्तु खाने की कोई वस्तु नहीं थी। पास-पड़ोस में कहीं कोई दूकान नहीं थी, जो वह कुछ खरीद कर उसे दे देती। वह पैसे देने चली किन्तु उसे इस बात में सन्देह था कि वह कभी किसी दूकान से कुछ खरीद कर खा सकेगा। उसने कहा—"चलो तुम्हारी बहू को देखूँ, क्या हालत है उसकी। अभी अस्पताल की गाड़ी आयेगी, उसमें तुम दोनों को अस्पताल भेज दिया जायेगा।'

"अस्पताल! नहीं माँ नहीं, वे तो अमीरों के लिये है और हम दरिद्र हैं, असहाय हैं। वहाँ जाकर क्या करेंगे हम। भीख नहीं दोगी तो न दो, मैं जाता हूँ। काली घाट में जाकर कुछ भीख माँग लाऊँगा। जीने की इच्छा नहीं है, जीवन का लोभ नहीं है, पर मरने के पहले एक बार अन्न-देवता से भेंट तो कर लूँ! माता अन्नपूर्णा के दरबार में···देखूँ इस पातकी के ऊपर माता की कृपादृष्टि होती है या नहीं। कहते-कहते एक क्षण भी न रुककर वृद्ध लाठी टेकता चल दिया। सुमन उसे कुछ उत्तर दे सके, इसके पूर्व ही सामने से आती लारी से टकरा कर बीच सड़क पर गिर गया। बस एक हल्की चीख और उसके बाद सब समाप्त।

काँप कर सुमन चीख़ उठी। उसका मुँह पीला पड़ गया। दुःख, क्षोभ, और बेबसी से उसकी आँखो में आँसू भर आये। वहाँ एक क्षण भी ठहरना उसके लिये दूभर हो गया। शान्ता का हाथ पकड़ वह जल्दी से आगे बढ़ गई। उसके हृदय में मानो एक तूफान सा उठ खड़ा हुआ, वह सोचने लगी कि क्या भगवान् इतने निर्मम हैं कि अपने प्रति परम विश्वास रखने वाले का भी मान नही रखते ? कैसे प्रभु हैं वे, उनकी प्रभुता भी मनुष्य के समान ही स्वार्थपरता और कृतघ्नता से भरी है ?"

आगे बढ़ते हुये, अपने मन को समझाते हुये उसने आप ही आप कहा—"यही एक नही है, और भी इस जैसे असंख्य है। सुमन चल देख, वे तेरी प्रतीक्षा कर रहे होगे।" और तभी उसे स्मरण हो आया उस बूढ़े की असहाय पुत्र-वधू का जो उसके कथनानुसार सड़क के उस किनारे पड़ी हुई है। चौंककर उसने कहा—"शान्ता दीदी चलो उस बूढ़े की बहू को तो देख आया जाय। देखें किधर पड़ी है वह। शान्ता ने जवाब दिया—"तुम जाकर देख आओ। मै यहाँ रुककर औरों को देखती रहूँगी, आवश्यकता पड़े तो पुकार कर मुझे बुला लेना।"

सुमन ने यह बात स्वीकार कर ली और वह वापस लौटी। सड़क के किनारे पड़ी उस स्त्री के पास जाकर देखा तो पाया कि वह अब उसकी सहायता कर सकने की सीमा के बाहर पहुँच गई है और अब कुछ ही मिनटों की मेहमान है। एक साल का छोटा, दुर्बल अशक्त बालक हृदय से लिपटा पड़ा हुआ है। दोनो माँ-बेटे हिल-डुल भी नही सकते। कैसी मर्मभेदी परिस्थित है उनकी।

सुमन उनकी ओर देखती रही एकटक, अपलक नयनों से। उसका मन भीतर ही भीतर रो रहा था, वह सोचने लगी—"इतने लोग आते

हैं और इनकी ओर अवहेलना भरी दृष्टि से देखकर भी अनदेखा करके आगे बढ़ जाते हैं, क्या इनसे इतना भी नहीं हो सका कि इस दम तोड़ती अभागिन के मुँह में दो बूँद जल डाल देते ? पर उनको भी क्यों दोष दूं। वे भी क्या करें, यह दृश्य तो नित्य प्रति का है और जब वे अपना पेट ही कठिनाई से भर सकते हैं, तो दूसरों की चिन्ता कैसे, कहाँ तक कर सकते हैं।"

सुमन का मन मसोस उठा! सोचा यदि इन मरते हुये अभागा का कुछ उपकार कर सकूँ तो जीवन धन्य हो जाय। वह उन दोनों के पास जाकर उनका निरीक्षण करने लगी कि इतने मे एकाएक उस स्त्री को एक ज़ोर की हिचकी आई और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। बालक सहसा धीरे से कराह उठा। शायद वह रोना चाहता था या अपनी माँ से कुछ खाने के लिये माँगना चाहता था किन्तु न माँग सका। धीरे-धीरे तीन-चार हिचकियाँ आईं और उसकी सारी विपत्ति का अन्त हो गया।

"सुमन, सुमन क्या कर रही है, इधर आ।" शान्ता ने अकस्मात् पुकार कर उसे बुलाया, उसकी आवाज़ सुनते ही सुमन चौंक उठी। एक अद्‌भुत माया-मरीचिका उसके नेत्रों के सन्मुख अपना माया-संसार फैला ही रही थी कि इतने में उसकी मोह-निद्रा मानो एक तीव्र आघात पाकर टूट कर छिन्न-भिन्न हो गई। एक दृष्टि उस स्त्री और उसके मृत बालक के शवों के ऊपर डाल कर वह उठ खड़ी हुई। उसने शान्ता की ओर बढ़ते हुये पूछा—"क्या है बहन ?"

अभी-अभी तीन-चार नर-कंकाल देखते-देखते, वहीं सड़क पर चलते-चलते थकावट के कारण अकस्मात् गिर पड़े थे। शान्ता उनकी देख-भाल करने की कोशिश कर रही थी। सुमन का प्रश्न सुनकर

उसने कहा—"देखो ये पाँच आदमी पड़े हैं। बताओ मैं क्या-क्या करूं? तुम किसे देख रही थीं. रोगी की हालत कैसी है?"

कठोर व्यंग सुमन के अधरों पर हँसी बनकर छा गया, आगे बढ़ते हुये उसने कहा—"जिसे मैं देख रही थी वह मेरे देखने की सीमा के बाहर पहुँच गई है। मुर्दा ढोने वाली गाड़ी उसको उठा ले जायेगी। बताओ क्या करना है?"

"करना क्या है, इंजेक्शन दो!"

"अच्छा देती हूँ!"

सुमन ने सबको इंजेक्शन दिये। इसके बाद एक राहगीर को टेलीफोन आफिस भेजकर कैम्पवेल अस्पताल में फोन के द्वारा समाचार भेजवा दिया। गाड़ी आकर उनको ले गई।

इस प्रकार वे इस मुहल्ले से उस मुहल्ले में घूमते, घर-घर चक्कर काटते दिन भर घूमती रहीं। एशिया और भारत का सबसे बड़ा व्यवसायिक नगर, बंगाल की राजधानी कलकत्ता कराहों से गूज रहा था। ऐसा कोई मुहल्ला नहीं था जहाँ जीते-जागते कंकाल घूमते-फिरते न दिखाई देते हों। कोई सड़क और कोई गली ऐसी न थी, जहाँ प्रति तीसरे दिवस कोई मृत शरीर पड़ा हुआ न दिखाई देता हो।

बिना खाये-पिये घूमत-घूमत उन्हें सारा दिन बीत गया। क्षितिज पर सूर्यास्त हो अँधेरा घना हो गया। पूर्णमासी का पूरा चन्द्रमा पूर्व दिशा में दिखाई देने लगा। वे अब थककर चूर-चूर हो चुकी थीं, वापस लौटने का विचार करते हुये शान्ता ने कहा—"चल सुमन अब वापस लौटें। पहुँचते-पहुँचते आधी रात हो जायेगी। आजकल चारों

ओर रात मे फ़ौजी गश्त होती है। डर लगता है, हम लोग अकेली हैं। सुमन्त अब तक लौट कर नहीं आया।"

"अकेली भले ही हों किन्तु हमें डर किसका है?" सुमन ने उपेक्षा भरे स्वर में कहा—"वह बहुत निर्भीक प्रकृति की थी और भय से भी नहीं डरती थी।

"नहीं फिर भी लौटना चाहिये। रात चाँदनी है, जल्दी से निकल चलेंगे और यदि कहीं कोई सवारी मिल गई...!

"चलो।" सुमन ने कहा और वे साथ-साथ वापस लौटने लगीं। स्तब्ध ज्योत्सना चारों ओर फैली हुई थी। सड़क सुनसान थी, कहीं कोई आदमी आता-जाता नहीं दिखाई दे रहा था। चारों ओर देख कर सुमन बोली—"आजकल कलकत्ता ऐसे व्यस्त और कोलाहलमय नगर मे भी इतना सन्नाटा छाया हुआ है, है न आश्चर्य की बात शान्ता दीदी।"

"हाँ बहन, पर इससे भी अधिक आश्चर्य की बात है, कलकत्ते की सड़कों पर मनुष्यों का भेड़-बकरियों की तरह मरना।"

सड़क की मोड़ आ गई थी, उस पर घूमते ही दोनों की दृष्टि सामने समान दूरी पर पड़े दो कंकालों पर पड़ी जो विपरीत दिशा में पड़े हुये थे। चौंक कर सुमन ने अँगुलिनिर्देश करते हुये कहा—"वह देखो।"

"हाँ मै देख रही हूँ!" शान्ता ने कहा और वे दोनो विपरीत दिशाओं मे पड़े उन नर-कंकालों की ओर बढ़ीं जो भूमि पर पड़े छटपटा रहे थे।

शान्ता ने समीप जाकर देखा कि छटपटाने वाला रोगी एक स्त्री है। उसके शरीर पर नाममात्र को ही वस्त्र है। यंत्रणा और वेदना से उसका सारा शरीर रह-रहकर काँप रहा है। उसके ऊपर झुककर

देखते ही शान्ता सब कुछ समझ गई। जल्दी से घबराये स्वर में वह पुकार उठी—"सुमन, अरी सुमन!"

सुमन ने उसकी आवाज़ सुनी किन्तु उसने उसकी बात का उत्तर नही दिया। उस समय वह उस दरिद्र, हतभाग्य, हीन, फटे वस्त्रों वाले उस व्यक्ति की देख-रेख करने मे व्यस्त थी, जो सड़क पर चारो खाने चित्त पड़ा, करवटें बदल रहा था।

"सुमन क्या कर रही है तू।" शान्ता ने उसकी ओर बढ़ते हुये पूछा—"उसके कण्ठ स्वर में खीज और विरक्ति का आभास पाया जाता था। वह उसी तरह कहती गई—"कैसी विपत्ति है। बता तो अब इस समय क्या किया जाय!"

सुमन उस आदमी के चेहरे पर अपनी निगाहे जमाये, एक निपुण डाक्टर की तरह उसकी नाड़ी टटोल रही थी। सिर नीचे झुकाये हुये ही उसने कुछ हँसकर पूछा—"क्यो? "क्यों क्या इधर यह है···और उधर एक असहाय स्त्री पड़ी हुई है, असहाय, भूख-पीड़ित, कंकाल सी·· वह आसन्न प्रसवा है।" घबड़ाये स्वर में शान्ता एक साँस मे कह गई।

उसकी बात सुनकर सुमन चौक उठी। किन्तु अब ऐसे भयानक दृश्यों को देखकर 'धक्का' चाहे जितनी ज़ोर से लगता हो पर आश्चर्य नही होता। शान्ता के बात के उत्तर मे वह कठोर हँसी हँसकर बोली—"अच्छा ऐसी बात है···पर यह आदमी भी अब मृत्यु के बहुत समीप पहुँच चुका है। इसे इस हालत में यहाँ पड़ा छोड़कर मैं यदि हट जाऊँ तो मेरी आत्मा जीवन भर मुझे नहीं क्षमा करेगी।"

शान्ता ने कहा—"एक यहाँ, दूसरा वहाँ। इस तरह तो इन दोनो में मे किसी को नहीं बचा पायेगे। अच्छा एक काम करो, उसे भी

पकड़वा कर हम यहाँ उठा लायें। वह औरत ठहरी, कुछ हलकी होगी।"

चुप रह कर सुमन ने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। "स्टेथिस्कोप" से उस आदमी के हृदय की परीक्षा करके और उसकी स्थिति देखकर उसने निश्चय किया कि कई महीनों के अनियमित आहार और लगातार उपवास तथा मलेरिया ने उसकी समस्त शक्तियों को निचोड़ लिया है और अब इसमें कंकाल की धुकधुकी के सिवा और कुछ भी शेष नहीं रहा है। उसने निराश भाव से सिर हिलाकर कहा—'यह नहीं बचेगा।'

शान्ता ने भी झुककर उस व्यक्ति को देखा। उसका रंग उजला गौर वर्ण था, उसके जीर्ण-शीर्ण कलेवर का असीम सौन्दर्य और सुन्दर आकृति युक्त चेहरा उसके अच्छे दिनों की गवाही दे रहा था। अवस्था भी अधिक नहीं थी, सत्ताइस-अट्ठाइस साल से तो किसी भी परिस्थिति में उसकी उम्र ज्यादा नहीं हो सकती। दुःख से शान्ता का हृदय फटने लगा, एक ठंडी साँस लेकर उसने कहा—"कितनी दारुण यातना, कितना असीम कष्ट है। और यह यातना, यह कष्ट, यह विपत्ति केवल एक ही आदमी के लिये नहीं है, पूरे देश के लिए, सम्पूर्ण मनुष्य जाति के लिये है। समस्त देश रुदन और हाहाकारों से गूँज रहा है, समस्त सामुहिक जीवन, समाज छिन्न-भिन्न हो रहा है।"

सुमन के अधरों पर, उसके मनकी वेदना, कठोर स्तब्धता बनकर छा गई। वह कुछ नहीं बोली, केवल चुपचाप पड़े उस कंकाल की ओर ताकती रही, जो रह रहकर काँप उठता था। शान्ता फिर बोली—"मरना सभी को एक दिन है, और मरने के बाद चिता चन्दन की मिलती है या बबूल की इस बात को देखने कौन लौट कर आता है बहन, परन्तु यह मृत्यु...? यहाँ, इस राजमार्ग के किनारे, वृहत्

कलकत्ता नगरी में, उच्च अट्टालिकाओं और धन वैभव के मध्य में, औषधि पानी के बिना, भूख से तड़प-तड़प कर मर जाना ? एक ठंडी साँस लेकर सुमन उठकर खड़ी हो गई। बोली—"चलो दीदी उठा लाये उसे।" अब मानो शान्ता को होश आया। वह बोली—"चलो।"

और दोनों ने जाकर उस पीड़िता नारी को सँभालकर ठीक ढंग से लिटाया और फिर धीरे-धीरे उसके समस्त अंगो पर हाथ फेरा तथा यथासम्भव आराम देते हुये उसे हाथो से उठाकर ले चली। चाँदनी का प्रकाश चारो ओर फैला हुआ था, उसके प्रकाश मे बिना किसी कठिनाई के उसे ले जाकर, उस रोगी के बगल मे भूमि पर लिटा दिया। बंगाल की शस्य श्यामला जननी के पास अपनी सन्तानों के लिये सिवा धूल से भरी सड़को के और कुछ भी नहीं था।

"सुमन ज़रा बेग" मे से इंजेक्शन की सुई तो निकाल कर दे। भूख और रोग ने इन्हें इस हालत में पहुँचा दिया है, अगर थोड़ा दूध मिल सकता · ?

उत्तर मे सुमन ने कहा—"इधर यहाँ कुछ भी नहीं मिल सकता।"

रात बढ़ रही थी और कहीं कोई मनुष्य आता-जाता नही दिखाई देता था। केवल वे ही दो स्त्रियाँ उस सुनसान पथ के किनारे खड़ी सहायता की आशा से चारो ओर देख रही थीं। पर वहाँ तो कहीं किसी चिड़िया तक का पता नहीं था। नीचे पृथ्वी, ऊपर आकाश अगल-बगल ऊँची इमारतें, जिनकी शृंखला दूर चली गई थी। शरद काल की हवा के दो एक झोंके कभी-कभी अवश्य आ जाते थे।

इंजेक्शन देने के बाद सुमन ने कहा—"कितना ख़ौफनाक सन्नाटा छाया हुआ है चारो ओर बड़ा डर मालूम होता है।"

"आज तो सैनिक टुकड़ियाँ तथा पुलिस दल भी गश्त लगाते हुये कहीं नहीं दिखाई दे रहे हैं। इधर से निकलते तो शायद ।"

"और सुमन्त तो जैसे हमें एकदम भूल ही गये, तब के गये अब तक नहीं लौटे।" सुमन ने कहा।

"शायद किसी काम में फँस गए हों, छुट्टी पाते ही हमें खोजने इधर आयेंगे अवश्य। तूने उन्हें बतला तो दिया ही होगा कि हम लोग आज किस ओर जायेंगी।"

"वे जानते हैं—!" सुमन ने कहा, लेकिन अभी वह अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाई थी कि इतने में अचानक कुछ दूर पर किसी मोटरकार का हार्न सुनाई दिया।

विस्मित होकर आनन्द भरे स्वर में सुमन बोल उठी—"जान पड़ता है सुमन्त आ गये।"

"शायद !" शान्ता को सन्देह था।

पर मोटर पास आकर रुक गई। उस पर उनके साथी सुमन्त और ईश्वरलाल ही थे। उनकी दृष्टि भी उन मुमुर्ष प्राणियों पर पड़ चुकी थी। मोटर पर से उतरते हुये सुमन्त ने कहा—"अच्छा तो तुम इनके कारण यहाँ रुकी हुई थीं। ईश्वर चलो इन्हें उठाकर पिछली सीट पर लिटा दें और सुमन तुम ठहरो, इन्हें अस्पताल पहुँचा कर अभी वापस लौटता हूँ। ईश्वर तुम्हारे साथ ही रहेगा।"

"खैर तुम आए तो।" सुमन प्रसन्न भाव से बोली।

मुस्कराते हुये सुमन्त बोला—"क्यों क्या तुम समझती थीं कि मैं तुम्हें यहीं भूल जाऊँगा? अभी तो सिर्फ दस बजे हैं पर यदि दो भी बजते तो भी मैं आता।" कहते-कहते वह उन रोगियों के समीप जा खड़ा हुआ। ईश्वरलाल भी उतर कर उसके पास आया। दोनों रोगी

इस समय कुछ-कुछ होश मे आ रहे थे, सुमन की औषधि का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखने लगा था। पुरुष कंठ से निकली गम्भीर आवाज़ और उनके चलने से उत्पन्न हुई ध्वनि सुनते ही दोनो ने अपनी आँखे खोली। सन्मुख खड़े मनुष्यो की छाया उनके मस्तिष्क के अन्दर जा पहुँची। पूरा होश तो उन्हे था नही, किन्तु अर्ध-चेतन अवस्था में ही वह नर-कंकाल उठकर बैठने का विफल प्रयास करते हुये लड़खड़ाते स्वर मे बोला—"भाई मै भिखारी नही हूँ ··मुझे भिक्षा नही चाहिये काम दो मुझे, बड़ा उपकार होगा।"

और वह स्त्री किसी के हाथो के स्पर्श की अनुभूति पाते ही एकदम चीख उठी—"मत छुओ मुझे मत छुओ। मेरे पति को पकड़ ले गये · क्या इतने से तुम्हारा पेट नही भरा · मुझे भी ले जाना चाहते हो ··कहाँ ले जाओगे? हाय प्राण क्यो नही निकल जाते · मेरे बच्चे । हाय · मेरे बच्चे · ।"

सुमन्त और ईश्वरलाल उस चीख को सुनकर और उनकी बाते सुनकर आश्चर्य से अवाक् होकर जहाँ के तहाँ ठिठक रहे। सुमन और शान्ता और पास खिसक आई और झुककर रोगियो के मुँह की ओर देखने लगी। स्त्री पुनः मूर्छित सी हो गई थी, पर मन ही मन न जाने क्या बड़बड़ाते हुये वह कराहने लगी। कितना आर्त्त स्वर था उसका, सुनते ही सुमन का मन विचलित हो उठा। उसने जल्दी से कहा—"सुमन्त भाई देर क्यो लगा रहे हो। मुझसे नहीं देखी जाती इनकी यत्रणा। इन्हे जल्दी अस्पताल पहुँचा दो, शायद बच जायँ।"

सुमन्त सुना-अनसुना करके एकटक उस आदमी की ओर देख रहा था जो मृत्यु के मुख मे पहुँच कर भी अहंकार पूर्वक कह रहा था कि मै भिखारी नही हूँ। भिक्षा नहीं, काम चाहिये मुझे। आश्चर्य इतना आत्मभिमानी पुरुष? कौन है यह? मन बरबस इसकी ओर

क्यों खिंच रहा है ? यह आवाज़ अकस्मात् कानो की राह मनमें प्रवेश करके काँसे के बर्तन पर पड़ी लकड़ी की चोट की तरह क्यों बज उठी है ? वह झुककर देखने लगा। रागी के मुख पर चन्द्रमा का पूरा प्रकाश पड़ रहा था, उसका चेहरा साफ-साफ दिखाई दे रहा था। सुमन्त के चेहरे के भाव बदल रहे थे। हठात् बहुत ही उत्तेजित होकर वह बोल उठा—"हा भगवान्! अरे ईश्वर यह तो चारु है।"

"चारु, चारु कौन ? ईश्वरलाल चौंककर बोला।

"चारु, अरे वही अपना मित्र चारुचन्द्र चटर्जी जो सेकेन्ड इयर मे हमारे साथ था। हमारा सहपाठी चारुचन्द्र, जिसने गत वर्ष एम० ए० पास करके कालेज से विदा ले ली थी ?" बहुत ही उत्तेजित स्वर मे सुमन्त ने कहा और वह आत्म विस्मृत-सा होकर, सब कुछ भूलकर ज़मीन पर बैठ गया और चारुचन्द्र का सिर उठाकर अपनी गोद मे रखते हुये कहा—"अरे चारु, तुम यहाँ, इस तरह।

सुमन्त असहनीय वेदना से थर-थर काँपने लगा। अपने प्रिय मित्र का मुख अपने हाथों मे लेकर एकटक उसकी ओर देखने लगा। आँखों से आँसू निकल-निकल कर उस मुमूर्ष प्राणी के मुख पर टपा-टप गिरने लगे। चारो ओर घोर निस्तब्धता व्याप्त हो गई। वे चारो अवाक् भाव से, काठ से जहाँ के तहाँ रह गये। उनके मुख से एक भी शब्द नहीं निकला। अपने हृदय की धड़कन तक वे सुन सकते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि वे इस दुनिया के लोगो से एकदम पृथक खड़े कर दिये गये हो। एक असहाय अपरिचित भावना उनके मनो में अज्ञात रूप से गहरे झकोरो के साथ पेंगे लेते हुये किसी अज्ञात सत्ता से टकरा रही है। वह उससे लड़ते हुये पूछ रही है—"यह क्या देख रहे हैं हम ? क्या है यह, यह क्या अब भी न बताओगे।"

ये चुपचाप स्तब्ध भाव से, अपराधी से, हतप्रभ से होकर उस नर-कंकाल की ओर ताकते रहे। उनकी बुद्धि इस आकस्मिक आघात से सन्न हो गई थी।

अचानक उस स्त्री ने फिर करवट बदली और बड़बड़ाते हुये बोली—"कौन आया था रमेन के बापू यह क्या रो रहे हो तुम · यह कैसा अँधेरा है।"

उसकी आवाज़ सुनते ही उन्हें होश आया। करुण स्वर मे सुमन बोली—"सुमन्त भैया चलो इन्हे शीघ्र अस्पताल पहुँचाओ·· शायद अब भी बच जाँय। हम जो कुछ इनके लिये कर सकें···?"

सुमन्त उठा। उसने ईश्वरलाल की सहायता से उस मरणासन्न स्त्री को उठाकर सँभाल कर पिछली सीट पर लिटा दिया। सुमन और शान्ता उसे पकड़ कर पीछे बैठ गईं। आगे की ओर चारु को पकड़ कर ईश्वरलाल बैठा। सुमन्त ने मोटर स्टार्ट कर दी।

रात के ग्यारह बजे थे। डाक्टरों ने अभी-अभी अपने काम से कुछ घंटो का अवकाश ग्रहण किया था और वे लोग अब डाक्टर-रूम मे जाकर अपनी थकावट मिटाने के लिये चाय पी रहे थे। सहसा सुमन्त दौड़ता हुआ आया और अपने दल के डाक्टर कुलेडकर से आतुर-विह्वल स्वर मे बोला—"सर जल्दी चलिये बड़ा गम्भीर केस है।" "क्या है सुमन।" डाक्टर मुकर्जी ने प्रश्नात्मक दृष्टि से उनकी ओर देखते हुये पूछा। उनकी बात का कुछ भी उत्तर न देकर, सुमन्त बोला—"सर शीघ्र चलिये, अभी इसी क्षण।"

"क्या बात है वहाँ डाक्टर परांजपे तो हैं।" चकित और विस्मित स्वर में डाक्टर कुलेडकर ने पूछा। सदा के गम्भीर सुमन्त की यह अधीरता उनको विस्मित करने वाली थी।

"आप नहीं जानते, वह तो चारु है।"

"चारु कौन?" डाक्टर कुलेडकर ने पूछा।

"चारु हमारा साथी और सहपाठी जो सेकेन्ड इयर में हमारे साथ बम्बई में पढ़ता था।" बहुत ही व्याकुल भाव से सुमन्त ने कहा।

उसके कथन का अर्थ समझते ही सब डाक्टर चौंक उठे। चाय के प्याले मेज़ पर पटक कर वे तत्काल उठ खड़े हुये। उन सब का हृदय किसी अप्रत्याशित घटना के भय से आंदोलित हो उठा। शंका पूर्ण हृदय से वे लोग वार्ड नम्बर तीन में जा पहुँचे। वहाँ स्ट्रेचर पर ईश्वरलाल पहले ही चारु को लिवा लाया था। डाक्टर परांजपे उसकी देख-रेख कर रहे थे।

डाक्टर मुकर्जी ने उसे देखते ही कह दिया—"यह नहीं बच सकता।"

डाक्टर कुलेडकर ने देखते हुये कहा—"देखते हैं डाक्टर परांजपे इसके गले की नलियाँ किस प्रकार सूख गई हैं। जान पड़ता है कि महीनों से इसे कुछ खाने को नहीं मिला है। डाक्टर परांजपे ने दूध की नली हाथ में लेते हुए कहा—"इसके पेट में कुछ आहार पहुँचाना बहुत आवश्यक है। सुमन्त इधर आओ मेरी मदद करो।"

बड़ी कठिनाई से किसी तरह चारु के गले के नीचे कुछ दूध उतारा जा सका। इसके बाद उसे कई इंजेक्शन दिये गये। उसकी हालत कुछ-कुछ सॅभल चली और वह गहरी नींद में सो गया देखकर

परांजपे बोले—"अगर सारी रात वह सोता रहे तो बचने की एक क्षीण आशा हो सकती है। इसके लिये जो कुछ हम कर सकते है, सब हमने किया आगे हरि इच्छा। अब यहाँ रुककर भीड़ लगाये रहने की आवश्यकता नही है। सुमन्त तुम यही रहो और सब लोग चलो। रात मे आज मेरी ड्यूटी है। डाक्टर कुलेडकर आज आप आराम कर ले अन्यथा इतना परिश्रम करते-करते बीमार हो जायँगे आप। सुमन्त ज़रूरत पड़े तो मुझे बुला सकते हो।"

सिर हिलाकर सुमन्त ने अपनी स्वीकृत दे दी। उसे आश्वासन देकर वे सब लोग चले गये। सुमन्त अकेला वहाँ रह गया।

रात को दो बज रहे थे। सुमन्त एकटक अपने मित्र की ओर देख रहा था। इस समय साधारण धोती-कुर्ते मे वह बहुत भला प्रतीत होता था। चेहरा उसका अत्यन्त पीला और शुष्क था। लम्बी लम्बी पलके स्थिर भाव से बन्द थी। सुन्दर माँसल भुजाओ की माँस पेशियाँ सिकुड़ गई थी, चेहरे पर असंख्य उपवासो के रेखा चिन्ह अंकित हो गये थे। सुमन्त निर्निमेष नयनो से अपने मित्र की ओर देख रहा था, रह-रहकर उसकी आँखो मे आँसू भर आते थे।

अचानक चारुचन्द्र ने करवट बदली और धीमे स्वर में कराह उठा। सुमन्त ने तुरन्त एक हाथ उसके सिर पर और दूसरा छाती पर रखकर बहुत स्नेह पूर्ण स्वर में कहा –"चारु, चारु, कैसी तबीयत है तुम्हारी?"

किसी का परिचित कंठस्वर कानो मे जाते ही चारुचन्द्र चौंक उठा। आँखे खोलकर क्षीण स्वर मे पूछा—"कौन है?"

सुमन्त भूल गया कि चारु से बाते करना मानो उसे मृत्यु के गर्त में ढकेलना है, वह भूल गया कि चारु बहुत बीमार है और उससे

नहीं बोलना चाहिये। वह चारु के ऊपर झुककर धीमें, कोमल स्वर में बोला—"मुझे पहचानते हो चारु ?"

"कौन है ?" आँखे फाड़कर देखते हुये, पहचानने का प्रयत्न करते उसने पूछा"कौन है ?" और एकदम पहचान कर बोला—"कौन सुमन्त ?"

चिर परिचित कंठ स्वर सुनते ही सुमन्त का हृदय भर आया। आवेश भरे स्वर मे बोला—"हाँ चारु तुम्हारा मित्र सुमन्त! पहचान तो लिया तुमने, मै समझता था कि तुम मुझे नहीं पहचानोगे।"

चारुचन्द्र अपने मित्र को पहचान कर, सहसा उससे भेंट करके अत्यन्त प्रसन्न हुआ, किन्तु उसमे अपना आनन्द प्रकट करने की शक्ति नही थी। एक क्षीण मुस्कान के साथ उसने कहा—"तुम्हे नहीं पहचानूँगा सुमन्त। अच्छा हुआ जो अन्तिम समय तुमसे भेंट हो गई। मरते समय अपना एक मित्र पास रहेगा, यह क्या कम आनन्द की बात है ?"

सुमन्त ने उसकी बात सुनकर तिरस्कार भरे स्वर मे कहा—"चारु ऐसा न कहो, तुम अच्छे हो जाओगे।"

चारु ने व्यंग भरी हँसी हँसकर कहा—"सुमन्त तुम मेरे मित्र हो, दया करके ऐसा न कहो। अब जीने की इच्छा नहीं रही। लालच · जीने का लालच अब तक बचा चला आता था लेकिन !"

सुमन्त की आँखो में आँसू भर आये, उसने बीच मे ही रोककर कहा—"चारु यह मत कहो। मैं जैसे बनेगा, तुम्हें बचाऊँगा !"

"नही सुमन्त तुम क्या कर सकते हो। तुम तो ईश्वर नही हो !" वह उदास करुण हँसी हँसा और सुमन्त का हाथ अपने हाथ मे

लेकर छाती पर दबा लिया जैसे उसके सबल पुष्ट हाथो के स्पर्श से उसे बहुत सुख मिल रहा हो ।

क्या यह चारु कह रहा है ? वह चारु जो एक दिन कहा करता था कि मनुष्य क्या नही कर सकता, ईश्वर क्या है । कुछ भी नही, केवल मनुष्य के मन का एक भ्रम मात्र । वही अब यह कह रहा है, सुनकर चारु को विश्वास नहीं हुआ । वह न समझ सका कि यह कितने बड़े दुःख की बात है, इसकी तह मे कितना बड़ा इतिहास छिपा हुआ है । चारु की बात सुनकर मर्माहत होकर उसने कहा—"मित्र इतने निरुत्साह क्यो होते हो । साहस करो, बचने की कोशिश करो ।"

"बचने की कोशिश करूँ, किसके लिये ?" चारु के पीले मुख पर एक गम्भीर आवेश पूर्ण हास्य रेखा नृत्य करने लगी । एक लम्बी साँस लेकर उसने कहा—"माँ, बापू और सुव्रता सबको गँवाकर यह अभागा चारु ही अब जीकर क्या करेगा । आह ! कहाँ गये वे सब !"

सुमन्त की आँखो में आँसू भर आये । उसने कहा—"चारु !"

"चारु अब नहीं है सुमन्त ।" और फिर अत्यन्त वेदना भरे स्वर मे बोला—"अब मेरे पास क्या शेष रहा है । मेरी समस्त निधियाँ तो न जाने कब, न जाने कहाँ खो गई ।"

सुमन्त ने उसके मुँह पर हाथ रखकर कहा—"चारु इस समय तुम चुप रहो, अधिक न बोलो । उत्तेजित होना तुम्हारे स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद नही ।"

चारु अवहेलना पूर्वक हँसा और उसका हाथ अपने मुख पर से हटाकर बोला—"चुप सदा के लिये हो जाऊँगा सुमन्त, पर एक मिनट ठहरो । पहले मुझे कुछ कह लेने दो ··।"

"चारु पहले दवा पीलो !"

"दवा, नहीं रहने दो ! आह मेरी माँ. मेरी सुव्रता वे बिना औषधि के मर गई , अब मै दवा पीकर क्या करूंगा ! जानते हो सुमन्त जब बंगाल मे अकाल शुरू हुआ और उसकी लहर हमारे गाँव तक पहुँची, रात मे हमारे गाँव के दो भले आदमी सड़क पर भूख से मर गये, और उनकी विपत्ति की कथा लोगो को ज्ञात हुई, तब मै दौड़ता हुआ घर गया बोला—"माँ हमारे गाँव के कई आदमी भूख से मर रहे हैं, हमारे घर मे बहुत चावल है, क्यो न हम इसमे से कुछ उधार दे दे ? माँ कहने लगी "उधार किसे दोगे, इनमें से कौन है जो उधार फेर सकेगा। मै जल्दी से बोला—"नहीं दे सकेगा तो न सही। तुम दो तो सही, अपने पड़ोसी हैं, आज उन पर पड़ी है, कल हम पर पड़ सकती है।" माँ ने हँसकर कहा—"अच्छा देते हो तो दो पर उधार समझकर न देना, दान जानकर दो।"

मैंने कहा—"नहीं माँ दान नहीं ! भिखारियो को दान दिया जाता है. वे लेते हैं, पर भले गृहस्थ क्यो दान लेगे ! समान मर्यादा वालों को दान दिया भी नहीं जाता, उधार दिया जाता है। पर इस समय तो ऐसा कोई कारण नहीं तब उपहार भी नहीं, दान भी नहीं, उधार ही दे सकते हैं हम ! है न ठीक !" सुनकर माँ ने कुछ भी नहीं कहा। वह बहुत उदार हृदय थीं। इसके बाद मैं गुप-चुप अपने पड़ोसियों और गाँव वालो को मदद देता रहा। बापू कभी-कभी मना करते थे और बकते-झकते भी थे, लेकिन मैं न मानता था। देखते-देखते अकाल प्रलय की अग्नि की तरह समस्त गाँव में फैल गया और उसके साथ आई बीमारियाँ—हैजा, प्लेग, चेचक और पेट की ऐंठन। लोग गलियों में, घरों के अन्दर, खेतों और खलिहानों में सर्वत्र गिर-गिरकर मरने लगे। मैं देखता रहता और कुछ भी नहीं कर सकता था। लाशो

को उठाने के लिये आदमी नही मिलते थे, मै गाँव-गाँव जाकर लोगों को बुलाता फिरता था पर नीची जाति के लोगों को छोड़कर और कोई नही आता था। मैने सरकार को मदद के लिये लिखा, उच्च अधिकारियो मे से कइयो से मेरी जान पहचान थी, उन्हें भी लिखा पर सकट के दिनो मे कोई काम नहीं आया। जब धनवान था तब सब पहचानते थे, मित्रता का दम भरते थे, विपत्ति के दिनो मे कौन पहचानता है सुमन्त ! ससार के लोग क्या तुम्हारी ही तरह हैं, जो सड़क पर के दीन को मित्र कहकर हृदय से लगा लेते हैं।" कहते-कहते चारुचन्द्र का गला अवरुद्ध हो गया। आँखो मे से दो-चार बूँद आँसू निकल कर लुढ़क पड़े। सुमन्त ने उन्हे बड़े स्नेह के साथ पोछ दिया। किन्तु क्या कहकर उसे आश्वस्त करे यह बात सोच न पाया।

थोड़ी देर के बाद चारु फिर अपनी सारी शक्ति व्यय करके कहने लगा—"गाँव के गाँव साफ हो गये। हमारे घर के सब चावल समाप्त हो गये तो घर के जेवर बेचकर अन्य गाँवो से चावल मँगाया गया। एक दिन माँ ने कहा था—'अब ज़रा हाथ समेटो बेटा, नहीं तो हमें भी भूखो मरना पड़ेगा। मै उनके पैरों पर सिर रखकर कहा था—"भूखो मरना ही भाग्य मे लिखा हो तो यही सही लेकिन हाथ समेटने की बात न कहो। एक रोटी हो तो उसे भी अपने साथी के साथ बिना बाँटे न खाना, बचपन मे यही तुमने सिखाया था, आज ऐसी विपत्ति मे मरते आदमी के मुँह का कौर छीनकर मैं न खा सकूँगा।" माँ सुनकर रोने लगी, कहा—"यदि ईश्वर ने हमे इतनी सामर्थ्य दी होती तो इन्कार नहीं था बेटा पर हमारी स्थिति ऐसी नही है। मै अपने लिये नही कहती ·।" इसके बाद उसने कुछ न कहा। घर की समस्त वस्तुएँ एक-एक करके बेच डालीं पर फिर भी छ महीनो

के बाद हम लोगों को भूखों मरने की नौबत आ गई। गाँव में जो दरिद्र थे वे भूख से और पैसे वाले बीमारियों से मरने लगे। बहुत से मृत्यु के भय से गाँव छोड़कर भाग गये। पर भागकर जाते कहाँ, रोग और मृत्यु सर्वत्र एक सा था, भागकर बचना कठिन था। उनमें से अनेक राह में मर गये। बहुतों की लाशें उठाकर सड़क के किनारे ही फेंक दी गई, बहुत से जीते जी ही अपने आत्मीयों के द्वारा त्याग दिये गये और उन्होंने तड़प-तड़प कर अपना दम तोड़ दिया। एक दिन मेरे बापू को भी हैजा हो गया। मैं घर में था नहीं और घर वापस लौटने के पहले ही उनकी भी मृत्यु हो गई। मरते समय गाँव के भूख से व्याकुल हैजा पीड़ित, दीन, अनाथ मनुष्य सैकड़ों की संख्या में उनके पास मौजूद थे। बापू ने मरते मरते माँ से कहा—"चारु से कहना कि जैसे बने इन लोगों को बचाये। मेरी तरह औषधि-पानी के बिना ये न मरने पावें। चाहे सर्वस्व चला जाय और प्राण भी जायँ, तो भी वह इन्हें न छोड़े।"

कहते-कहते चारु का गला भर आया—फिर भी वह कहता रहा—"बापू का दर्शन भी अन्तिम समय न कर सका, यह क्या कम दुःख का विषय था। अभी इस आघात को मैं सँभाल भी न पाया था कि अचानक मेरा ध्यान इस बात की ओर गया कि माँ दिन-दिन सूखती चली जाती है। पहले समझा कि वह शोक के कारण ऐसी हो रही है, लेकिन जब एक दिन वह चल बसी, तब मैंने जाना कि भूख के कारण बिना खाये-पिये मरी है। उसने पन्द्रह दिनों तक कुछ भी नहीं खाया और अपने हिस्से का अन्न पास-पड़ोस के बच्चों को बाँट देती थी। मरने के पहले उसने अपना भेद खोला। मैं उसे जब बड़े प्रयत्न से प्राप्त दूध पिलाने चला तब उसने मेरा हाथ हटा दिया और क्षीण हँसी हँसकर कहा—"मेरी अपेक्षा और ऐसे लोग हैं, जिन्हें इसकी

बहुत आवश्यकता है। मै तो बहुत दिन जी चुकी, संसार के सब सुख भी भोग लिये अब मुझे उनकी लालसा नहीं है। जिन्होने अभी संसार मे प्रवेश किया है, उनको बचाने की कोशिश करो।"

सुमन्त के नेत्रो के सन्मुख मानों अँधेरा छाने लगा। चारु को क्या हो गया है, जो वह चुप होना नही चाहता। बोलता ही जाता है। जल्दी से उसके मुख पर हाथ रखकर उसने कहा—"शान्त हो चारु! उन दुःख भरी बातों को भूल जाओ · ।"

'भूल जाऊँ यह कैसे सम्भव है सुमन्त! भूल जाऊँ बापू को, माँ को, सुब्रता को? सुब्रता की बात तो मैंने तुमसे कही ही नहीं। वह पड़ोस के एक बड़े जमींदार की एकमात्र कन्या थी। बचपन में उसके साथ मेरी सगाई हुई थी। परिचय पुराना था, मैं लज्जावश उसके पिता के पास तो नहीं जाता था, किन्तु प्रायः सुब्रता से गुप चुप भेंट कर आया करता था। जब वह मिलती पूछती—'गाँवों का कैसा हाल है।" क्या कहता उससे। पहले तो कहता रहा सब ठीक है, पर बाद में मिलना ही छोड़ दिया। एक तो मुझे इतना समय न था। दूसरे उसके पिता से, अकाल-पीड़ितों के लिये जब मै सहायता माँगने गया तब उन्होंने कहा—"यह काम सरकार का हैं। जब तक सरकार कुछ नही करती, हम सर्वस्व होम कर भी कुछ नहीं कर सकेंगे। यह तो वह अग्नि है, जिसमे घास-फूस, पत्थर-ककड़ तक जल कर खाक हो जायेंगे।" और उन्होने इनकार कर दिया, तब मैं सुब्रता से कैसे मिलता। महीनो बीत चुके थे पर मैं उससे नहीं मिला था। बापू और माँ के देहान्त के बाद एक दिन उसने पत्र लिखकर मुझे बुला भेजा। लाचार हो गया—उसने बहुत दुःखी होकर पूछा—"तुम ऐसे क्यो हो रहे हो?"

उपेक्षा पूर्वक मैं बोला—"अकाल की परिस्थिति मे इससे अच्छी अवस्था की कल्पना क्या की जा सकती है।"

उसने कहा— 'माँ तो गईं, बापू भी गये अब क्या अपनी भी जान देना चाहते हो। अपने शरीर का कुछ तो ध्यान रखा करो।" कहते-कहते उसके नेत्रों में आँसू भर आये। पर मैं स्थिर रहा बोला— "सुब्रता यदि मै मर जाऊँ तो मेरी एक बात याद रखना बात पूरी करने के पहले ही उसने बात काट कर कहा—"कौन किसकी बात याद रखेगा! तुमसे पहले तो मै मरूँगी!"

उस दिन उसकी बातो पर विश्वास नहीं हुआ था सुमन्त। वह मुझसे पहले क्यो मरेगी इसका कोई लक्षण तो दिखाई नहीं देता था। सुन्दर स्वस्थ्य और सम्पन्न घर की लड़की थी वह। अकाल के उन दिनो मे भी उसकी काति और सौन्दर्य मे कोई अन्तर नहीं आया था और सुना कि दूसरे ही दिन वह दार्जिलिग जा रही थी, रोग के भय से उसके पिता भी गाँव छोड़कर चले जाना चाहते थे। अविश्वास पूर्वक मै बोला—"कल तो तुम जा रही हो, अच्छी बात है तुम दार्जिलिंग जाओ। मै तो कहीं जाऊँगा नहीं, यहीं रहूँगा।"

"मैं भी कहीं नहीं जाऊँगी, यहीं रहूँगी।" यह कहकर हँसते-हँसते वह चली गई। मै राह भर उसी की बात सोचते हुये किसी तरह घर आया। सुना था कि उसके पिता मुझे पागल कहकर हँसी उड़ाते हैं पर उनकी लड़की का मनोभाव क्या है, यह वे नहीं जानते थे। मै भी उनसे नहीं मिलता था, ऐश्वर्यशाली मनुष्यो और दीन-हीन व्यक्तियो मे कैसा सम्बन्ध, कैसा परिचय। मिथ्या होता है उनका व्यवहार। सुब्रता से मिले कई दिन बीत गये। मै अपना गाँव छोड़कर दूर के गाँवो मे चक्कर काटने चला गया। वापस लौटकर सुना कि सुब्रता के

पिता का आदमी इस बीच कई बार आकर मुझे पूछ गया है, पर किसी को भी ज्ञात नहीं था कि मै कहाँ हूँ। क्यों, किस कारण, यह जानने के लिये गया, तो मालूम हुआ कि सुब्रता अब इस संसार में नही है और उसके पिता यह ठोकर खाकर पागल से हो उठे हैं। उन्होने अपनी सब खत्तियो को खुलवा दिया है। सर्वस्व लुटाये दे रहे है, जिसका जी चाहे चावल ले। कोई टोक नही, कोई बाधा नहीं। सुब्रता मर गई। ओह सुमन्त मेरे लिये, दीनों के उपकार के लिये प्राण दे दिये उसने, वह जैसे जानती थी कि वह मरकर उनका उपकार कर सकेगी, हैजा जब तक तीसरी हालत मे न पहुँच गया, वह उसे छिपाये रही मरने के पूर्व वह मुझसे कुछ कहना चाहती थी, लेकिन न कह पाई।"

चारु चुप हो गया। इतनी बाते कहने पर भी उसकी उत्तेजना शान्त नहीं हुई थी। उसके ओठ अब भी काँप रहे थे, आँखे आवेश और शोक से मानों अग्नि हो रही थी। अब उसके हृदय की ज्वाला ने उसके सब आँसुओ को सुखा डाला था और वह बहुत गम्भीर तथा शान्त भाव से सुमन्त के मुख की ओर ताकने लगा।

ठडी साँस लेकर सुमन्त ने आश्वासन देते हुये कहा—"भाग्य की बात तो देवता भी नही जानते चारु! चार साल पहले क्या हम लोग इस दिन की कल्पना भी कर सकते थे मित्र!"

प्रदीप्त कंठ से चारु ने कहा—"हाँ कल्पना नही कर सकते थे सुमन्त! बगाल में अकाल है, यदि यह दैवी है तो मनुष्यों को इसका उपाय करना चाहिये...पर वह दैवी नही है। मैने जिन-जिन उच्च अधिकारियो से सहायता की प्रार्थना की, उन्होने यह नहीं पूछा कि उन गाँवो की हालत कैसी है, बल्कि पूछा कि वहाँ काँग्रेस का कितना

ज़ोर है। उन गाँवों से सामुहिक जुर्माना वसूल करने तो फौजे आई थीं, पर जब गाँव वाले भूख और रोग से तड़प-तड़प कर मरने लगे तब न तो किसी फौजी अधिकारी का खोजने से पता चला, न गवर्नर की विशेष आज्ञा और विशेष अधिकारो का प्रयोग हुआ। शासन तंत्र पूर्ववत शान्त रहा·· उसकी मशीन चलती रही नहीं-नही वह दैवी नही, मनुष्य का लाया हुआ, मानवता पर बल पूर्वक लादा हुआ अभिशाप है !"

चारु तीव्र स्वर मे बड़बड़ाने लगा। सुमन्त ने उसे रोकने की चेष्टा की पर वह न माना। अंत में कुछ देर बाद उसकी बोलने की शक्ति धीमी पड़ने लगी और वह चुप हो गया। सुमन्त ने देखा वह मूर्च्छित हो गया है। भयभीत होकर वह तुरन्त कमरे से बाहर आया और एक स्वयसेवक को डाक्टर पराँजपे को बुलाने भेजकर, एक और मेडिकल कालेज के छात्र को जो उस समय ड्यूटी पर था, सहायता करने के लिये बुला लाया।

दोनो चारुचन्द्र को होश मे लाने की कोशिश करने लगे। सुमन्त ने पूछा—"आज कैसा हाल रहा अस्पताल मे !"

"बहुत बुरा। आज दो सौ से ऊपर भर्ती हुए हैं और छियान्नवे मरे हैं।" लड़के ने विषाद भरे स्वर से उत्तर दिया।

"अच्छा।" सुमन्त ने कहा, उसके स्वर मे एक अनिश्चित अस्थिरता था, एक प्रश्न था, मानो वह कुछ जानना चाहता था। छात्र ने पुनः कहा—"और छप्पन अस्पलाल से बाहर निकाले गये हैं। वहाँ जैसे उनके लिये कोई थाली परोसे बैठी हो, उनके लौटकर आने की राह देख रही हो ?"

उदास भाव से सुमन्त बोला—"हाँ, मृत्यु तो राह देख रही है भाई, पर ख़ैर बताओ उस औरत का कैसा हाल है !"

अभी-अभी मैने सुना है कि मरा बच्चा उत्पन्न करके स्वयं भी मर गई।"

समन्त की साँस जैसे रुकने सी लगी। प्रबल प्रयत्न करके, मन की शक्ति व्यय करके पूछा—"और शिवेन्द्र !"

"अच्छा हो गया था, इसलिये आज अस्पताल से निकाल दिया गया, स्थान की कमी थी इसलिये।"

समन्त सहसा स्तब्ध रह गया। जगह की कमी है। अस्पताल मे—देश मे, देश के बाहर सर्वत्र आज जगह की कमी है। उसे स्मरण आया आज ही उसने इटली मे लड़ रही भारतीय सेना के बीरो की बीरता के सम्बन्ध मे कुछ पढ़ा था उसका मस्तिष्क उन बातों को याद करके उबल पड़ा—अफ्रीका मे भारतीय लड़े और मरे तथा उन्होंने बिजय प्राप्त की। इटली मे भारतीय लड़ और मर रहे हैं, तथा वे ही वहाँ भी विजय प्राप्त करेंगे। बर्मा में, सिङ्गापुर मे, मलाया मे जावा आदि पूर्वी द्वीप समूहो की लड़ाइयों मे भारतीय लड़े और मरे, फिर लड़ेंगे और मरेंगे · उनके घर का—देश का यह हाल है। सुमन्त अत्यन्त उत्तेजित हो उठा, उस उत्तेजना मे सब पीड़ित मनुष्य उसे चारु के प्रतिबिम्ब प्रतीत हुये···यह ज़मीन पर क्यों पड़े हैं···रो क्यो रहे हैं क्या है इनकी विपत्ति किस विवशता ने उनके हाथ-पैरो को जकड़ कर बाँध रखा है···क्यो है यह अकाल जो सालों से चल रहा है, और फिर भी दूर नही होता।

"क्यो तुम कौन हो महाशय चेहरा पहचाना मालूम होता है पर नाम याद नहीं आता · हाँ तो तुम कह रहे हो कि हिन्दुस्तान अमीर हो रहा है—वर्तमान युद्ध से उसने लाभ उठाया है ·हाँ मालूम होता है कि बहुत रुपये बैंक मे तुमने जमा कर लिये हैं · ?" समन्त ने

मन ही मन एक छाया सी मूर्ति को लक्ष्य करके यह कहा और फिर मन ही मन हँसकर बोला—"यह अग्नि जिसकी लपटें आकाश में उड़-उड़कर हिमालय से कन्याकुमारी तक जा पहुँची है·· लाखों व्यक्ति अपने सर्वस्व सहित भस्म हो रहे हैं जिसमें और···!"

अचानक उसकी विचारधारा मे आघात पहुँचा कर सहसा चारु चीख उठा—सुमन्त-सुमन्त कहाँ हो तुम !"

दोनो हाथों से उसे आलिङ्गन पाश मे जकड़ते हुये सुमन्त विह्वल स्वर मे बोला—"होश में आओ चारु, मै तो तुम्हारे पास ही हूँ।"

उखड़ते स्वर में चारु बोला—"मैं आकाश में उठा जा रहा हूँ, मुझे पकड़ लो सुमन्त।" और फिर चौक कर बोला—"यह क्या माँ·· तुम आ गई · पर तुम इतनी क्रोधित क्यों हो · हाथ मे तलवार क्यों है किसे मारोगी माँ ?"

उसे केवल दो हिचकियाँ आईं और प्राण पखेरू अनन्त आकाश में सैर करने के लिये उड़ गये। विह्वल-सा, चेतना रहित-सा सुमन्त उसे अपनी गोद में लिये बैठा रहा।

रोगी की चीख सुनकर छात्र उसके समीप आया और असल बात समझ कर सुमन्त का कंधा हिलाकर बोला—"सब समाप्त हो गया !"

किन्तु सुमन्त ने उसकी बात नही सुनी। वह देख रहा था कमरे की दीवालो के उस पार खेल रही चाँदनी को · कार्तिक की पुण्यमयी गम्भीर पूर्णमासी के उज्ज्वल स्निग्ध प्रकाश को ·। वह देख रहा था·· दूर · बहुत दूर·· अमावस्या की घोर लालिमा का मेघ धीरे-धीरे उसे

पूर्ण चन्द्र निगलता हुआ सम्पूर्ण देश के ऊपर फैला जा रहा है···। नीरव···निस्तब्ध ··अंधकार की चादर देश को अपने नीचे ढके ले रही है।

उसकी आँखों से टपाटप करके आँसू चारु के मृत शरीर के ऊपर गिर रहे थे।

लक्ष्मीचन्द्र बाजपेयी

ईश्वर स्वप्न है—न्याय मज़ाक है।

दुनिया में दीन और ग़रीब कीड़े-मकोड़े से भी गये बीते हैं।

# कलंक का टीका

गम्भीर रात्रि, सजग अन्धकार, चारों ओर गहरी शून्यता छाई थी। कलकत्ता शहर के एक छोर पर उस कच्चे मकान मे धुँधला प्रकाश था, जो रह-रहकर तेल की कमी के कारण अपनी साँसें तोड़ रहा था। कभी-कभी झींगुरों की झनकार रात्रि की निपट शून्यता को और भी भयानक बना देती थी।

घर के एक कोने में छोटी-सी टूटी चारपाई पर वह नन्हा-सा शिशु मचल-मचल पड़ता और कठिन लम्बी बीमारी के कारण चीख़-चीख़ रो भी देता। कमज़ोरी और दुर्बलता के कारण वह ज्यादा रो भी नहीं सकता था। अजीब दशा थी उसकी। शरीर सूखकर काँटा हो गया था। आँखे धँस गई थीं। अपना सम्पूर्ण आक्रोश वह पैर पटक-पटक कर ही व्यक्त कर देता। होंठ सूखे थे। हृदय की अग्नि ठंडी हो रही थी, मानो उस माता के विशाल आसमान का प्रकाशमान शिशु-सूर्य धीरे-धीरे अस्तमित हो रहा हो, जिसे वह एकटक दृष्टि से, ठगी-सी, पागल की भाँति देख रही हो।

दवा-दारू के लिये पैसे न थे। अकाल केवल उसके घर में ही नहीं वरन् सारे बंगाल प्रान्त और शहर में छाया था। धर्मभीरु जाने कहाँ चले गये थे। इस क्षण उसे भान हुआ—धर्म का अस्तित्व नहीं है। नियम-संयम आडम्बर और स्वाँग हैं। ईश्वर स्वप्न है। न्याय

मज़ाक है। दुनिया में दीन और ग़रीब कीड़े-मकोड़े से भी गए बीते है।

वह नन्हा-सा शिशु चीख़ पड़ा। माता के हृदयाकाश में भय की बिजली कौंध कर रह गई। पुचकार कर बोली—"मेरे लाल!" आगे कुछ न कह सकी। कण्ठ भर आया। आँखे छलछला आयीं। हृदय को जैसे किसी ने पैनी छुरी से तराश दिया हो।

टप-टप आँसुओ की बूँदे धरती पर गिरीं और शायद सूख गईं। एक नये स्वप्न से उलझ गई वह।

घर में आज ही क्या कई दिनों से खाने को नहीं है। अकाल के अतिरिक्त कालरा का भी प्रकोप था। उस दिन पुलिस वालो ने गन्दे सड़े, खरबूजे शहर के बाहर फेंकवा दिये थे। उसने सुना और वहीं जा पहुँची। उसने देखा इस शहर में केवल वही नही, उस जैसी अनेक माताएँ हैं, बहुएँ हैं और स्त्रियाँ हैं, जो इन सड़े फलो को बटोरने के लिये एकत्र है और इन्हे कालरा का भय लेशमात्र भी नहीं है क्योंकि अकाल उसकी महौषधि मौजूद है।

कई दिन उसने इन सड़े खरबूजों पर काट दिये। फिर दो दिन पानी पी-पीकर बिता दिये। परसो जब वह कहीं कुछ माँगने ही निकली थी, उसकी क्षुधा अपनी अन्तिम सीमा को पार कर चुकी थी और उसका चलना तक दूभर था। उस बच्चे को क्या दे, यह समझ मे नहीं आ रहा था, क्योंकि उसकी आँखें सूखी थीं और स्तन भी सूखे थे—दूध नहीं था।

देखा उसने—सुन्दर हवेली से किसी सेठ की बहू ने बासी पापड़, भात और बासी रोटियाँ नीचे सड़क पर फेंक दी हैं। एक कुत्ता बुरी तरह चावल और पापड़ साफ़ कर गया और रोटी उसके मुँह मे पहुँची ही थी कि विद्युद्वेग से उसने उसके मुँह से छीन लिया—मानो सम्पदा

मिल गई। उस रोटी को आधी-आधी खाकर उसने दो दिन तक चलाया।

किन्तु आज ? आज तो कुछ भी नही है। एक पड़ोसी आये थे, कह गये—'दुख के समय धैर्य धारण करो।' उसे ऐसे उपदेश व्यर्थ लग रहे थे, क्योकि वह भूखी थी, पेट की ज्वाला मे भस्म हो रही थी। अकाल का भयंकर भूत उसके चारो ओर था।

कच्चे घर की एक तरफ अनायास ही बहुत-सी मिट्टी चूहो की हरक़त से आ गिरी। उसका ध्यान भंग हुआ। देखा—एक गहरा अन्धकार उसे ढक रहा है। वह उसी में समाती चली जा रही है। आज भी सड़क का दृश्य उसके सामने घूम गया। सैकड़ो लाशे अन्न के अभाव मे सड़को पर सोयी मिली थी इस सुन्दर शहर का कैसा वीभत्स रूप है यह, वह सोचती रह गई।

अपना दुर्भाग्य ! पति उसका क्या उसके लिये कुछ भी नही था ? था, बहुत कुछ था। शराबी था और बदमाश भी था। पीटने पर तुलता तो जान लेने पर आ जाता, इधर-उधर व्यर्थ घूमना उसकी दिनचर्या थी। पच्चीसो बार लड़ाई हुई। पत्नी कहती—"तुम जानवर की ज़िन्दगी क्यो बिता रहे हो ? कुछ करते-धरते क्यों नहीं ? हट्टे-कट्टे होकर चार पैसे भी नहीं कमा सकते ? तुमने हया-शर्म छोड़ दी है ? आख़िर तुम चाहते क्या हो, मै कमाऊँ ? मेरी क्या हालत देखना चाहते हो तुम ?"

और आज वह सोचती है, मनमें स्थिर करती है, ये तमाम बातें कहकर उसने कितनी बड़ी भूल की थी ! होनहार होकर ही रहता है। उसे ये दुर्दिन देखने ही थे। कलंक का टीका लगाकर जीवित रहना भी क्या !

और उसी दिन रात को उसका पति लापता हो गया था। उसने उत्तर में कहा था—"अच्छी बात है। अब तू मेरा काला मुँह नहीं देखेगी।"

महीनों कुछ पता न चला। उसका जीवन दूभर हो गया। वह सोचती—यह कलंक का टीका कैसे मिटाया जाय? अपने द्वारा किये गये पाप का प्रायश्चित कैसे हो? लेकिन कोई भी उपाय उसकी समझ में नही आता था।

एक दिन सन्ध्या के समय दरवाजे पर बैठी कुछ सोच रही थी। मन भारी था, आँखें आर्द्र! सामने डाकिये को आते देख वह ललक उठी। प्रसन्नता फूट पड़ी जैसे प्रभात कालीन कोमल किरणें आकाश के वक्ष को चीरकर निकल आती हैं। बोली—"कोई चिट्ठी है क्या?

"हाँ, लाम पर से आई है।" कह कर डाकिये ने उसकी ओर फेंक दिया।

अतीत की स्मृतियाँ और स्वप्न एक क्षण में उसकी अन्तरात्मा में नाच गये। पति के अन्तिम शब्द उसके भीतर गूँज उठे। एक गहरे सन्नाटे मे वह अकण्ठ डूब गयी। कुछ भी तो उसे दिखलाई नहीं पड़ता है।

पत्र उसके पति का था। ब्यौरा पढ़कर वह रो पड़ी। एक ओर अकाल और दूसरी ओर उसका पति लाम पर लड़ाई के मोर्चे पर है। सरकार की सहायता कर रहा है। उसका परिवार उसका प्रान्त और उसका देश अकाल की बीमारी से ग्रस्त है। आँसू बह चले उसकी आँखो से।—"हा! दुर्भाग्य!' लम्बी साँस के साथ वह बोली।

"अब खर्च जल्दी ही भेजूँगा।"—उन्होने लिखा है, वह सोचती है।

उसका विद्रोह अन्दर-ही-अन्दर भड़क रहा था। वह सोच रही थी—क्या वे मेरा काला मुँह लौटकर देख सकेंगे ?

कई दिनों के उपवास ने—अकाल के कारण—उसे अधमरी बना दिया था।

सैनिक न्यायालय में उसकी कई दिनो से पेशी हो रही है। अधिकारियो का कहना है—"अभियुक्त ने युद्ध के मैदान में, ब्लैक आउट होते हुये भी प्रकाश करके पत्र पढ़ने की जुर्रत की है, यह न्याय विरुद्ध है। यदि शत्रु पक्ष को इस प्रकाश का किञ्चित् भी भेद लग जाता तो पूरी फौजी की जो दशा होती उसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। ऐसे अभियुक्तों को प्राणो की भिक्षा देकर छोड़ना ऐसे कार्यों को प्रोत्साहन देना है। कानून कानून है। फौज में भूख मिटाने की भिक्षा मिलती है, न्याय की और प्राणो की भिक्षा नही।"

अभियुक्त तना खड़ा था, वैसे ही खड़ा रहा।

न्यायाधीश ने पूछा—"तुम्हे कुछ कहना है ?"

"कुछ नही !"

"तुम्हे अपराध स्वीकार है ?"

चुप।

"तुम्हें कौन सज़ा दी जा रही है, मालूम है ?"

एक गहरा सन्नाटा विद्रोह की रेखा उस नौजवान के मुख पर थी।

सन्तरी को अभियुक्त की अन्तिम बार तलाशी लेने की आज्ञा दी गई। उसके पास कुछ भी न था। न्यायाधीश ने कहा—"अरे ! वह देखो, जेब मे क्या है ?"

एक कागज़ का टुकड़ा था। उसमें हिन्दी मे लिखा था। न्यायाधीश के हिन्दी जानने वाले जज ने उस पत्र का अङ्गरेज़ी में अनुवाद कर दिया।

"युद्ध के मैदान में इस पत्र को पढ़ना उस रात्रि में क़तई आवश्यक न था।" न्यायाधीश ने गुर्राते हुए कहा।

"मै मजबूर था।" अभियुक्त ने तन कर कहा।

"इसे गोली से उड़ाने की सज़ा यह अदालत देती है।" न्यायाधीश ने कहा।

"सहर्ष स्वीकार है।"

पत्र मे लिखा था—"तुम नाराज़ होकर घर से भाग गये, कलंक का यह टीका मैं कैसे धोऊँगी, मेरी समझ में नहीं आता। यहाँ सैकड़ो आदमी भूख से मर रहे हैं। लाशे सड़को पर सड़ा करती है। लड़के-बच्चे दो-दो रुपये मे बिक रहे हैं। मेरे घर मे कई दिनों से खाने को नहीं है। वही पतित-पावन भगवान जानते हैं, अकाल के दिनो में, मैं कैसे गुज़र-बसर करती हूँ। कपड़े पर कन्ट्रोल है, वह भी नही मिलता। चिथड़े लपेटे रहती हूँ। इज्जत की रक्षा कर रही हूँ। मुनुआँ घुट-घुटकर मर गया। पैसे के अभाव मे एक धेले की दवा भी न दे सकी। पहले का हँसता-खेलता शहर अब श्मशान बन गया है। भूख से तड़प-तड़प कर मै भी मौत के मुँह के पास आ गई हूँ। तुम फौज में जाकर 'लेफ्टिनेंट' नही लाट हो जाओ, मेरे लिये बेकार है।"

धर्मवीर भारतिय

# भूखा ईश्वर

एक था गाँव । सदा बहार की हरियाली से जवान, पुरवैया की गोद में अलसायी अधखुली पलकों से जिन्दगी का रङ्गीन सपना देखता हुआ । दोपहरी को सूदूर झुरमुटो से उठते हुये, चरवाहों की बंशी के नग़मे में उसकी छाती से टकरा जाते थे—आधी रात जब बेला फूलता था तो लजवन्ती विरहनियो के काँपते दर्दीले स्वर न जाने कैसी मिठास घोल कर उड़ जाते थे ।

गाँव के बाहर था एक छतदार क़दम का पेड़ । उसके नीचे था एक अनगढ़ पत्थर का ढोंका । वह था उस गाँव का ईश्वर । सुबह होते ही पास के पोखरे से नहाकर लौटने वाली भोली किशोरियाँ मनोवाँछित वर की आशा से उस पर जल चढ़ाती थीं, फूल बखेरती थीं; और पूजा करते वक्त उनके दिल मे न जाने कैसी मीठी-मीठी पीर उठ आती थी कि उनके हाथ काँप जाते थे और गालो पर एक सिहरन दौड़ जाती थी । कभी-कभी दुखियारी माताये आती थीं जिनके बच्चे रोग-शय्या पर पड़े होते थे । वे अपना मैला आँचल खोल दिन भर की कमाई के पैसे चढ़ाती थीं, मत्था टेकती थीं, और बाँह मे गीली आँखे पोछती हुई चली जाती थीं । बहुत से उपासक थे, बहुत सी मनौतियाँ—

मगर ईश्वर था एक; वह सुने भी तो किस-किस की ? पहले किसी-किसी की सुन लेता था, बाद में कन्ट्रोल की दूकान की तरह

बढ़ती हुई भीड़ देखकर उसने भी किनारा कस लिया। अब वह सुबह आरती के वक्त जागता था, भोग लगाता था, दो-एक पूजा गीत सुनता था और सो जाता था। फिर शाम को जागता था। भोग लगाता था। दो-एक पूजा-गीत सुनता था और सो जाता था। कभी-कभी उसके कानों तक सिसकती हुई विनतियाँ पहुँचती मगर उसकी पलको मे नींद का इतना खुमार भरा रहता था कि उससे हिला भी नही जाता था। इसमें उसका कसूर भी क्या था ? भोग के पकवान सुरीली आरती और थपकीदार झोंके—जब आदमी को इतने ऐश में नीद आ जाती है तो फिर ईश्वर तो ठहरा महज़ आदमी की कल्पना।

इस तरह सोते जागते सदियाँ बीत गई। धीरे-धीरे ईश्वर को कुछ परिवर्तन दीख पड़ा। चाँदी की जगह पहले ताम्बे के थाल में आरती जलने लगी, धीरे-धीरे वह भी ख़त्म हुआ और अब कभी-कभी कोई आकर एक मिट्टी का दिया जला जाता था। पकवानों की जगह गुड़ चढ़ने लगा और एक दिन वह भी ख़त्म हो गया।

और एक दिन सुबह जब ईश्वर ने आँख खोली तो देखा वह मिट्टी का दिया भी बुझ चुका था। आस-पास घास उग आयी थी और ऊपर डाल पर बैठा हुआ एक कौआ पूजा गीतो की पैरोड़ी कर रहा हैं। ईश्वर को अचरज हुआ मगर फिर वह आँख मूँदकर सो गया। इस तरह खाली पेट सोते-सोते जब महीनो बीत गये, मगर अब उसकी भूख असह्य होती जा रही थी। पत्थर के कणो में न जाने कैसी मरोड़ उठती थी कि वह तिलमिला उठता था। उसकी नसे इतनी पथरा गई थी कि वह करवट भी नहीं बदल सकता था। पत्थर के कण रह-रहकर तड़प उठते थे।

और एक दिन भूख की आग से पत्थर चिटख़ कर दो टूक हो गया। ईश्वर को उस पत्थर की कैद से छुटकारा मिला मगर भूख से नही। उसकी भूखी रूह पत्थर के टुकड़ो पर डगमगाती रही। मगर बिना आकार के वह भूख बुझाये तो कैसे ? ईश्वर में "इच्छानिर्मिततन" बनाने की ताक़त थी अतः उसने इच्छा की एक शरीर की !

मगर वह भूखा था, और भूखो की इच्छायें भी भूखी, कमज़ोर और कुरूप हुआ करती हैं। फलतः उसे आकार मिला, मगर एक ग़रीब भुखमरे का। फटी मैली धोती, भूखा पेट धँसी आँखे, लाचार क़दम ! ईश्वर खुद अपने रूप पर सिहर उठा—मगर वह मज़बूर था। भूखा स्रष्टा उससे अच्छा सृजन नही कर सकता था।

वह एक पत्थर के ढोके पर बैठ गया और सर झुकाकर सोचने लगा, तब की बात जब वह पृथ्वी पर नही आया था—

तब स्वर्ग था। बरसाती बूँदो की मेहराब वाले फाटक थे। नीले सड़को पर इन्द्र धनुषी बादलो के महल थे। तारो की छीटो वाला सिंहासन था और उस पर था ईश्वर—ताज़ी किरणो का मुकुट लगाये।

पानी की चादर जैसे पंखो वाले देवदूत थे। गीत की उठान जैसी अप्सरायें थीं। बादलो की छाँह जैसे देवता थे।

सब कुछ था मगर वह घमण्ड से गरदन घुमाकर चारो ओर देखता था, उसके वैभव को देखकर त्रस्त होने वाला कोई भी न था। देवता उसकी मुसाहबी करते थे, पूजा नहीं। देवदूत उसका हुक्म बजा लाते थे सम्मान नही करते थे। अप्पसरायें उसकी रूप की प्यास

बुझा देती थीं, उससे प्यार नहीं करती थीं। वह बुझा-बुझा-सा रहता था।

और एक दिन ऊब कर ईश्वर स्वर्ग से निकल पड़ा। तारो ने उसे राह दिखाई। हवाओ ने सूरज किरनो का चूरा उसके क़दमो के नीचे बिछा दिया ईश्वर चलता गया।

धीरे-धीरे बादलो वाली पगडण्डी ठोस होती गई और एक दिन उसने अपने क़दमो के नीचे धरती की कठोरता का अनुभव किया। वह चलता गया और चलते-चलते आ पहुँचा इस गाँव मे और आदमी की पूजा ने जाने क्या जादू फेर दिया उस पर कि वह फिर वापस जाने की भी नही सोच सका। पत्थर बनकर जम गया वहीं।

मगर आज आरती नहीं थी, पूजा नहीं थी, धूप, दीप, नैवेद्य भी नही था। आज थी महज़ भूख, मरोड़ती हुई भूख। और ख़त्म हो चुका था पृथ्वी का सारा आकर्षण। वह व्याकुल हो उठा स्वर्ग जाने के लिये।

उसने बादलो की राह अपनाई। मगर उसे अचरज हुआ। न तारे उसे राह दिखला रहे थे, न हवायें उसके क़दमो के नीचे फूल बिछा रही थीं। वह स्वर्ग के दरवाजे पर पहुँचा। उसने देखा स्वर्ग की शान शौक़त पहले से चौगुनी बढ़ गई है। उसने सन्तोष की साँस ली। मगर देखो तो, देवदूतो ने अभी तक फाटक नही खोला था। उसने ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाया। बहुत देर बाद आँख मलते हुये द्वारपाल की देवकन्या आई, मगर वह ईश्वर का डरावना रूप देखते ही ज़ोर से चीख मार कर भाग गई। द्वारपाल आया। ईश्वर ने डाँटकर कहा—"खोलो दरवाज़ा!"

द्वारपाल ने एक बार सर से पैर तक उसे देखा और पूछा—"अन्दर आने का परवाना है तुम्हारे पास !"

"परवाना ! कैसा परवाना !

"अच्छा परवाना नहीं तो कुछ सोना है घूस देने के लिये !"

'कैसा सोना, कैसा परवाना ! क्या बकता है ! मालिक को नहीं पहचानता !"

"मालिक !" अब तो द्वारपाल की हँसी रोके नही रुकी। "मालिक !" ज़रा आइने में अपनी सूरत तो देखो ! तारे जिसकी अगवानी करते हैं। चाँद जिसका रूप सँवारता है—कहाँ मेरा मालिक कहाँ तुम ? चीथड़ो से रोब नही जमता समझे !"

ईश्वर क्रोध से काँप गया—"क्या मै सदियो पहले स्वर्ग से धरती की ओर नही गया था !"

"हाँ, मगर मेरा मालिक अब भी धरती पर है !" वह देखो शहर के बीचोबीच ईश्वर आराम कर रहा है। वहाँ उसे स्वर्ग से भी ज्यादा आराम है। और तू यहाँ आया है हम लोगो को पट्टी पढ़ाने ! अच्छा चल भाग यहाँ से !"

द्वारपाल ने दरवाजे़ बन्द कर लिये। ईश्वर की जलती हुई पलकों में अपमान के आँसू छलछला आये। ग़रीब भुखमरों के लिये स्वर्ग का भी दरवाज़ा बन्द रहता है यह उसे पहले दिन मालूम हुआ। मगर यह दूसरा ईश्वर कौन पैदा हो गया ? उसने आँसू पोछे और धरती की ओर चल दिया।

धरती पर उतर कर वह उस बड़े मन्दिर के दरवाजे़ पर जा पहुँचा। केसर की सुगन्ध से उसका सर घूम गया। रेशम के दुपट्टे

वाली किशोरियाँ, ठोस गहनों वाली वृद्धायें, मोटे बनिये सभी पूजा के फूल लिये चले जा रहे थे। ईश्वर एक कोने मे भयभीत खड़ा था। कोई उसकी ओर निगाह नही डाल रहा था। थोड़ी देर वह खड़ा रहा फिर भीड़ मे छिपकर अन्दर चला गया। उसी की एक मुर्दा पत्थर की मूरत उसी की पत्थर की लाश रक्खी थी। बगल में एक बहुत मोटा पुजारी भी। उपासक आते थे, थैलियाँ और सोने की ईंटे चढ़ाते थे और पुजारी उन्हे स्वर्ग का परवाना दे देता था। वह क्षण भर तक देखता रहा। फिर उससे न रहा गया। वह चिल्ला उठा—'तुम लोग धोखे मे हो! यह पुजारी तुम्हें धोखा दे रहा है।'

लोगो का ध्यान उधर गया—"अरे! यह भिखमंगा कैसे घुस आया? निकालो इसे। अभी सेठों की पूजा की बेला है। निकल बे!" और उसके बाद ईश्वर को मन्दिर से धक्के देकर निकाल दिया गया।

वह उठकर खड़ा हो गया। उसकी आँखो में चिनगारियाँ छलक आईं। उसके मन मे आया कि एक प्रहार मे वह अमीरों के ईश्वर का महल चूर-चूर कर डाले, मगर उसकी बाहें कमज़ोर थीं और वह भूखा था।

शाम हो गई थी। मन्दिर में भोग लग रहा था और ईश्वर भूखा प्यासा थकावट से चूर अपनी राह पर चला जा रहा था। सड़को के दोनो ओर ऊँची-ऊँची हवेलियाँ थी जिसके नीचे भिखमंगे भूख से कराह रहे थे। वे ईश्वर के ही प्रतिरूप थे—चीथड़ो के वेश मे—वह कभी-कभी अस्फुट स्वर मे भीख माँगना चाहते थे मगर ईश्वर को अपने ही प्रतिरूप देखकर चुप हो जाते थे।

शायद भूख की गर्मी से नसो के तार जल्दी झन्कार उठते हैं, और शायद भूख की हड़कम्पी लपटों से पलकों के आगे का अँधेरा जल्दी जल जाता है—क्योंकि आज इन भूखे, बेबस और लाचार भिखमंगो को देखकर पता नही ईश्वर को कहाँ अपनी सृष्टि में कौनसा दोष लग रहा था। महसूस हो रहा था कि भूल से लापरवाही से, उसने कहीं पर आदमी की पसलियो मे कोई काली बूँद बहा दी है जिससे आदमी की आत्मा मे इतना अँधेरा छा गया है कि वह न सिर्फ यह अन्धेर करता है वरन् इसे चुपचाप सह भी लेता है।

उसे ताज्जुब हुआ, ग्लानि हुई, नफ़रत हुई कि ये आदमी नुमा हड्डी के ढाँचे क्यो कीचड़ में पड़े रहते हैं। क्यो भूख की घिनौनी लपटो मे तिल-तिलकर जलते रहते है? ये लाचार गोश्त के लोथड़े विद्रोह क्यो नहीं कर पाते? क्यो, आखिर क्यो?

और इच्छामय ईश्वर के मनमे उस दिन एक अजब सी इच्छा जगी। वह क्यों न उनके मनमे विद्रोह की किरने बिखेर दे। वह क्यो न इनका दल साजकर इनके क़दम से क़दम मिलाकर इनके कन्धो से कन्धा मिलाकर इनकी आवाज़ को अपनी आवाज़ बना दे। वह क्यो न विद्रोह को ईश्वर ही का साधन बना दे?

मगर इस महान् विद्रोह का, उसके बाद के निर्माण का केन्द्र बिन्दु क्या होगा? उसने सोचा और चारो ओर निगाह दौड़ाई।

और उसने अजब दृश्य देखा। पास की हवेली से एक जूठी पत्तल फेंक दी गई। फुटपाथो पर पड़े हुये नारकीय भिखमगे दौड़े और पल भर में पत्तल का पत्ता-पत्ता ग़ायब हो गया। वे अपनी-अपनी जगह पर आ बैठे और चाव से उन जूठे पत्तलो को चाटने लगे।

ईश्वर की विचारधारा को जैसे किसी ने हथौड़े से चूर-चूर कर दिया। ये, ये जघन्य पापों से भी घिनौने भिखमंगे, ये विद्रोह करेंगे। ये इस योग्य है कि इनके लिये सृष्टि की व्यवस्था बदली जाय ? ये चीथड़े लटकाये हुये कंकाल ? नही, कभी नही ?

काश कि ईश्वर का ध्यान इस वक्त अपने वेश पर जाता जिसके कारण उसको स्वर्ग से धक्के देकर निकाल दिया गया था।

पास वाला भिखमंगा पत्तल की पूड़ी का एक टुकड़ा खा रहा था। उसकी औरत पास बैठी थी। उसके गोद मे भूखी बच्ची रो रही थी।

"एक टुकड़ा इसे भी दे दो न !" औरत बोली !

भिखमंगे ने महज़ उसे घुड़क दिया और अपना टुकड़ा खाता रहा।

औरत ने मिन्नत के स्वरो में कहा— 'उसने दो दिन से कुछ नही खाया ! कैसे बाप हो ? उसके गले से आवाज़ भी नहीं निकल रही है।"

भिखमंगे ने कुछ जवाब नही दिया। महज़ खिसक गया, मुँह फेर लिया और खाने लगा। वह औरत उठी और वहाँ गई जहाँ अब भी कुत्ते पत्तल चाट रहे थे। उसने पास पड़े एक टुकड़े को उठाना चाहा। कुत्ता गुर्राया। वह रुकी जैसे आदमियों से निराश होकर अब जानवरों से दया-याचना कर रही है। कुत्ते ने भी मुँह फेर लिया। उसने मौक़ा पाकर वह टुकड़ा उठा लिया—कि यकायक कुत्ता गुर्रा कर उठा और बाहें झकझोर डाली। मगर फिर भी उसने टुकड़ा न छोड़ा। कुत्ता हारकर पीछे हट गया।

ऐसा लगा जैसे किसी ने ईश्वर के ईश्वरत्व को मरोड़ दिया हो ? वह औरत चीख उठी। उसने दर्द से हाथ झटका। ख़ून

के दो-एक छींटे पास खड़े हुये ईश्वर पर पड़े और वहाँ छाले उभर आये।

वह औरत आई और उसने अपने बच्चे को वह टुकड़ा दे दिया। बच्ची ने टुकड़ा कुतरा और मुस्करा कर माँ की ओर देखा। माँ दर्द से हाथ झिटक रही थी, मगर बच्ची की मुस्कुराहट पर वह भी मुस्करा उठी और झुककर उसने बच्ची के ओठ चूम लिये।

ईश्वर सिहर उठा। इन्ही को क्षण भर पहले वह नफरत की निगाह से देख रहा था। वह भूखा, प्यासा, दरिद्र, चुम्बन उठकर ईश्वर की छाती पर चिपट गया और उसके मनमे एक अजब सी ताक़त जाग उठी—नही! वह विद्रोह कर सकता है; इन्हीं के सहारे विद्रोह कर सकता है। इनमें अभी एक तत्व बाकी है, वे अभी प्रेम करना नही भूले हैं। उनमे अभी ज़िन्दगी की रोशनी बाक़ी है।

और उसने आवाज़ लगाई—

नंगों, भूखो! तुम नहीं जानते, तुम्हारी पसलियो में एक ताक़त छिपी हुई है जो मौत से ज्यादा जहरीली और चाँदनी से ज्यादा सुधामयी है। वह मृणाल सी कोमल, फौलाद सी कठोर है। वह है प्रेम—उसकी रुकावट है विद्रोह, विध्वंस, उसका बहाव है निर्माण—सृजन! जागो! मै विद्रोही, भूखा ईश्वर तुम्हें मानव बन कर जगाता हूँ।

किन्तु उसकी आवाज़ अभी भिखमंगो तक पहुँच भी न पाई थी कि उसे गिरफ्तार कर लिया गया।

दूसरे दिन उसे अदालत मे ले गये। बिना कुछ सुने जज ने सज़ा दे दी क्योंकि उन्हें शाम को सेठो के डिनर में जाना था।

उसके बाद उसे जेल में भेज दिया गया। उसका विद्रोह तड़प कर रह गया।

और ईश्वर अब भी कैद है। उसकी छाती में विद्रोह की हुङ्कार है। उसकी नसों में सृजन की तड़पन है; मगर उसकी हाथों में हथकड़ियाँ हैं और उस पर सेठ के नौकरों का पहरा है।

गंगा प्रसाद पांडेय

सब मिलाकर वह बहुत ही करुण कोमल और दिव्य है, जीवन की आस्था की भाँति अडिग और समय की भाँति गतिवान।

ओंठो में आह का तीखापन और मनमें एक अजीब बेचैनी।

चेहरे में कुलीनता के संस्कार, आँखो में अनुभव की शक्ति, चौड़ी रेखाओ से बना हुआ भव्य ललाट, लम्बी सफेद-स्वच्छ दाढ़ी, सफेद रेशमी लच्छो की तरह मुलायम आकर्षक व्यक्तित्व के साथ कुछ मैली फटी धोती, गन्दी-सी सिकुड़न पड़ी चादर और पैरो में टूटी चप्पल पहने बेत की तीन पाये की कुर्सी पर बैठे पूनो बाबू कुछ सोच रहे थे। भीतर से फुदकती हुई आकर कुमुद ने कहा—

"दादा, खाने चलो। आज तो चावल भी बना है।"

पूनी बाबू की भाव निद्रा टूटी और चावल के नाम से पोपले मुँह मे पानी भर कर बोले—"अच्छा बेटी, चलो आया।"

कुमुद ने जाकर माँ को उनके आने की सूचना दी। माँ ने धीमे से कहा—"देखो कुमुद आज वे कई दिनो बाद ब्यालू कर रहे हैं, चावल परोसते समय तुम यह न चिल्ला उठना कि चावल बहुत थोड़ा है।"

पूनी बाबू आ पहुँचे। गले मे बंगाली उपरना, एक पीतल की और एक काठ की खूंटी लगी खड़ाऊँ, विशाल वक्ष मे भारतीय संस्कृति के प्रतीक दो यज्ञोपवीत, चौके में कुशासन पर एक लोटा जल गिलास आदि के साथ बैठ गये। थाल आया। चावल के साथ मछली देखकर पूनी बाबू उछल पड़े, तीन दिन की भूख साधना ने उनके इस भाव को और अधिक स्पष्ट कर दिया। बिना कुछ प्रश्न किये उन्होने

थोड़ा सा खाया और मुँह पोछते हुये बैठक में चले गये। हुक्का भरा और पीने लगे। ललित के रहते कभी उन्होंने हुक्का खुद नहीं भरा था, पर ये पुरानी बातें हैं। ललित पूनी बाबू का लड़का था, पिछले अगस्त के आन्दोलन में गोली लगने के कारण उसकी मृत्यु हो चुकी थी। कुमुद उसी की एक मात्र लड़की है। ललित था तो कर्क ही पर महीने भर में सौ-डेढ़ सौ रुपये मार-पीट लेता था। पचास रुपया मकान के दूसरे हिस्से का किराया मिलता था। इस प्रकार पूनी बाबू स्वयं रिटायर्ड होकर करीब दो सौ रुपये माह की आमदनी से अपने छोटे से परिवार का पालन कर रहे थे। ऐसी स्थिति में ललित की अप्रत्याशित मृत्यु। भयानक, अंधकार, जड़ता और निराशा जनित विस्मृत·· केवल पचास रुपये···कुमुद शादी के लायक सयानी और उसकी विधवा माँ···पूनी बाबू जैसे डूब गये।

कुमुद ने चुपके से आकर कहा—"दादा, पानी रखा है, रात को मछली पानी माँगेगी। मुस्कान का आदान-प्रदान और कुमुद गायब। पूनी बाबू अपने बाप के समय से रात को थोड़ा सा चावल और मछली खाते आये हैं यह उनकी 'जलतरोई' ( मछली ) वाली वैष्णव परम्परा है। उसका मिलना उपवास का दूसरा रूप है। इधर बंगाल में अकाल, मृत्यु, हाहाकार, चारों ओर त्राहि-त्राहि, जीवन की विकट स्थिति, अन्न का एकदम अभाव, कोई उपाय नहीं। पूनी बाबू ने सोचा कुछ भी न खाकर धीरे-धीरे प्राण दे देना ही अच्छा है, बूढ़ों की हड्डियाँ तो बढ़ती नहीं। कुमुद की माँ काफी होशियार है, कुछ रुपया बचाकर कुमुद की शादी भी कर ही देगी, मैं शायद यह भी न कर सकूं। ऐसा सोचते-सोचते पूनी बाबू सो गये। कुमुद की माँ खाने बैठी। खाते-खाते वह मन ही मन अपने आपसे कहने लगी—"चावल और मछली के अभाव के लिये नहीं, वे अपना खाना बेकार

समझ कर उससे बचते हैं। हमारे जीवन की उनके साथ होने से क्या व्यवस्था है उसे भुला कर वे अपने जीवन की व्यर्थता की बात सोचते हैं। आज हम सनाथ हैं, लड़की की रक्षा मर्यादा है, मेरा सम्मान है। मगर वे किसी प्रकार मानते नहीं। अगर उन्होने ऐसा ही किया तो मैं भी खाना छोड़ दूँगी। मछली के काँटे टटोलती हुई वह इसी विचार प्रवाह मे बह रही थी। दादा से कुछ चावल और मछली तथा माँ से चुपड़ी रोटी पाकर कुमुद चारपाई पर पड़ी तृप्ति की अबोध साँसे भर रही थी।

लड़की अंगरेजी स्कूल की आठवी कक्षा में पढ़ती है, बड़ी सुशील और शान्त। माँ का अतुल दुलार, बाबा का स्नेह-स्निग्ध व्यवहार उसे जीवन में मिला है, किन्तु पिता की मृत्यु का आघात भी वह उठा चुकी है। सब मिलाकर वह बहुत ही करुण कोमल और दिव्य है, जीवन की आस्था की भाँति अडिग और समय की भाँति गतिवान। स्कूल से आने के बाद आज वह कुछ उदास है गालो में आँसू के दाग, ओठो मे आह का तीखापन और मनमे एक अजीब बेचैनी। घर आते समय उसने एक भयावह दृश्य देखा था। चितरंजन एविन्यू में एक भूख से शिथिल जिन्दा जवान को कुत्ते चौंथ रहे थे। उसके अशक्त हाथ-पैर पटकने का प्रयास जैसे कुमुद के प्रत्येक रोम-छिद्र में धँस गया था। उसने घर आते ही माँ से कहा—'आज भूख नहीं है। दादा को और तुमको खाना ही नहीं है, मेरी तरफ से भी फ़ुरसत है। चलो तीनों जने अँगीठी तापे।"

माँ ने आग्रह और विस्मय से भरे शब्दों मे उत्तर दिया—"ऐसा नहीं हो सकता। अभी थोड़ी देर में भूख लगेगी। चलकर दो रोटियाँ सेक लो, मैं उसी जगह बैठूँगी।"

कुमुद ने अनमने स्वर मे कहा—"उँहूँ बे मन खाना घर बैठे बला बुलाना है। अभी दादा उस दिन तुम से कह रहे थे।"

पूनी बाबू सुन रहे थे, बोल उठे—"बेटी, कमाल करती है, यह तो बड़ो के लिये है, बच्चो के लिये नहीं।"

"बच्चा कौन है दादा ?" कुमुद ने प्रश्न किया। दादा ने "तू बच्चा है।" सहज भाव से कह दिया। कुमुद की बन आई उसने फौरन कहा—"अच्छा, कल से मै बच्चो के भोजनालय में खाना खाऊँगी। विश्वास कीजिये वहाँ चावल, दाल, रोटी तरकारी सब मिलती है। मालती वही खाती है।"

दादा ने भरे गले से कुमुद को पुचकारते हुए उत्तर दिया—"वहाँ तो कल से जाना है आज तो यहीं खा लो।" कुमुद ने उनकी बात मान ली। वे चले गये।"

पूनी बाबू हुक्का पीते हुये सोचने लगे—"कुमुद वहाँ खाना खाने गई तो नाक कट जायगी। न तो वह अनाथ है न भिखारिणी। उसके माँ है और नाम के लिये दादा भी। उन्हें ललित का स्मरण हो आया। उसकी तनख्वाह बढ़ गई होती, कुछ मॅहगाई मिलती, और मकान का किराया बढाया गया होता। वह मकान आज जीवन-यापन का एकमात्र सहारा होने के कारण अपनी स्थिति मे अचल है। कौन किरायेदारों से लड़े, मुकदमा करे ! जो मिलता है वही ठीक है। कचहरी में आजकल बहुत रुपये खर्च करने पड़ते हैं, तब भी सुनवाई नही होती। अकाल और युद्ध का ज़माना है इस स्थिति में मामले मुकदमें का सवाल महाभारत के बीच गीता की माँग है। उनकी पलकें मुंद गईं। हुक्का एक कोने में रखकर झपकी लेने लगे।

भारतीय निम्न मध्यवर्ग की यही मानसिकता हैं। एक ओर वह अर्थाभाव से अत्यन्त पीड़ित है। दूसरी ओर उसे अपने सम्पन्न संस्कार

और सामाजिक अभिजात्य की रक्षा का विकट मोह है। इन्ही दोनों स्थितियो की विषमता का वह विवश शिकार है। पूनी बाबू न तो अपनी वास्तविक विपन्नता का कच्चा चिट्ठा किसी के सामने खोल सकते और न कुमुद को किसी प्रकार की बाहरी सहायता लेने दे सकते, क्योंकि वे स्वयं भूखो मर जाना पसन्द करते हैं, मगर भीख माँगना या अनाथो की भाँति इधर-उधर भोजन करना वे सहन नहीं कर सकते। जीवन की इस प्रत्यक्ष दीनता और स्वभाव की अप्रत्यक्ष सम्पन्नता से मिलकर ही उनके उनके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है।

सुबह होते ही कुमुद ने कपड़े पहने और दादा के पास पहुँच गई और कहने लगी—"आज तो आठ ही बजे घर से जाना पड़ेगा, क्योंकि ठीक नौ बजे वहाँ खाना मिलता है।"

पूनी बाबू ने गम्भीरतापूर्वक कहा—"वहाँ नही जाना, मैंने तो योंही मज़ाक मे कह दिया था। तुम्हारी माँ भी नहीं जाने देना चाहती।" कुमुद ने तपाक से उत्तर दिया—"माँ ने तो कह दिया हैं, मगर एक शर्त के साथ कि यदि तुम रोज व्यालू करो तो मुझे वहाँ जाने देने में माँ को कोई आपत्ति नहीं है। उनका निश्चित विचार है कि तुम अन्न की कमी के कारण खाना नहीं खाते। दादा तुम यहाँ खाया करो मैं वहाँ। देखो कौन तगड़ा पड़ता है।" पूनी बाबू की आँखें सजल हो आयी थीं। वह चुप थे। अपने पेट की ज्वाला, सामाजिक मर्यादा और अर्थ का अभाव आदि सभी चिन्तायें उनके मानस में तूफानी हिलोरें लेने लगी। कुमुद चुप को स्वीकृति की सूचना मानकर झट से वापस चली गई।

भाव-तन्द्रा टूटने के बाद पूनी बाबू ने आँगन में आकर कुमुद को पुकारा। कुमुद की माँ झाड़ू लिये बरामदा साफ कर रही थी। कई दिन की भूख, थका-सा मलिन मुख, सजल-शिथिल बड़ी-बड़ी आँखे, सारे

शरीर में पोषण के अभाव की दुर्बलता और मनमें विश्वास की स्फूर्ति के संघर्ष-स्वरूप, उभरी हुई नीली रक्त-शिरायें। झाडू. थामकर बोली—"कुमुद तो चली गई। मालती भी आई थी। उसकी इच्छा थी कि वह आज अनाथालय मे भोजन करे, मैंने भी मना नहीं किया। वास्तव में हम ग़रीब है। कुमुद की शादी भी नही हुई, यदि वह वहाँ खाना खाये, तो कोई हर्ज भी तो नहीं।"

पूनी बाबू स्तब्ध से रह गये। उनका हृदय धक से रह गया। आँसू और आक्रोश को दबाये वे वापस चले गये। अपना पुराना सन्दूक खोला, उसमें दो तोला पुरानी अफ़ीम रखी थी। ललित के सामने वे अफीम खाते थे, आखिर कलाकार शरद से उनकी जो दोस्ती थी! चित्रकार की भाँति वे दिन उनकी आँखो के सामने नाचने लगे। उन्होंने चुपचाप उसमे से आधी अफीम खा ली और सदा के लिये अपनी खटिया मे सो रहे। कुमुद को, उसकी माँ को इसका आभास तक नहीं था।

कुमुद ने बड़े उत्साह और सन्तोष के साथ अनाथालय में भोजन किया और अपनी सखी मालती के साथ पढ़ने चली गई। रास्ते में उसने देखा कि एक नवयौवना नारी अपने कंकाल को चीकट कपड़े से छिपाये सड़क के फुटपाथ पर पड़ी है और उसका बच्चा उसके सूखे स्तन को नोच रहा है। जीवन-मरण की अबोधता के बीच उस बच्चे की स्थिति इतनी मार्मिक थी कि कुमुद ने उसे मृत माँ की गोद से उठा लिया और स्कूल न जाकर घर वापस आ गई। माँ से सारा हाल कह सुनाया और उस जीवित गुड्डे को दिखाने के लिये दादा के पास ले गई। यहाँ पहुँच कर जल्दी-जल्दी कहने लगी—"दादा उठो, देखो कितना प्यारा है! इसे देखकर तुम बहुत खुश होगे।" मगर कौन जगता और कौन सुनता? दादा तो कितने ही ऐसे निरीह अनाथ

बच्चों की कटु-स्मृति लिये स्वयं उनके साथी बन चुके थे। कुमुद ने विनोद भरी भंगिमा से दादा का मुँह खोला और देखा कि उनके मुँह और नाक से रक्त की धारा बह कर सूख गई थी। आँखें खुली मुँह फटा। उसने शीघ्र ही माँ को आवाज़ दी। पता चला कि दादा मर चुके हैं। दोनो ने मिलकर रोना-चिल्लाना शुरू किया और बच्चे को गोद से उतार कर बगल मे बिठा दिया। आस-पास के लोग इकट्ठा हो गए। इस कोलाहल के बीच में भूख और शीत की तीव्रता से बच्चे ने भी, मृत्यु की शरण ले ली। किसी ने कहा—"अरे, यह बच्चा किसका मरा पड़ा है!" कुमुद पगली की भाँति अपने वात्सल्य के आवेश मे बोल उठी—"मेरा बच्चा है अरे बाप रे यह भी मर गया!" उसने दादा के हाथ और बच्चे को अपनी छाती से चिपका लिया और आँसुओ से उन्हे धोने लगी। कुमुद की माँ पर पूनी बाबू की अनायास मृत्यु का आघात इतना मार्मिक और ग्लानि कर बैठा कि वह बेहोश सी हो गई। भूख की कमज़ोरी और मन की ग्लानि। कभी-कभी वह अपनी आँखे खोलकर किसी को खोजती हुई कुमुद की ओर देख लेती थी। पूनी बाबू का प्यारा कुत्ता उनके पैरो को पूँछ हिला-हिलाकर चाट रहा था।

आये हुये लोगो ने सोचा कि पहले डाक्टर को बुलाया जाय या श्मशान की तैयारी की जाय अथवा बच्चे की मृत्यु का समाचार पुलिस को दिया जाय? उनकी समझ मे ही कुछ नही आता था। एक बुढ़िया ने कहा—"अब रोने-धोने से काम नही चलेगा कुमुद, जाकर माँ का सिर दबाओ ताकि वह होश में आवे।" आँसुओ के सिवाय कुमुद के पास इसका और कोई उत्तर न था। देश के असंख्य ऐसे प्राणियो के आँसुओ की भाषा समझने वाला यदि कोई होता तो उसकी यह दशा कदापि न हुई होती। थोड़ी देर में कुमुद की माँ छटपटा कर उठ बैठी और उन्होंने स्थिति के अनुसार सब कार्य सम्पन्न कराया।

उस दिन से कुमुद, दादा, माँ और घर की सारी ममता तोड़कर एक विद्रोहणी के रूप में काम करती है। उसका उद्देश्य उस व्यवस्था को सुधारने का है जिसका परिणाम अनेको ऐसे अकाल मनुष्यो का ताण्डव नृत्य हैं। कलकत्ते की सड़को में अनाथ भूखे बच्चे प्राय: चिल्लाते हुये सुनाई पड़ते हैं—"माँ कुमुद खाना दो!" और कुमुद भी बराबर इस ओर प्रयत्नशील है। विद्रोह से जलती हुई-सी आँखे फड़कते से होठ और मुँह पर घृणा और विषाद का मिश्रित भाव। आज उस विद्रोहिणी की यही रूपरेखा है। फिर भी बीच-बीच में उन विद्रोही आँखों के कोनों में एक मार्मिक करुणा की बरसाती सजलता अब भी बरबस कहीं से आकर झलक जाती है!

अनन्तप्रसाद विद्यार्थी

# पत्थर का कोयला

धरती की आग में पड़ पत्थर कोयला हो जाता है तो फिर आग पकड़ते ही वह लाल हो उठता है, अपनी आँच में सब कुछ भस्म कर देने की अपनी सामर्थ्य से वह चाहे परिचित न हो पर जो कुछ भी उसके बीच में आ पड़ता है वह राख होकर ही निकलता है। प्रमदा गुसाईं की बात सुन जैसे पत्थर हो गई हो, एक बार अपनी बड़ी-बड़ी आँखे उठा उसने उसकी ओर देखा, सूखी अँतड़ियों की ऐंठन से अधरो पर एक टेढ़ी सी लकीर खिंच गई, पलको को जैसे बेहोशी आ रही हो सो वे नीचे को धँसी जा रही थी, दुःख का भार न सँभाल पर भाग्य के पत्थर के बोझ से दब प्रमदा की भृकुटिया टेढ़ी हो गई हैं। आँखो में यौवन का मद नहीं विवशता की याचना है परन्तु गुसाईं ने इन विवस आँखों के पीछे छिपे प्रमदा के यौवन को देख लिया, क्षण भर वह देखता रहा फिर जैसे अपने ऊपर वश न था उसने प्रमदा से वह बात कही थी।

प्रमदा चुप थी, उत्तर भला वह दे क्या ? कभी-कभी मानव शरीर की कोई आवश्यकता अतृप्त हो जब उभर आती है तो फिर जैसे और सब भूल मानव उसी की तृप्ति को बाध्य हो जाता है। छः-सात दिन से खाने को न पा अँतड़ियां ऐंठ रही थीं सो प्रमदा को जैसे कुछ समझ न पड़ रहा हो ! गुसाईं की बात समझने का वह प्रयत्न करने

लगी पर जैसे सब कुछ नाच रहा हो, जो भी सूत्र पकड़ने को वह बढ़ती वही छूट जाता और फिर वही अंधकार।

'देखो चाहे दुनिया भूखो मर जाय पर तुम राजसुख भोग सकती है।' गुसाईं ने उसकी आंखों में अपनी आँखे चुभो देने का प्रयत्न करते हुये धीरे से कहा। एक बार उसने अपने द्वार के सम्मुख से जाती हुई उस सकरी गली के दोनों ओर निहारा और फिर एक कदम देहली के भीतर रख लिया।

गुसाईं की बात प्रमदा के कानों तक न पहुँची। 'भूख' के यह दो कठोर वर्ण जैसे उभर कर सारे वातावरण मे व्याप्त हो गये। जिनके आर्तनाद और ताण्डव में 'राजसुख' के चार वर्ण विलीन हो उठे। प्रमदा जैसे अब सब भूल चुकी है। 'अनन्त तारे' के सब तार टूट जैसे अब हड्डियों का यह इक तारा ही बज रहा हो।

खड़े होने की शक्ति न रह गई तो धम्म से वह धरती पर गिर पड़ी। कठिनाई से सिर को उठा उसने अपनी बाहु पर रख ली। चोली स्थान-स्थान पर फट गई थी जिससे उसकी गोरी पसलियां झलक रही थी। उठने का साहस न हो रहा था। अपना जन्मजात संस्कार ही तो है नहीं शायद वह अभी कई दिन तक मजे में रह सकती थी। अभी परसों की तो बात है तब उसकी शक्ति इतनी क्षीण न हुई थी। जहां उसके गांव की कंजड़ बस्ती पड़ी थी वहां से थोड़ी दूर तक वह भोजन की तालाश में निकल गई। संध्या के धुँधले प्रकाश में उसे लगा जैसे कोई निकट ही तड़प-तड़प कर अंतिम सांसे ले रहा हो। निर्जन के उस सूने से वातावरण में उस मरते हुए की अन्तिम सांसों का स्वर जैसे ज़ोर-ज़ोर से चीत्कार कर उठा हो। चारों ओर दृष्टि घुमा कर उसने देखा कि सूखे से उस पेड़ के नीचे एक कुत्ता पड़ा हुआ है। उसी की भांति शायद वह भूख से तड़प कर मर रहा था।

अपने शरीर को खीच प्रमदा उसके निकट ले गई। कुत्ते में जैसे आँखे खोलने की भी शक्ति न रह गई हो। क्षण भर तक प्रमदा उस मरते हुए कुत्ते की ओर निहारती रही, मन मे सोचा मुझ मे और इस कुत्ते मे अन्तर ही क्या। पास ही मानव हड्डियो की एक ठठरी पड़ी थी जिसमे अब मास का चिह्न भी न था जैसे वर्षो पूर्व की ठठरी हो। शायद यह कुत्ता इन हड्डियो को खाने का प्रयत्न कर रहा था, पर हार थक उसमे यहा से जाने की शक्ति न रह गई थी और भूख से तड़प-तड़प अब वह स्वयं मर रहा है। शायद मनुष्य और कुत्ते मे यही अन्तर है। कुत्ता मनुष्य का मास खा भी जीवित रह सकता है पर मनुष्य—

प्रमदा को अपने विचारो के असाम्य का जैसे ज्ञान हो गया हो। मनुष्य तो कुछ भी नही खाता, खाती है भूख और भूख कुछ भी खा सकती है। भूखा चाहे मनुष्य हो या कुत्ता दोनों एक ही तो है।

प्रमदा को लगा जैसे उसका शरीर झनझना रहा हो हृदय का रक्त खट-खट करता हुआ सारे शरीर मे तेज़ी से दौड़ने का प्रयत्न कर रहा हो। जैसे उसके शरीर मे शक्ति लौट रही हो। उसे कुत्ते की इस व्यथा पूर्ण मृत्यु पर करुणा आई और उसके पैर धीरे-धीरे उसकी ओर बड़ गये, उसकी आँखे कुत्ते पर जमी हुई थी, पलके जैसे खुलने बन्द होने के अपने सहज स्वभाव को खो बैठी थी।

कुत्ते के निकट आ वह बैठ गई क्षण भर कुत्ते को तड़पते देखती रही फिर उसके हाथ कठोर हो गये, बढ़े और शीघ्रता पूर्वक कुत्ते के गले पकड़ वह अपनी उँगलियो को कसने लगी। निर्जीव कुत्ते में जैसे जीवन की शक्ति आ गई हो आँखे खोल कर उसने एक बार प्रमदा की ओर देखा और मुक्त होने के लिये छटपटाने लगा। प्रमदा उसकी छटपटाहट को देख रही थी उसे एक विचित्र आनन्द का अनुभव हो रहा था।

भूख से तड़पकर कुत्ते को मर जाने में शायद सुख था पर प्रमदा के इस प्रकार गला घोट कर मारने को सह न सका। अपने पंजों से उसने प्रमदा की कलाइयो को नोचना शुरू कर दिया पर धीरे-धीरे उसकी शक्ति क्षीण होती गई, शरीर निश्चेष्ट होता गया और उसकी आँखे जो पहले बन्द थी बाहर को निकल आई। निर्जीव शरीर अन्तिम प्रयत्न को कर पट हो गया परन्तु प्रमदा अपने हाथो के बीच उसके गले को कसती ही जा रही थी। उसे जैसे यह विश्वास न हो रहा था कि इतना बड़ा यह शरीर इतनी जल्दी मर सकता है।

क्षण भर उसे देखती रही, उसे सहसा ज्ञात हुआ कि उसे भूख लग रही है, भूख बराबर तेज होती जा रही थी, तेज, और तेज। लगा भूख की ज्वाला अब पहले से भी तीव्र हो उठी है। जैसे प्रमदा सब कुछ भूल गई हो। कुत्ते का निश्चेष्ट शरीर माँसल सा होता जा रहा था, जैसे पके हुये माँस की सुगन्धि प्रमदा के नासापुटों में समाने लगी और शीघ्रता पूर्वक कुत्ते के रक्त को उठाकर उसने मुँह मे लगा लिया; दाँतो के बीच पीठ पर का चमड़ा दबोच उसने ज़ोर से दबाया एक आवाज़ हुई जैसे कोई हड्डी टूट गई हो। मुँह मे उसके कुछ भर गया जिसे चबा-चबाकर खाने का प्रयत्न करने लगी। बाल चमड़ा और माँस का उसे कुछ स्वाद न मिल रहा था, जल्दी से उसने ग्रास को निगल लिया। जैसे कोई पत्थर मुँह की राह पेट मे जा गिरा हो। दूसरी बार उसने कुत्ते के शरीर मे मुँह लगाया ही था कि उसे लगा जैसे अब पके हुये माँस की वह सुगन्धि जाती रही है, रक्त की बदबू से उसके नासापुट भर गये। अपने मुँह को उसने ऊपर की ओर खींच लिया फटी हुई आँखो से वह कुत्ते के शव की ओर निहारने लगी। कुत्ते का शव अपना वैकृत्य ले उसकी आँखों में विराट बनने लगा। जैसे वह भयभीत हो उठी हो और उठकर जल्दी से वह एक ओर को भाग चली।

किसी से कुछ बताने का साहस वह नहीं कर सकी, जाने क्यों उसे भय लगने लगता, जैसे कुत्ते का वह शव उसके मुँह मे भर जाती सारी रात वह उस दिन सो नही सकी और आज गुसाईं के दरवाजे पर वह पड़ी है। आसमान का अंधकार उसकी आँखो में उतरा आ रहा है और जैसे शरीर निश्चेष्ट होता जा रहा है।

फिर लगा जैसे वह ऊपर की ओर उठ रही हो जैसे उसका शरीर हवा में एक ओर को उड़ा जा रहा हो पर चारो ओर अंधकार था। फिर लगा जैसे शरीर पर्वत की चोटी पर विश्राम करने को पड़ गया हो। वह उसी प्रकार पड़ी रही, करवट लेने की जैसे अब उसमें सामर्थ ही न रही हो। ओठो को कोई खोलने लगा, शायद मुंह खुला होने पर कुछ मुँह मे जायगा ही। सो सारी शक्ति लगा प्रमदा ने अपने मिले हुये दाँतो को खोलने का प्रयत्न किया।

मुँह खुल गया तो लगा जैसे कोई तरल पदार्थ मुँह मे डाल दिया गया हो, समस्त शक्ति समेट उसने उस द्रव को गले मे उतार लिया। जैसे उसने आग पी ली हो आग की एक लकीर सी पेट मे जा भक् से जल उठी मुँह मे फिर कुछ भर गया उसने दूसरा घूँट पिया और फिर जैसे शरीर मे का रक्त दौड़ने लगा हो जैसे बुझी हुई आग फिर जल उठी हो। पलके खोल उसने अपने चारो ओर निहारा। लगा कि वह किसी कमरे में बिछौने पर पड़ी हुई है। कमरे मे हल्के दीपक का प्रकाश हो रहा था और कोई उस पर झुका हुआ उसके मुख को देख रहा था। आँखे खोलते देख पूछा—अब क्या हाल है ?

प्रमदा ने समस्त शक्ति समेट कुछ कहा पर शायद शब्द ओठो के बाहर न आ सके। उठकर वह व्यक्ति चला गया और क्षण भर बाद ही लौटा तो उसके हाथ मे दो-तीन रूखी रोटियाँ थी। देखते ही प्रमदा के शरीर में स्फूर्ति आगई, पास आते ही उछल कर उसने रोटियाँ उसके हाथ से छीन मुँह में भरने लगी। वह व्यक्ति खड़ा हुआ

मुस्करा रहा था। रोटियाँ मुँह मे भर मुँह चलाते हुये प्रमदा ने अपने अन्नदाता की ओर निहारा, पहचानने की शक्ति जैसे अब उसमें आ गई हो। गुसाईं की ओर वह निहारती रही, कृतज्ञता आँखो में छा गई पर गोसाईं उसी प्रकार मुस्करा रहा था।

सूखी रोटियों का अन्तिम ग्रास गले मे अटक गया तो हँसते हुये गुसाईं ने मिट्टी के एक पात्र मे रखा पानी उठा उसकी ओर बढ़ा दिया। एक साँस में उसे पी वह स्वस्थ्य हो गई पर भूख की ज्वाला जैसे मिटने को न आ रही थी। गोसाईं जैसे सब कुछ समझ रहा हो बोला—और खाओगी क्या ?

'हाँ' कह पाई प्रमदा।

'अभी नही, थोड़ी देर बाद खाना, अभी लो इसे पी लो।'

पात्र उसने प्रमदा की ओर बढ़ा दिया प्रमदा ने पात्र हाथ में ले मुँह मे लगा लिया पेट में कुछ पहुँचना चाहिये जैसे यही अब उसका ध्येय रह गया हो। पर पहली घूँट मे ही लगा इतना तीखा तो विष ही हो सकता है। मनमे आया कि न पिये पर खाने-पीने की कोई चीज़ पा वह जैसे उसे छोड़ न पा रही थी और यदि विष ही हो तो क्या हानि ? तड़प कर मरने से तो एक बार मे ही मरना अच्छा है। उसे उस कुत्ते का ध्यान हो आया और आँखे बन्दकर वह उसे पी गई।

गुसाईं अट्टहास करके हँस पड़ा और प्रमदा को लगा कि जैसे विष का प्रभाव उस पर हो रहा हो सर चकराने लगा, आँखो के सामने अँधेरा छाने लगा। बहुत तेज विष था पर प्रमदा को मृत्यु भयंकर न प्रतीत हो रही थी, कुत्ते की भाँति अन्तिम बार छटपटाने की उसकी इच्छा न हो रही थी। एक बार ज़हर देने वाले की ओर उसने कृतज्ञता पूर्वक निहारा फिर शिथिल तन बिछौने पर गिर पड़ी।

पर प्रमदा को लगा कि मृत्यु इतनी जल्दी नही हो सकती; इस शरीर के बंधन से प्राण जल्दी निकल नही पाते; थोड़ी-थोड़ी देर बाद

लगता जैसे उसके प्राण जाते-जाते फिर लौट आये हो और मस्तिष्क कुछ सोचने योग्य हो रहा हो।

एक बार जो प्राण लौटे तो प्रमदा को लगा जैसे कोई उसके गले को छू रहा हो; मरते समय शायद भूली स्मृतियाँ जग उठती हैं, प्रमदा को लगा। कुत्ते के वे अन्तिम क्षण उसे स्मरण हो आये। शायद कोई बहुत भूखा है, जिस तरह उसने अपनी भूख को मिटाने के लिये कुत्ते के गले को दबाकर उसे मार डाला था उसी प्रकार कोई भूखा अपनी भूख मिटाने के लिये उसका गला घोटना चाहता है। पर शायद वह बहुत दिनो का भूखा है, उसका गला वह घोट नही पा रहा है। एक बार आत्मरक्षा की सहज शक्ति मे उसके अंग हिलने को हुये पर बलात उसने उन्हे दबा लिया। यदि उसके शव से कोई और कुछ दिन तक जीवित रह सकता है तो क्यो न रहे। वह अपनी रक्षा नही करेगी मरने का भय अब उसे नही रहा और फिर चन्द घंटो के बाद उसे मरना तो है ही, विष जो वह पी चुकी है। कुत्ते की तरह एक बार आँख खोल अपने हत्यारे को देखने की इच्छा हुई पर तभी लगा उसके गाल पर किसी ने मुँह रख दिया। प्रमदा के मुँह मे जैसे कुत्ते का चमड़ा माँस और बाल भर गया हो। और उसका गला घोंटकर ही वह उसका माँस क्यो नही खाता। जीते जी वह उसे अपना माँस कैसे खाने देगी।

आँखे उसने बन्द कर ली और फिर बेहोशी आ गई।

प्रमदा के सारे शरीर में पीड़ा महसूस हो रही थी। शायद वह भूखा उसका माँस खा नही पा रहा था सो उसके तन पर का कपड़ा वह खींचकर निकाल रहा था। मृत्यु के पूर्व भी नारी अपने को अनावृत नही होने देना चाहती। कपड़े सहित कोई उसके माँस को खा ले यह उसे पसन्द है पर यह उसे पसन्द नहीं, शरीर हिलाया पर जैसे अब कुछ शक्ति न रह गई हो और फिर उसे लगा वह उसके शरीर को

खाने के लिये उस पर टूट पड़ा है। वह कुत्ते को नहीं खा सकी पर यह मनुष्य, मनुष्य को खा सकता है। शायद यह उससे भी अधिक भूखा है। आत्म बलिदान मे उसे मृत्यु की दारुण-व्यथा भूल गई।

नींद खुली तो उसे जैसे सब कुछ याद आ गया हो। तो क्या जैसे वह कुत्ते का माँस नही खा सकी थी उसी तरह वह भूखा भी उसका माँस नोच कर नही खा सका। भय से उसने आँखे खोलीं, चारो ओर आश्चर्य मे देखा। दिन का प्रकाश कमरे मे फैला था और वह चारपाई पर पड़ी थी। शरीर को अपने देखा तो आवरण रहित। लाज से मुँह लाल हो गया। शरीर में स्फूर्ति आ गई जल्दी से उठ उसने निकट पड़ी अपनी साड़ी को पहन लिया। चोली पहनते हुये जैसे उसे सब समझ मे आ गया हो। भूखा शरीर खाना ही नहीं चाहता, शरीर छोड़ भी तो वह सब कुछ खा सकता है।

तभी कमरे मे गुसाईं ने प्रवेश किया, निकट आ उसे अपनी ओर खींचते हुये कहा—कहो, जाने को तैयार हो गई क्या?

प्रमदा ने कुछ उत्तर न दिया, निश्चेष्ट सी उसके बाहुपाश में वह उसकी आँखों की ओर निहारती रही जैसे कह रही हो तुम मनुष्य भक्षी हो?

गुसाईं ने उन आँखो को पढ़ा या नहीं पर कहा—देखो, तुम्हारे लिये कुछ खाने को लाता हूँ खालो तब जाना।

और वह कमरे के बाहर चला गया।

थोड़ी देर बाद वह लौटा तो साथ पका हुआ चावल था जो शायद कई दिन तक पानी में पड़े रहने के कारण अधिक फूल गया था। प्रमदा ने भर पेट खाया और उठ खड़ी हुई। द्वार पर आ गुसाईं

ने कहा—शाम को फिर चली आना और जब तक तुम चाहो रोज़ आकर खाना खा जा सकती हो।

प्रमदा ने कोई उत्तर न दिया। द्वार से निकल वह एक ओर को चल पड़ी। सोलह वयसना के यौवन मे जैसे अब बुढ़ापा आ गया हो। घटनाओं का एक क्रम मस्तिष्क में बह चला।

भूख से पीड़ित हो जब गाँव मे घास और पेड़ो की पत्तियाँ भी सुलभ न रह गई तब सारा का सारा गाँव भोजन की खोज में चल पड़ा था पर आज लगभग महीने भर उन्हे यात्रा करते हुआ एक समय भी भर पेट भोजन किसी को नहीं नसीब हुआ, कितने ही राह मे मर गए और कितनो को अधमरे ही वे लोग राह मे छोड़ आये मरने के लिये। कई महीने बाद आज यह भर पेट खा सकी है मनुष्य को अपने शरीर का माँस खाकर भी तो जीने का अधिकार है।

थोड़ी दूर पर जहाँ उसका गाँव कंजड़ो की बस्ती की तरह पड़ा था आ वह सूनी-सूनी सी खड़ी हो गई। गाँव वाले आगे चलने की तैयारी में थे। सब ने सोचा था प्रमदा कल भोजन की खोज मे गई थी; चल न सकी होगी सो कहीं गिरकर मर गई होगी सो प्रमदा को लौटे देख सब को उसके भाग्य पर दुःख हुआ। मरने वाला ही इस बस्ती में भाग्यवान समझा जाता है।

माँ ने प्रमदा को देख कहा—तुम्हे कुछ खाने मिला था क्या? मुझे तो पत्तियाँ भी नही मिली।

'चावल, और वह भी भर पेट!' प्रमदा ने कहा।

और सुन कर गाँव भर उसे घेर कर इकट्ठा हो गया—'कहाँ मिला, मुझे बताओ!' कि आवाज मे सारा वायु मण्डल गूँज उठा।

प्रमदा ने उसी प्रकार शून्य की ओर निहारते हुये सब कह दिया। पुरुषों ने निराशा मे सिर झुका लिया पर स्त्रियों की भीड़ गुसाईं के घर की ओर दौड़ पड़ी। उन्हे जाते देख पुरुष भी पीछे हो लिये।

गुसाईं के दरवाजे पर पहुँच भीड़ खड़ी हो गई; गुसाईं आश्चर्य से बाहर निकल आया तो स्त्रियाँ चिल्लाने लगीं—हमे भी खाना दो हम सब तुम्हारे साथ रात बसेंगी।

गुसाईं परेशान था उसे कुछ समझ में नही आ रहा था। सहसा उसकी दृष्टि प्रमदा पर पड़ी, सब बात जैसे पलक मारते समझ मे आगई और भीतर हट कर दरवाजा बन्द करते हुये उसने कहा—भाग जाओ यहाँ खाना नही बँटता।

पर स्त्रियाँ चिल्लाती रहीं, हम रात रहेंगी हमे खाना दो।

दरवाजा बन्द देख वे उस पर टूट पड़ीं। किवाड़ो ने राह छोड़ दी; भीड़ भीतर घुस गई। गुसाईं का घर लूट लिया गया। मकान के भीतर बड़े अहाते में चावल की पचीसो बोरियाँ खुल गईं। भूखे कुत्तों की तरह टूट पड़ी। गुसाईं के गाँव मे खबर पहुँची तो सब के सब दौड़े आये और भूखे कत्तों की तरह टूट पड़े। पर अब ग्रास-ग्रास के लिये उनमे झगड़ा नही हो रहा था जब गुसाईं का घर खाली हो गया तो वह भीड़ आगे बढ़ी। भोजन की तलाश करने की बात अब वे भूल गये। भूखों मरने की बात अब उन्हें याद न रही।

ज्यो ज्यो भीड़ आगे बढती उसकी संख्या भी बढ़ती जाती है।

धनी कहते हैं ये चोर है डाकू हैं इनका दमन करना सरकार का कर्तव्य है पर निर्धन कहते हैं कि पत्थर का कोयला जब सुलग कर लाल हो उठता है तो चाहे सब कुछ भस्म कर देने की अपनी शक्ति से वह परिचित न हो पर उसमे जो भी पड़ेगा वह भस्म ज़रूर हो जायेगा, तूफ़ान जब चलता है तो वह सूप नही रोक सकता, आग जब भड़कती है तो 'कैनवेस' के चादर मे नहीं ढकी जा सकती।

विष्णु

किस तरह भविष्य के नागरिक, भविष्य के महान पुरुष कौड़ी के मोल बिक रहे हैं, यौवन वेश्याओं की हाट में लुट रहा है।

# कुलीन

सुधीर बहुत देर से उधर से ध्यान हटाने का, प्रयत्न कर रहा था, पर अन्त मे विकल होकर अपने साथी से बोला—आखिर क्या बात है ? बहुत देर हो गई, रोना बन्द नहीं होता।

साथी ने उत्तर दिया—आजकल और क्या बात हो सकती है। भूख के शिकार होंगे। रोज सड़क पर सैकड़ा भूखे दम तोड़ते हैं।

'मैं देख आऊँ।'

'किस-किस को देखोगे, सुधीर।'

'किस-किस को - ।'

साथी उठ बैठा—'हाँ किस-किस को सुधीर ! और देखकर क्या करोगे ? तुम्हारे पास है भी क्या, जो लेकर उनके पास जाओगे ? न जाने कौन-कौन सिसकता है ?' और फिर उसी तरह लेटे-लेटे उसने कहा—अगर नहीं सुन सकते तो कानों मे रुई देकर लेट जाओ।'

'लेकिन दिल का क्या करूँ, प्रमोद ?'

'ओ' प्रमोद मुस्कराया 'जाना तुम्हारे पास दिल है' और कहकर बड़े जोर से हँस पड़ा। फिर रुक कर बोला—तब एक बात बताता हूँ देखने का अभ्यास करो। जो दृश्य बार-बार आँखो के सामने आते हैं उनमें कोई आकर्षण नही रहता। रोज सड़को पर, गलियो में कैमरा

लेकर घूमा करो तो शायद दृश्य के उस रूप को तुम भूल जाओगे जो घिनौना और दयनीय है।

सुधीर ने कोई जवाब नहीं दिया; केवल दीर्घ निश्वास लेकर उठ खड़ा हुआ उसके चेहरे पर एक अजीब भाव प्रकट हो रहा था, जिसमें करुणा और क्रोध दोनों। क्षण भर तक इसी तरह शून्य में ताकता रहा फिर बोला—तो प्रमोद! देखने का ही अभ्यास करूंगा और आज ही से यह काम शुरू होगा। देखो मैं जब तक लौटू तब तक तुम सो मत जाना।

फिर जिधर से रोने-कराहने की आवाज आ रही थी उधर ही चल पड़ा। धीरे-धीरे एक कमरे के पास जाकर वह ठिठका। अन्दर कोई बड़े वेदना-भरे स्वर में सिसक-सिसक कर रो रहा था। कभी-कभी सिसकियाँ फूट भी पड़ती थीं। स्वर नारी का था इसी कारण वह बेबस-सा वहीं रुक गया। न भीतर जा सका, न लौट सका—कि तभी एक सज्जन किवाड़ खोलकर बाहर आये। उन्हीं को देखकर सुधीर ने डरते-डरते पूछा—क्या बात है महाशय?

'क्या बात?'

'जी यही रोने की बात?!'

ओ—उन्होंने कहा—मैं भी यही देखने आया था परन्तु···

सुधीर ने अनजाने ही टोककर कहा—शायद गृह स्वामी घर पर नहीं हैं?

'जी, जब मैं आया तब तो थे मगर उसी वक्त मुझसे यहाँ ठहरने की प्रार्थना कर न जाने कहाँ चले गये। बड़ा अजीब मामला है।'

'अन्दर कौन है?'

'उनकी पत्नी है, पुत्र है, और उनकी माँ है जिनका अन्तिम अवसर अब शायद समीप है।'

'अंतिम अवसर ?'

'जी !'

'लेकिन ऐसे समय ··'

'कोई कुछ नहीं कर सकता, महाशय ! सब व्यर्थ है ।'

सुधीर ने क्षण भर के लिये ऊपर को देखा। कही दूर ऊपर कोई तारा नज़र आया, जो अभी-अभी ऊपर से बादल के गुजर जाने से चमक उठा था। उसने तारे की बेबसी को देखा और फिर अपने भीतर उमड़ती हुई बेबसी को; एक दीर्घ निश्वास आपही आप बाहर निकल पड़ा। उसने कहा—'तो क्या मै कुछ नही कर सकता ?'

'कुछ भी नही महाशय !'

'पता हो तो सुबोध बाबू को देखूँ ।'

'मै स्वयं नहीं जानता कि वे कहाँ गये है। शायद कही डाक्टर की खोज मे होंगे ।'

सुधीर ने देखा कि उसके किये कुछ न होगा, तो लौट आया। प्रमोद ने पूछा . 'क्या है सुधीर, पता लगा ?'

'हाँ पता लगा, मौत है ।'

'ओहऽऽ! कोई मर गया ।'

'अभी मरा नहीं, पर किसी भी क्षण मर सकता है अभी, सबेरे ।'

'कौन है ?'

'सामने की रूम मे कोई सुबोध बाबू हैं, उन्हीं की माँ मरणासन्न है ।'

यह सुनकर प्रमोद एकदम उठ बैठा, बोला—'सुबोध बाबू की माँ ?'

सुधीर को इस मुद्रा पर अचरज हुआ—'जी हाँ, तुम जानते हो ?'

'पहले तो नही जानता था पर अब जान गया हूँ। किताबे बेचते हैं और शायद बेचते-बेचते पढ़ते भी हैं।'

'कैसे जाना ?'

'परसो सबेरे जब तुम चले गये थे, तब इधर किसी मारवाड़ी सेठ के गुमाश्ते आकर जन गणना करने लगे। वे दयालु सेठ चाहते थे कि मध्य वर्ग के कुछ ग़रीब गृहस्तो की जो, लोक लाज के कारण, हाथ नहीं फैला सकते आर्थिक सहायता करें इसीलिये ऐसे पात्रों की उन्हें खोज थी। इन बाबू के पास भी जाकर उन्होने पूछा—आपके घर कितने प्राणी हैं और आप क्या कमाते हैं ?'

'सच कहता हूँ यह बात सुनकर सुबोध बाबू ने इस प्रकार मुँह बनाया मानो किसी ने उनके गाल पर तमाचा मारा हो ! बोले—आप कौन हैं !'

'ग़रीबो की सहायता के लिये हम जनगणना कर रहे है।'

'लेकिन किसने कहा, मै ग़रीब हूँ अगर हूँ भी तो आपको इससे मतलब ?'

गुमाश्तो ने समझाने की कोशिश की—'महाशय ! हमे आपकी स्थायी अमीरी, ग़रीबी से कोई सरोकार नही है। हम तो केवल यही चाहते है कि इस सकट के समय ज़रूरत हो तो आपकी कुछ सहायता कर सके।'

'इतना सुनना था कि वे आग-बबूला हो उठे। चिल्लाकर कहा—'यह ढोग यहाँ नही चलेगा। अपने सेठ से जाकर कहो कि मदद करनी है तो सड़क पर लाखों भूखे हफ्तो से तड़प-तड़प कर प्राण तोड़ रहे हैं उन्हे सँभाले और फिर रुककर कहा—'लेकिन मै कहता हूँ यह दर्द आज क्यो पैदा हुआ है। जनता के मुँह से दाना छीनकर

तुम्हारे उन सेठ जैसो ही ने तो देश की यह दशा कर दी है। नहीं तो क्या शस्यश्यामला भूमि, अन्न उगलने वाली यह धरती माता किसी को भूखा रखती है। पेट भरने के सारे साधन नष्ट करके अब भूख मिटाने का ढोंग दिखाना देशद्रोहियो को ही सोहता है। पहले जख़्म करना और फिर घाव मे भरने के लिये अपना रेशमी दुपट्टा फूँकना··· वाह जी वाह, कैसी सुन्दर करुणा है, कैसा कुशल नाट्य है···।'

'तब वे इतनी तेज़ी से बोल रहे थे कि उनके नथने फड़कने लगे। वाणी काँप गई। आखिर वे सारा ज़ोर लगाकर चिल्लाये—जाओ भाग जाओ। और कह दो अपने सेठ से कि उसका अन्न पचाने की शक्ति कुत्तों और चीटियो में ही है। इन्सानो में नही। वे भूखे ही भले हैं।'

'गुमाश्ते क्या करते। बड़बड़ाते हुये आगे बढ़ गये। पहले तो मुझे हँसी आई फिर सोचा तो दिल भर आया। कितना आत्म-सम्मान भरा पड़ा है इनमें! इन्होने जाँगर चलाकर ही पेट भरना सीखा है।''

'बेशक'—सुधीर ने कहा—'ये मेहनत-कश हैं यह आत्म-सम्मान इनके जीवन का अंग है। उसने ठीक जवाब दिया था। इन सेठो का दाना पचाने की हिम्मत कुत्तो और चीटियों में ही है। वे भी इस बात को जानते हैं। अभी मैंने पढ़ा कि कराँची के एक सेठ ने इक्यावन रुपये का दान इसलिये किया कि उन पैसो से कुत्तों को खिलाया जाय। कितना सुन्दर दान है और फिर बात यह भी है कि दान पर जिया भी कब तक जा सकता है? उस पर से दान भी ऐसे आदमियो का जो स्वयं इस संकट के लिये जिम्मेदार हैं। उनके दिल मे दर्द है तो क्यो नही अपने गोदाम खोल देते और ठीक भाव पर अन्न बेचते?

और रुककर प्रमोद ने कहा—'यह क्या उनके किये होगा? यह तो हमे करवाना पड़ेगा।'

'बेशक'—सुधीर बोला।

'लेकिन'—प्रमोद ने कहा—'इन सुबोध महाशय की माँ बीमार है यह जानकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। क्या हम कुछ भी नहीं कर सकते?'

'एक सज्जन उनके घर गये थे; कहते थे कुछ नहीं हो सकता।'

'फिर भी देखा तो।'

'अन्दर पुरुष नहीं हैं। उनकी पत्नी और पुत्र हैं, बस।'

'लेकिन थोड़ी बहुत होम्योपैथी तो मैं जानता हूँ। उसी के सहारे शायद कुछ कर सकूँ। सच सुधीर उन बाबू पर मुझे बड़ी श्रद्धा है।'

सुधीर उठ खड़ा हुआ—तो चलो देखें शायद कुछ कर सकें।'

प्रमोद भी उठा। आलमारी खोलकर बक्स निकाला कि बाहर से बड़ी करुण आवाज़ वहाँ आकर फैल गई। दो व्यक्ति बातें करते-करते उधर से गुज़रे।

एक ने कहा—'महाशय! आपकी कृपा का मैं आजन्म बदला न चुका सकूँगा।'

दूसरे ने कहा—'नहीं आप चिन्ता न करिये। यह तो आदमी का धर्म है।'

'आदमी का धर्म? आप गलत कहते हैं। आदमी का कोई धर्म नहीं होता। अगर होता तो क्या डाक्टर इस तरह जवाब दे देता?'

प्रमोद ने कहा—सुधीर! यही सुबोध बाबू हैं···

तब सुधीर ने लपक कर उनसे कहा—'देखिये महाशय! मेरे मित्र प्रमोद होम्योपैथी जानते हैं। शायद ऐसे वक्त आपकी कुछ मदद कर सकें।'

सच जानो। उस वक्त सुबोध का चेहरा ऐसे पिघल गया जैसे मोम। आँसू उमड़ आये। मुड़कर कहा—'महाशय! आप कुछ कर सकें तो मैं जन्मजन्मान्तर आपका ऋणी रहूँगा।'

'नहीं, नही, कोई बात नही, आप ज़रा मुझे देखने दीजिये'—प्रमोद ने शीघ्रता से आगे बढ़कर कहा। सुबोध की बातों से उसका उत्साह काफ़ी बढ गया था और वह उस क्षण अपने को योग्य डाक्टर समझ रहा था, जिसके हाथों मे भाग्य की चाभी होती है और जिसे आवश्यकतानुसार किसी भी ओर घुमाया जा सकता है। उन लोगो ने आगे बढ़कर देखा—सुबोध बाबू के एकमात्र कमरे में ( जिसे कमरा कहते संकोच हो सकता है ) किरासन तेल की सस्ती लालटेन टिमटिमा रही थी। विद्युत के आलोक मे स्नान करती हुई कलकत्ता-जैसी विश्व-सुन्दरी नगरी मे यह दृश्य मनोरम तो कदाचित् नहीं था परन्तु उसे दुष्प्राप्य नही कहा जा सकता था। प्रकाश के साथ-साथ अन्धकार की प्रचुरता भी वहाँ यथेष्ट थी इसीलिये किरासन तेल की लालटेन के धुंधले प्रकाश मे जब प्रमोद के पीछे से उसने अन्दर प्रवेश किया तो वहाँ बैठी हुई रमणी एक कोने की तरफ हट गई क्योंकि उधर लालटेन का प्रकाश कुछ कम था। दूसरे कोने मे फर्श पर कोई सोया जान पड़ता था; शायद उनका बच्चा था। तीसरे कोने में गिरस्ती का सामान काफ़ी अस्त-व्यस्तता से बिखरा हुआ था। लेकिन इस समय उन लोगो का ध्यान किसी तरफ न जाकर सुबोध बाबू की माँ पर अटक गया था, जो कमरे के बीच में फर्श पर पड़ी थी, कोई स्पन्दन नहीं; कोई चेतना नहीं, निर्जीव की तरह गुड़मुड़। उसके मुँह का पल्ला हटाकर सुबोध ने कातर होकर कहा—माँ को एक बार बोलने की शक्ति दे सको डाक्टर तो··! आगे बोलने में असमर्थ, सुबोध बच्चे की तरह घिघिया उठा। सुधीर चुपचाप खड़ा चारों तरफ देख रहा था। रुदन की इस ध्वनि ने उसका ध्यान भग कर दिया। उसने एक बार सुबोध को सिर से पैर तक देखा फिर उसे प्रमोद की बातें याद आईं। उसने सोचा फिर इतनी कातरता क्यों लेकिन वह सोचे कि रुदन की ध्वनि और तेज हो गई। पीछे जो रमणी थी वह भी जोर से चीत्कार कर उठी

लेकिन तभी प्रमोद ने सान्त्वना के स्वर मे कहा—'न रोओ दीदी। मै देखता हूँ अब सब ठीक हो जायगा।'

सुधीर ने भी मंत्र-मुग्ध की तरह कहा—'बेशक! अब सब ठीक हो जायगा।'

'सच डाक्टर! क्या सचमुच माँ जिन्दा हैं' सुबोध ने जल्दी से पूछा।

'एकदम जिन्दा!' प्रमोद ने सिर उठाकर कहा—'बेहद कमजोरी से बेहोश हो गई हैं और कुछ नही।'

'तो जीवन लौटने की आशा है?'—'सुधीर फिर बोलने की जरूरत महसूस करता हुआ पूछ बैठा।

'आशा तो है'—प्रमोद ने कहा और बक्स में से कोई दवा ढूँढ़ने लगा। सुधीर दौड़ कर लालटेन उठा लाया। तब वही बैठे-बैठे प्रमोद ने कई गोलियाँ निकाल कर अपनी हथेली पर रखीं और एक-एक करके वृद्धा के खुले मुँह में डालने लगे। डाल चुके तो गौर से देखा, कोई सरसराहट नही, कोई स्पन्दन नही, केवल साँस जिस मन्थर गति से चल रही थी चलती रही। वे सब भी साँस रोके खड़े रहे। आशा और निराशा का घोर संघर्ष उनके चेहरे पर उभर आया। छाती सब की धक-धक करने लगी। आँखे अपलक वृद्धा के सूखे चेहरे पर जा टिकी। मटीले प्रकाश ने इस भयकरता को और भी गहरा कर दिया। वृद्धा के गले में एक हल्की सी गड़गड़ाहट की ध्वनि हुई·· एक हिचकी आई·।

'जीवन लौट रहा है'—प्रमोद बोला।

'ज़रूर, ज़रूर'—सुबोध चिल्ला उठा—'जरूर लौट रहा है, डाक्टर! तुम महान हो, तुम महान हो··।'

सुधीर ने फिर ध्यान से सुबोध को देखा यद्यपि उसके अपने चेहरे पर भी आशा की किरन झलक रही थी तो भी यह चिल्लाहट उसे अच्छी नहीं लगी। उसने धीरे से कहा—अच्छा हो हम लोग बैठ जायँ। बूढ़े शरीर में जीवन लौटते देर लग सकती है शायद ··।

बात काटकर सुबोध बोला—'शायद न भी लौटे यही कहते हैं न! सुनिये माँ के मरने की चिन्ता मुझे नही है। आज के युग में इससे बड़ा वरदान क्या हो सकता है और मैं आज ही से क्या बहुत दिन से जानता था कि एक न एक दिन माँ आत्म-हत्या कर लेगी।'

उसकी यह बात सुनकर सब चौक पड़े। सुधीर के मुँह से निकला—आत्महत्या?

'हाँ, मेरी माँ ने आत्महत्या की है।'

'और आप जानते थे?'

'जी।'

'रोका नहीं?'

'कोई तरीका न था। मै रोज़ माँ को तिल-तिल कर मरते, मौत के समीप खिंचते देखता था, और देखकर मन मसोसकर रह जाता था।'

सुधीर ने कहा—'महाशय! आपकी बात समझ में नही आती। आप शायद कुछ छिपा रहे हैं।'

सुबोध घनीभूत पीड़ा में भी मुस्करा उठा, बोला—आज छिपाने की लज्जा कहाँ है महाशय! सारा देश नंगा पड़ा है। देखते नही, भूख किस तरह जन-जन को खाये जा रही है। माँ दुर्गा का शेर आज यमराज के भैंसे से पराजित हो चुका है ··।

इस बार कोई नहीं बोला। सब अचरज में खोये से रात्रि की शून्यता मे एक मुर्दे के पास बैठे इस तरह डूबते रहे जैसे ग्रहण के अवसर पर चन्द्रमा का प्रकाश अन्धकार में खो जाता है। सुबोध ने ही इस अशुभ शान्ति को भंग करते हुये कहा—'आप लोगों की कृपा

मुझ पर है, उसे क्या भूलते बनेगा। मै एक साधारण इन्सान हूँ, घूम-घूमकर किताबे बेचता हूँ। सदा ऐसा करता था या नही यह बात दूसरी है। बीस जनो के बड़े कुटुम्ब मे आदर के साथ जीने की व्यवस्था मैने देखी थी, लेकिन उस लम्बी कहानी को सुनाना क्या ठीक होगा? वह तो आज के बंगाल मे घर-घर की कहानी है।'

'आप ठीक कहते है सुबोध बाबू'—प्रमोद ने अनायास ही कहा।

'लेकिन'—सुबोध कहता रहा—'अस्सी और सौ रुपये मन चावल खरीदने का बूता मुझमे कहाँ। तीन-चार महीने के लिये कुछ चावल पहले से ही खरीद लिया था। आगे का काम कैसे चलेगा, यह सोच-सोच मेरे प्राण सूखते थे। मै रोज उन चावलों को तौलता और माँ तथा पत्नी से पूछता—अब? पत्नी रो देती लेकिन एक दिन माँ ने कहा—धीरे-धीरे हमे अपनी खुराक कम कर देनी चाहिये, तब चावल ज्यादा दिन चल सकता है। माँ की बात सुनकर मैं चौंका परन्तु उसने तो समझ-बूझकर ही कहा था। बोली—'मै तो बूढ़ी हूँ, मेरी खुराक कम हो ही चली है। बहू भी अभ्यास कर सकती है पर तुम्हे और सुनील को फिलहाल कमी करने की जरूरत नहीं है।'

मै एकदम बोला— नहीं, माँ कम होगा तो सब का होगा।'

माँ ने कहा—'बेटा! मैं बूढी हूँ, मेरे जाने से दुनिया का काम नही रुक सकता।'

मैने कहा - 'माँ! दुनिया का काम तो हम सब के मरने से भी नही रुक सकता। व्यर्थ ही दुनिया मोह में फँसी है।'

माँ बोली—'यह भगवान की बात है परन्तु अब बुढ़ापे मे तू मुझे अधिक दुःख मत देखने दे। मैं जाना चाहती हूँ ··।'

'··और फिर मित्रो, इस तरह हमने अपनी खुराक का एक चौथाई भाग जमा करना शुरू किया। इस तरह कुछ दिन निकले, फिर और

कम किया, और धीरे-धीरे सुनील को छोड़कर हम तीनों आधी खुराक पर आ गये।'

'आधी खुराक, आत्महत्या का कितना सिलसिलेवार षडयन्त्र है !'— सुधीर इस तरह फुसफुसाया कि सबकी दृष्टि उस पर जा पड़ी।

सुबोध ने उत्तर दिया—'बेशक सुधीर बाबू ! आप इसे आत्महत्या कह सकते हैं; परन्तु इसके पीछे एक जबरदस्त शक्ति थी जिसे हम आशा कहते है। यही आशा तो हम सब के जीवन का एकमात्र आधार है परन्तु कभी-कभी यही आशा निराशा भी बन जाती है। हमारे साथ भी यही कुछ हुआ। देखते-देखते भूख सारी बंग भूमि पर मौत के बादल बनकर छा गई। देखते-देखते विश्वसुन्दरी नगरी भिखमंगो, अपाहिजो और भूखो के आर्त्तनाद से गूँज उठी। सड़कों पर कंकाल उसी तरह छा गये, जिस तरस आकाश मे टिड्डी दल। किस तरह भविष्य के नागरिक, भविष्य के महान पुरुष कौड़ी के मोल बिक रहे हैं, किस तरह यौवन वेश्याओ की हाट मे लुट रहा है, किस तरह मनुष्य के देखते-देखते मनुष्य गिद्ध और चीलो का भोजन बन रहा है, यह सब बताकर मै आपकी करुणा जाग्रत करना नही चाहता। आपसे छिपा क्या है जो मै बताऊँ। मै तो यही कह रहा था कि भूख की इस सर्वव्यापी चोट से हम भी न बच सके। 'स्टाक' आखिर ख़तम हो गया और बाजार से खरीदना मेरे बूते से बाहर था। कन्ट्रोल की दुकानों से सेर भर चावल पाने की मुसीबत आप भी जानते होंगे और फिर उतना लेकर हम करते भी क्या ? किसी तरह दिन कट रहे थे। मैं जानता था माँ अपने हिस्से में से बचा-बचाकर रख रही हैं। यह भी जानता था कि पिछले दिनो उस 'स्टाक' को इतने दिन खींच ले जाना उसी का काम था। रात को दो-दो बजे जागकर कन्ट्रोल की दुकान पर धरना देना तब दूसरे-तीसरे दिन एक सेर चावल पाना यह सब माँ की ही हिम्मत थी। मै उसकी तरफ देखता और सोचता—माँ को दुनिया

के नाते रिश्ते में महान पद देने वाले मूर्ख नहीं थे। यह सारा संसार ही माँ मय है। परन्तु मित्रो! उसी माँ ने आज एक ऐसा जघन्य दुष्कर्म किया कि मैं सोचकर काँप उठता हूँ''। 'इतना कहकर वे एकदम चुप हो गये। सुधीर ने क्षण भर रुककर पूछा—'आखिर वह क्या काम है जो आपकी आत्मा को इतना दुखी किये हुये है?'

'जी, उसी के बारे में पूछने के लिये मै चाहता हूँ कि एक बार माँ मुझसे बोल सके। एक बार, सिर्फ एक बार, मै उससे इतना पूछूँ कि क्या सचमुच तुमने भीख माँगी थी'।'

कहते-कहते सुबोध बाबू की मुख-मुद्रा गम्भीर हो उठी। आँखे चमकने लगीं। पानी छलक आया। कही घहरा-घहराकर बारह का घण्टा बज उठा। सुस्ती झनझना कर बिखर गई और सुबोध ने कोहनी से आँखे पोछकर फिर कहा—'आज सबेरे जब सेर भर चावल लेकर माँ लौटी तो शायद उसके जीने की आशा ज्यादा नही थी। भीड़ ने उसे कुचल डाला था दोपहर बाद जब मै लौटा तो उसने मुझे बताया कि जैसे वह लौट रही थी उसने एक युवती को देखा जिसके बदन के चिथड़े तार-तार होकर बिखर गये थे, जिसके मुख की मुद्रा बता रही थी कि उसने कई दिन से तो क्या कई महीनो मे भर'पेट भोजन नहीं खाया है। उसकी उँगली पकड़े एक बालक था जो उससे भी कहीं दयनीय और त्रस्त अवस्था में था। एकदम नंगा, कंकाल मात्र, पेट गुब्बारे की तरह फूला हुआ और हाथ-पैर सींक से पतले'''उस औरत को देखकर माँ ने एकाएक पूछा—चावल लोगी?'

'जानते हो उसने क्या कहा?'—सुबोध ने रुककर पूछा। किसी ने उसके प्रश्न का उत्तर नही दिया। इसलिये नहीं कि प्रश्न में कोई असाधारणता थी बल्कि इसलिये कि उनके मस्तिष्क इतनी तेजी से घूम रहे कि वे परिस्थिति को हाथ से खोते जा रहे थे।

सुबोध ही बोला—'उस युवती ने कहा था, 'माँ ! इस बच्चे को ले जाओ और मुझे मुट्ठी-भर चावल दे दो।'

माँ ने अचकचा कर कहा—'बच्चे को!'

'जी ! मै क्या उसे पाल सकूँगी। सब इसी तरह बेच चुकी पर ··।'

माँ ने आगे कुछ नही सुना। चावल वहीं उसके आगे पटक दिये कि भिखमंगो की एक भीड़ ने उसे कुचल डाला ··।

भूख ने उसके प्राण पहले ही हर लिये थे। आज का धक्का उसे ले बैठा। वह धीरे-धीरे संज्ञा खोती गई। मै अपना सब कुछ बेचकर भी उसके लिये दवा जुटाने का प्रयत्न करने लगा; लेकिन अफसोस कुछ कर नहीं पा रहा था कि सन्ध्या को अचानक किसी ने मेरा नाम लेकर पुकारा। मेरे प्राण लौटे, देश का कोई मित्र होगा। लेकिन आकर देखा तो किसी सेठ का गुमाश्ता था, पूछा—'सुबोध मित्र की माँ यही रहती है।'

मैने अचरज से कहा—'बेशक यहीं रहती हैं मगर तुम्हे उनसे क्या काम है?'

वह बोला—जी, सेठ साहब ने यह दस सेर चावल और बीस रुपया भेजा है और कहा है कि जल्दी ही वे आपके लड़के को कुछ दिन के लिये बाहर भेज देंगे।

'मेरे लड़के को?'—मै काँप उठा।

'जी।'

'लेकिन मेरी माँ को तुम्हारे सेठ कैसे जानते हैं? क्या वे माँगने गई थी?' वह आगे कुछ न बता सका। मै पागल हो उठा, उसी वक्त उसे लौटा दिया और सीधा माँ के पास आया। वे बेहोश ही थीं। तब से मै बराबर उन्हें होश मे लाने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि केवल एक बार इतना पूँछ सकूँ कि क्या वे सचमुच सेठ के पास भीख माँगने गई थीं। विश्वास नहीं आता; जो तिल-तिलकर मरती रही, जो

मरते-मरते भी मुख का ग्रास दे आई वह कैसे सेठ के सामने गिड़गिड़ा सकी और कुटुम्ब की इज्जत धूल में मिला सकी। इतना कहते-कहते सुबोध मित्र की मुट्ठियाँ भिच गईं और दाँत किटकिटा उठे और उसने मुड़कर प्रमोद से पूछा—'क्या मै आशा करूँ डाक्टर कि माँ मुझसे बोल सकेगी मैं उससे पूछूँगा

प्रमोद बराबर नाड़ी की जाँच कर रहा था। धीमे स्वर मे बोला—'मुझे अफसोस है सुबोध बाबू, आपकी माँ अब इस लोक में नहीं हैं।'

इतना सुनना था कि सुबोध हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ। एक गहरा चीत्कार उसके मुख से निकलकर वहाँ फैल गया। तभी पीछे बैठी हुई रमणी ने भी जोर से सिसकना शुरू किया और बच्चा भी उठ कर चिल्लाने लगा। एक अद्भुत कारुणिक दृश्य उपस्थित होगया।

दोनो मित्र क्षण भर के लिये किम्कर्तव्यविमूढ़ से हो गये कि सहसा सुबोध एकदम रुककर उनसे बोला—आपकी कृपा का जन्म जन्म आभारी रहूँगा, पर दया करके आप इस घटना का जिक्र किसी से न करें।

इतना कहकर उसने दोनो हाथ जोड़कर ऐसे देखा जैसे प्राणों की भीख माँग रहा हो और फिर फूट-फूटकर रो पड़ा।